DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

UNIVERSITY OF JAMMU

JAMMU

SELF LEARNING MATERIAL

B.A. SEMESTER - IV

SUBJECT : SANSKRIT **UNIT : I - V**

COURSE CODE : SA-401 **LESSON NO. : 1 TO 27**

DR. HINA S. ABROL

COURSE CO-ORDINATOR

http:/www.distanceeducationju.in

Printed & Published on behalf of the Directorate of Distance Education, University of Jammu by the Director, DDE, University of Jammu, Jammu.

SANSKRIT

Course Contributors :

Dr. Sandhya

Prof. B.B. Sharma

Dr. Kedar Nath Sharma

Sanjeev Upadhyay

© Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu, 2018

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DDE, University of Jammu.
- The script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DDE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility

Printed by :- Pathania Printers/18/50

SANSKRIT
4TH SEMESTER
SESSION 2016, 2017, 2018

Course No. : SA-401 **Total Marks - 100**
Title : संस्कृत गद्यकाव्य एवं व्याकरण **Theory Exam - 80**
Time : 3 hrs. **Internal Assessment - 20**

प्रथम खण्ड – संस्कृत गद्यसंकलन के अधोलिखित अध्याय :– 7½×2=15 अंक

1. आचार्यानुशासनम्
2. सुदर्शन तडाकम्
3. आदर्श गृहिणी
4. शुकनासोपदेशः

उपरोक्त अध्यायों की चार गद्याशों में से किन्हीं दो का अनुवाद।

द्वितीय खण्ड – संस्कृत गद्यसंकलन के अधोलिखित अध्याय 7½×2=15 अंक

1. शिववीरस्य राष्ट्रचिन्तनम्
2. वासन्ती
3. मातङ्गदारिकापरिव्राजनम्
4. वसन्तऋतु

उपरोक्त अध्यायों की दो गद्याशों में से एक का अनुवाद।

तृतीय खण्ड – (भाग–क) 10 अंक

1. संस्कृत गद्यकाव्य तथा शैली का आरम्भ एवं विकास।
2. संस्कृत गद्यशैली की विशेषताएँ।
3. संकलित पाठों का सार तथा विशेषताएँ
4. संकलित पाठों के लेखकों का परिचय।

(भाग–ख) हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद – 5 अंक

चतुर्थ खण्ड – क) कारक प्रकरण लघुसिद्धान्त कौमुदी में से

सूत्र संख्या 888–903 **5 अंक**

(भाग –ख) कृदन्त प्रत्यय – शतृ, शानच, क्त, क्तवतु, अनीयर्, क्त्वा, तुमुन् **5 अंक**

(भाग–ग) अपठित संस्कृत पद्यांश का हिन्दी अनुवाद। **5 अंक**

पंचम खण्ड – (भाग–क) उपपद विभक्तियाँ **5 अंक**

(भाग–ख) वाच्य – परिवर्तन

कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य **5 अंक**

(भाग–ग) बहुविकल्पीय प्रश्न **10 अंक**

Note for Paper Seting :

1. In case of first three units hundred percent internal choice will be given with in each unit.
2. In case of fourth and fifth units the question paper will contain two questions from each unit i.e. there will be internal choice within each unit.
3- In sixth unit ten objective type parts will be asked and all are to be attempted. Each part will carry one mark.

Book Recommended :

1. संस्कृत गद्य संकलन
2. लघुसिद्धान्त कौमुदी।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास
4. अनुवाद चन्द्रिका

ग ग ग ग ग ग

सामान्य परिचय

संस्कृत साहित्य तीन प्रमुख भागों में विभक्त हैं : (i) गद्य (ii) पद्य (iii) और चम्पू। संस्कृत साहित्य का अधिकतम भाग पद्यों में बंधा हुआ है फिर भी गद्य की प्रचुरता ही है। आज से हज़ारों वर्ष पूर्व वैदिक काल में ही बोलचाल से लेकर लिखाई तक गद्य का प्रयोग होता था।

अपौरुषेय कहे जाने वाले वेद में भी गद्य का प्रचुर भाग हमें देखने को मिलता है। अथर्ववेद और यजुर्वेद में गद्य की मात्रा पद्य के बराबर है। संहिता ग्रंथों में और उपनिषदों में भी गद्य की मात्रा अत्यधिक हमें देखने को मिलती है। अतः संस्कृत साहित्य की गद्य रचना की परम्परा अति प्राचीन है, जो आज भी निर्बाध गति से अग्रसर हो रही है। प्रस्तुत पाठों में संस्कृत गद्य साहित्य के विकास के सभी रूपों तथा स्तरों को प्रदर्शित करने का यथासम्भव प्रशंसनीय प्रयास किया गया है।

जम्मू विश्वविद्यालय द्वारा बी.ए चतुर्थ सेमेस्टर के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में 'संस्कृत गद्य संकलन' में संकलित गद्यांशों का चयन जहाँ एक ओर छात्रों को वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल पर्यन्त गद्य रचना का दिग्दर्शन कराता है, वहीं दूसरी ओर उनमें निहित भावों की आकर्षक, उदात्त, सजीव अभिव्यक्ति को प्रस्तुत कर सहृदय को आनन्दित करता है।

आधार पाठ :–

संस्कृत गद्य संकलन के आधार पाठ वेद विशेषकर तैतरीयोपनिषद्, कादम्बरी, वासवदत्ता, शिवराजविजय, दशकुमारचरित, आधुनिक गद्यकारों में सर्वश्रेष्ठ श्री बटुकनाथ शास्त्री जी का 'वासन्ती' दिव्यानन्द द्वारा रचित शार्दूलकर्णावदानत आदि हैं। इनको इसीलिए आधार बनाया गया है, ताकि पाठक का मनोरंजन एवं आकर्षण बना रहे।

उद्देश्य :–

जैसे–जैसे कालक्रम की गति बढ़ती गई, समयानुकूल गद्य की शैलियों का भी निरन्तर विकास होता गया। गद्य की आधुनिक शैली भले ही अतीव सरल हो। परन्तु दण्डी, सुबन्धु और बाण के ग्रन्थों पर अगर हम दृष्टिपात करें तो गद्य की एक विलक्षण शैली का अस्तित्व हमें देखने को मिलता है।

प्रामाणिक अनुच्छेदों के संकलन से सहज में ही सम्पूर्ण साहित्य के प्रदर्शन अथवा परिचय कराने से गागर में सागर भरने का कार्य किया है। पाठकों में मनोविनोद उत्पन्न करना संकलनकर्ता का उद्देश्य रहा है, जिसमें वह सफल

रहा है। संस्कृत भाषा केवल बोलचाल अथवा लेखन का ही माध्यम नहीं है, अपितु भारतीय संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों की शिक्षाओं का खज़ाना है तथा इस खज़ाने में सभी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान पाये जाते हैं और सफलता भी मिली है। गद्यकारों ने अपनी–अपनी प्रतिभा के अनुसार गद्य–काव्य को विकसित किया जिसका प्रमाण हमारा "संस्कृत गद्य–संकलन" है।

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit
GDC Samba.

पाठ संख्या 1 से 8 तक

सामान्य परिचय :-

संस्कृत साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया गया है, जैसे गद्य, पद्य और चम्पू। संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग पद्यों में समाया हुआ है। फिर भी पद्य की अपेक्षा गद्य किसी तरह से हमें प्राचीन ग्रन्थों में भी कम देखने को नहीं मिलता। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों को माना जाता है। वेदों में पद्य की बहुलता अत्यधिक है फिर भी यजुर्वेद का अधिकांश भाग गद्यों में बंटा हुआ है। वेदों से ही गद्य की धारा फूटकर ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों और अन्य साहित्यिक और पौराणिक ग्रन्थों से बहती हुई विभिन्न रचनातमक रूपों को बदलती हुई आज हम तक पहुँची है।

संस्कृत गद्य संकलन में संकलित गद्यांशों का चयन जहां एक ओर छात्रों को वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल पर्यन्त गद्य रचना का दिग्दर्शन कराता है वहीं दूसरी ओर उनमें निहित भावों का आकर्षक, उदात्त, सजीव अभिव्यकित को प्रस्तुत कर सहृदय को आनन्दित करता है।

आधार पाठ :-

संस्कृत गद्य संकलन के आधार पाठ वेद विशेषकर उपनिषद्, शिलालेख, दण्डी के दशकुमारचरित, बाण की कादम्बरी, आधुनिक कथाकार एवं उनकी कहानी लिखने की शैली, अम्बिकादत्तव्यास कृत शिवराज विजय और दिव्यानंद से परिचित कराने का प्रयास किया गया है।

उद्देश्य :-

भारतीय संस्कृति का मूल संस्कृत भाषा एवं साहित्य है। प्रस्तुत गद्य संकलन द्वारा छात्रों को संस्कृत साहित्य के विभिन्न पहलुओं से अवगत कराने का प्रयत्न किया गया है। दण्डी, सुबन्धु, बाण के ग्रन्थ नीरस ग्रन्थ न होकर गद्य काव्य हैं और पाठक के मन को उतना ही आनन्द प्रदान करते हैं जितना कि उच्च कोटि के काव्य

'संस्कृत गद्य संकलन' एक उत्तम गद्य संकलन है, क्योंकि इसके संकलनकर्ता ने जहाँ एक ओर छात्रों के स्तर का ध्यान रखा है, वहीं दूसरी ओर कुछ लक्ष्यों को सफलता से सम्पन्न भी किया है—

जहाँ एक ओर गद्य की प्रारम्भिक अवस्था का परिचय वैदिक गद्य के संकलन में दिखाया है, वहीं उत्तर वैदिक काल में उसका विकास दिखाना लक्षित रहा है, जो ब्राह्मण, आरयण्क एवं उपनिषदों के रूप में मिलता है। तदुपरान्त सूत्र शैली, शास्त्रीय गद्य, पौराणिक गद्य और साहित्यिक गद्य का परिचय इंगित करना उद्देश्य रहा है।

'पद्य रचना' के सौष्ठव, सौकर्य, माधुर्य और प्रभाव के साथ–साथ 'गद्य रचना' का आकर्षण किमपि उपेक्षनीय अथवा कम नहीं– ऐसी धारणा को चित्रित करने में पूर्ण सफलता मिली है।

प्रेरक एवं शिक्षाप्रद प्रसंग के प्रदर्शन से जहाँ संस्कृत रचनाओं की रोचकता का पता चलता है, वहीं मानव जीवन के नैतिक मूल्यों की महत्ता को दर्शाया गया है। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान पर्यन्त उत्कृष्ट व प्रामाणिक अनुच्छेदों के संकलन से सहज में ही सम्पूर्ण साहित्य के प्रदर्शन अथवा परिचय कराने से गागर में सागर भरने का कार्य किया है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि संस्कृत गद्य के क्रमिक विकास, भाषा, शैली, रस, वाक्य–विन्यास आदि को सरलता एवं सुकरता से पाठकों को प्रदर्शित करना संकलनकर्ता का उद्देश्य रहा है, जिसमें वह सफल रहा है।

साथ–साथ ही संस्कृत भाषा केवल बोलचाल अथवा लेखन की ही माध्यम नहीं है, अपितु भारतीय संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों की शिक्षाओं का खज़ाना है।

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit
GDC Samba.

आचार्यानुशासनम्

1. मूल पाठ :–

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्याम् न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्रह्मणास्तेषांत्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि तेहि कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन् । तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत् एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवमु चैतदुपास्यम्।

शब्दार्थ :–

अनूच्य – पढ़ाकर, अन्तेवासिनम् – शिष्य को (गुरु के समीप रहने वाले को), अनुशास्ति – उपदेश करता है, धर्मं चर – धर्म का पालन करो। स्वाध्यायात्– अपने अध्ययन से, मा प्रमदः – आलस्य मत करो, आचार्याय प्रियधनम् – गुरु के लिए दक्षिणा को, आहृत्य – लाकर, सुचरितानि – अच्छे कार्य, श्रद्धया – निष्ठा से, कुशलात् – अपने कल्याण से, स्वाध्याय वचनाभ्याम् – अपने अध्ययन और अध्यापन से, देवपितृकार्याभ्याम् – देव पूजन और पितृ पूजन से, सेवितव्यानि – करने योग्य, उपास्यानि – उपासना करने योग्य, अस्मच्छ्रेयांसः– हमारी अपेक्षा अधिक, श्रिया – शान के साथ, ह्रिया – लज्जा से, भिया – भय से, संविदा – समझ बूझ के साथ, हि कर्मविचिकित्सा – कार्य करने में संशय, वृत्तविचिकित्सा – आचार के सम्बंध में

सन्देह, सम्मर्शिनः – बुद्धिमान, युक्ताः – चतुर एवं अनुभवी, आयुक्ताः – ऊँचे कामों में लगे हुए, अलूक्षा – स्निग्ध स्वभाव वाले, धर्मकामाः – धर्म की इच्छा वाले, वर्तेरन् – व्यवहार करें, वर्तेथाः – व्यवहार करो, आदेशः – आज्ञा, वेदोपनिषत् – वेदों का तत्त्व ज्ञान, अनुशासनम् – आत्मसंयम की शिक्षा, उपासितव्यम् – करना चाहिए, उपास्यम् – करने योग्य।

अनुवाद :–

वेद अध्यापन के बाद आचार्य आश्रम के विद्यार्थियों को शिक्षण देते हैं — सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय में प्रमाद न करो। आचार्य को अभीष्ट धन प्रदान करो। प्रजाओं की परम्परा विच्छिन्न न होने दो। सत्यसे न डिगो, धर्म से न डिगो, शुभ कर्मों में प्रमाद न करो, प्रगति के साधन न छोड़ो, शास्त्रों के अध्ययन–अध्यापन में प्रमाद न करो। देव और पितृ कर्मों का त्याग न करो। माता–पिता को देव रूप मानो, आचार्य को देवता समझो। अतिथि को देवरूप मानो। जो दोषरहित कर्म वर्णित हैं, उन्हीं का आचरण करो। अन्य का नहीं। हमारे शास्त्रादि में वर्णित जो श्रेष्ठ चरित्र हें, उसी की उपासना करो, अन्य की नहीं। हमसे श्रेष्ठ जो ब्राह्मण आचार्य आदि आएँ, उन्हें उत्तम आसन देकर विश्राम देना चाहिए। दानादि श्रद्धापूर्वक देने योग्य है। आर्थिक स्थिति के अनुरूप दान देने योग्य है। लज्जा अर्थात् सामाजिकता की शर्म तथा सिद्धान्त के भय से भी दान देना उचित है। संविद–मैत्री आदि के निर्वाह के लिए देना चाहिए। यदि आपको कर्म और आचरण के विषय में किसी तरह का सन्देह हो। ऐसी स्थिति में विचारशील, परामर्शदाता, आचरणनिष्ठ, निर्मल बुद्धि वाले धर्माभिलाषी ब्राह्मण से परामर्श करना चाहिए। वे जिस व्यवहार का आदेश करें, वैसा ही व्यवहार वहाँ करना चाहिए। किसी अपराध से लाञ्छित व्यक्ति के विषय में कोई सन्देह उपस्थित हो तो विचारशील, परामर्शकुशल, आचरणनिष्ठ, निर्मल मति वाले, धर्माभिलाषी ब्राह्मण से परामर्श करना चाहिए। वे जैसे व्यवहार का आदेश करें, वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। यही आपके लिए आदेश और उपदेश है। यही वेद आज्ञा है। यही ईश्वर का अनुशासन है। इन सिद्धान्तों की ही उपासना करनी चाहिए। यही उपास्य है।

सप्रसंग व्याख्या :–

प्रस्तुत प्रसंग तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली में से लिया गया है। प्रस्तुत गद्य में गुरु द्वारा शिष्य के प्रति समावर्तन संस्कार में दिए जाने वाले उपदेशों का उल्लेख है। प्राचीन भारत में प्रचलित गुरु–शिष्य परम्परा तथा अध्ययन–अध्यापन की पद्धतियों की जानकारी होती है।

इस सन्दर्भ में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि तैत्तिरीय उपनिषद् का 'आचार्यानुशासनम्' नामक उपदेश, जो विद्याध्ययन समाप्त करके जाने वाले स्नातकों को दिया गया है, वह किसी भी दीक्षान्त भाषण की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम है। इस उपदेश में कही गई सभी बातें मानव जीवन के लिए बड़ी उपयोगी हैं। संसार में किस प्रकार रहना चाहिए, किस प्रकार के कार्यों को नहीं करना चाहिए। इसमें व्यक्तिगत आचरण सम्बंधी महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया गया है। जैसे सत्याचरण धर्माचरण, प्रवचन, सुकृत्याचरण अपनी उन्नति के लिए लगातार प्रयत्न, दान, माता–पिता, गुरु की सेवा तथा देव–पितृ कार्यों के प्रति अपने–अपने कर्त्तव्यों का

उल्लेख किया गया है। सामाजिक व्यवहार के अन्तर्गत अतिथि सत्कार, श्रेष्ठ विद्वान, ब्राह्मणों का सत्कार, निजी तथा सामाजिक कामों में किसी प्रकार का सन्देह होने पर श्रेष्ठ विद्वानों से सलाह लेना तथा उनके आचरणों का यथा सम्भव अनुसरण करना। माता–पिता को देवता स्वरूप समझो तथा इसके साथ अतिथि व आचार्य को भी देवता ही माना जाए। अच्छे चरित्र का आचरण करते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों का श्रद्धा से सम्मान करो तथा बिना किसी भय के तथा उसके आचरण में सन्देह न करते हुए जिस प्रकार से वे व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार से व्यवहार करना चाहिए। इसी प्रकार का अनुशासन आचार्य अपनी ओर से समझाते हैं तथा शिष्यों को भी स्वयं तक सीमित नहीं रखते। शंका होने पर परमार्श लेने का परामर्श देते हैं। ब्राह्मण संज्ञा उस व्यक्ति के लिए है, जो ज्ञानयुक्त और निस्पृह हैं। जिस भी व्यक्ति ने ज्ञान को धर्माचरण के रूप में अपने जीवन में उतार लिया है, वही व्यक्ति मोह और भय से मुक्त होकर सही परामर्श दे सकता है। आचार्य श्रेष्ठ जीवन, श्रेष्ठ सिद्धान्तों को ही उपास्य मानते हैं।

भाग–ख

आलोन्नतयै जपः

2. मूलपाठ :–

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।

प्रसंग :–

वृहदारण्यकोपनिषद् से उद्धृत किये गये तीन प्रेरणादायक वाक्य जिन्हें हृदयंगम करना प्रत्येक भारतीय विशेषतः छात्रों का कर्त्तव्य है।

व्याख्या :–

हे ईश्वर मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, अन्धकार से मुझे प्रकाश (ज्ञान) की ओर ले चलो तथा मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो।

–: अभ्यास कार्य :–

अनुवाद सहित व्याख्या करें :–

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्।

g g g g g g

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit
GDC, Samba

सुदर्शनं तडाकम्

1. मूल पाठ :–

सिद्धम्। इदं तडाकं सुदर्शनं गिरिनगराद (पि, दू)रं मृत्तिकोपलविस्तारायामोच्छ्रयनिः सन्धिबद्धदृढ़सर्वपालीकरत्वात्पर्वत – पादप्रतिस्पर्धिसुष्लिष्टबन्धं ..... वजातेनाकृत्रिमेण सेतुबन्धेनोपपन्नंसुप्रतिविहित प्रणालीपरीवाहमीढ विधानं च त्रिस्कन्धं ..... नादिभिरनुग्रहैर्महत्युपचये वर्तते।

तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिचष्टनस्य (पौत्रस्य) (राज्ञः क्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिजयदाम्नः पुत्रस्य) राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्तनाम्नो रुद्रदाम्नो वर्षे द्विसप्ततितमे 72 मार्गशीर्षं बहुलप्रति पदायां ..... सृष्टवृष्टिना पर्जन्येन एकार्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरूर्जयतः सुवर्णसिकतापलाशिनी प्रभृतीनां नदीनामतिमात्रोद्वत्तैर्वेगैः सेतुम (क्रि) यमाणानुरूपप्रतिकारमपि गिरिशिखारतरुतटाट् टालकोपतल्पद्धारशरणोच्छ्रयविध्वंसिना युगनिधनसदृशपरमघोरवेगेन वायुना प्रर्माथतसलिलविक्षिप्तजर्जरीकृताव (यवं) ..... क्षिप्ताश्मवृक्षगुल्मलताप्रतानमानदीतलादित्युद्घाटितमासीत्। चत्वारि हस्तशतानि, विंशदुत्तराण्यायतेन एतावन्यतेव विस्तीर्णेन पञ्चसप्ततिहस्तानवगाढ़ेन भेदेन निः सृतसर्वतोयं मरुधन्वकल्पमतिभृशं दुर्दर्शनमासीत्

शब्दार्थ :–

सिद्धम् – सिद्धि हो, इदं तडाकं सुदर्शनं – यह सुदर्शन झील, महत्युपचये वर्तते = अच्छी दशा में है, मृत्तिकोपलविस्तारायामोच्छ्रय निः सन्धिबद्ध – मिट्टी एवं पाषाणों की चौड़ाई लम्बाई और ऊँचाई से बिना जोड़ की बंधी, सुश्लिष्टबन्धं – अच्छी तरह बंधे हुए, जातेनाकृत्रिमेण सेतुबन्धेनोपपन्नं – बने हुए अकृत्रिम बांध से युक्त, सुप्रतिविहितप्रणाली – अच्छी प्रकार बनी हुई नाली, त्रिस्कन्धं – तीन भागों में विभक्त, नादिभिरनुग्रहैः – समुचित व्यवस्थाओं से।

सुगृहीतनाम्नः = जिसका नाम लेना शुभ है।

गुरुभिरभ्यस्तनाम्नः	=	श्रेष्ठ लोगों द्वारा स्मरणीय।
सृष्टवृष्टिनापर्जन्येन	=	बहुत वर्षा होने पर।
गिरेरुर्जयतः	=	ऊर्जयत् पर्वत से निकलने वाली।
यमाणानुरूपप्रतीकारमपि	=	बचाने को समुचित उपाय करने पर भी।
युगनिधनसदृशपरमघोरवेगेन वायुना	=	प्रलयकालीन प्रभंजन के समान प्रचण्ड वेग वाले पवन से।
प्रमथितसलिलविक्षिप्तजर्जरीकृताव (यव)	=	विलोड़ित जल के विक्षेप से जर्जरीभूत अङ्गों वाला।
क्षिप्ताश्मगुल्मलताप्रतानया	=	पत्थरों, वृक्षों, झाड़ियों और लताओं के फैंके जाने से क्षुब्ध।
नदीतलादित्युद्घाटितमासीत्	=	वह सुदर्शन नदी जिसकी तलहटी तक उखाड़ दी गई।

अनुवाद :–

सुदर्शन तालाब गिरी नगर से दूर, मिट्टी एवं पाषाणों की चौड़ाई, लम्बाई, ऊँचाई से बिना जोड़ की बंधी मज़बूत बांध पंक्तियों के कारण पर्वतपाद की स्पर्धा करने वाला, अच्छी तरह से बन्धे हुए, बने हुए अकृत्रिम बाँध से युक्त अच्छी प्रकार से बनी नाली, बढ़े हुए जल को निकालने के लिए बड़े नाले तथा गन्दगी से बचाने के उपाय से युक्त तीन भागों में विभक्त समुचित व्यवस्थाओं से अच्छी दशाओं में है।

यह राजा महाक्षत्रप, जिसका नाम ही लेना शुभ है, स्वामिचष्टन का (पौत्र) राजा महाक्षत्रप जो श्रेष्ठ लोगों द्वारा प्रशंसनीय है। रुद्रदामन नामक शक् सम्वत् 72 में मार्गशीर्ष महीना बहुत प्रतिपदा में बारिश होने से समुद्र की तरह पृथ्वी पर ऊर्जवत् पर्वत से निकलने वाली पलाशिनी नाम वाली सुवर्ण सिक्ता नदी बहुत तेज़ बाढ़ आने से पुल को बचाने के लिए अनेक उपाय करने पर भी पर्वत की चोटियों, वृक्षों, तटों, अटारियों, मकानों के ऊपरी तलों, दरवाज़ों और बचाव के लिए बनाए गए ऊँचे–ऊँचे स्थानों को नष्ट कर देने वाले प्रलयकालीन, प्रलय करने वाली प्रचण्ड वेग वाली वायु से विलोड़ित, जल के विक्षेप से जर्जरीभूत अंगों वाले, पत्थरों, वृक्षों, झाड़ियों और लताओं के फैंके जाने से नदी की निचली सतह तक उखड़ गई। चार सौ बीस हाथ लम्बी, चार सौ बीस हाथ चौड़ी और 75 हाथ गहरी दरार पड़ने से सारा पानी बह गया और झील सूखी धरती की तरह दुर्दर्शन हो गई।

प्रसंगसहित व्याख्या :–

प्रस्तुत गद्यांश जूनागढ़ नगर की एक शिला पर खुदा हुआ था। इस शिलालेख को रुद्रदामन ने शक् सम्वत्

72 में अर्थात् 150 ईसा में खुदवाया था। प्रस्तुत गद्य में सुदर्शन झील के बांध के टूटने पर उसकी मरम्मत का विवरण है।

गिरिनगर जो कि एक आधुनिक ज़ूनागढ़ में है वहां की भूमि सिंचाई की दृष्टि से सर्वप्रथम मौर्यसम्राट चन्द्रगुप्त की आज्ञा से उसके प्रान्तीय शासक पुष्यगुप्त ने इस सुदर्शन झील का निर्माण कराया था। सम्राट अशोक के प्रान्तीय अधिकारी यवन तुषास्फ ने इस झील से नहरें निकलवाईं। शक् सम्वत् 72 में रुद्रदामन के शासनकाल में ऊर्जयत् पर्वत से निकली नदियाँ सुर्वणसिक्ता और पलाशिनी की बाढ़ से इस झील का बांध टूट गया और 420 हाथ लम्बी, 420 हाथ चौड़ी और 75 हाथ गहरी दरार से सारा पानी बह गया और उस सुदर्शन झील की दशा मरुभूमि की तरह दुर्दर्शन हो गई।

2. मूलपाठ :–

(तदिदं जनपद) स्यार्थे मौर्यस्य राज्ञाः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेन वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितमशोकस्य मौर्यस्य (कृ) ते यवनराजेन तुषास्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलंकृतं तत्कारितया च राजानुरूपकृतविधानया तस्मिन् भेदे दृष्ट्या प्रणाल्या विस्तृतसेतु.....। .... णा गर्भात्प्रभृत्यविहत समुदितराजलक्ष्मीधारणागुणतः सर्ववर्णैरभिगम्य रक्षर्णार्थं पतित्वे वृतेनाप्राणाच्छ्वासात् पुरुषवधनिवृत्तिकृतसत्यप्रतिज्ञेनान्यत्र संग्रामेष्वभिमुखागतसदृशशत्रुप्रहरणवितरणत्वाविगुणरिपु ..... धृतकारुण्येन स्वयमभिगतजनपदप्राणिपतितायुषशरणदेन दस्युव्याल मृगरोगादिभिरनुपसृष्टपूर्वनगर– निगमजनपदानां वीर्यार्जितानामनुरक्तसर्वप्रकृतीनां पूर्वापराकरावन्त्यनूपनीः वृदानर्त– सुराष्ट्रश्वभ्रनरूकच्छसिन्धु सौवीरकुकुरापरान्तनिषा दादीनां समग्राणां तत्प्रभावाद्य ..... (यथावत्प्राप्तधर्मा) मकामविषयाणां विषयाणां पत्या सर्वक्षत्राविष्कृत– वीरशब्दजातोत्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रसह्योत्सादकेन दक्षिणापथपते सातकर्नैर्द्विरपि निर्व्याजमवजित्यावजित्य सम्बन्धाविदूरतयानुत्सादनात्प्राप्तयशसा मा। (प्रा) प्तविजयेन भ्रष्टराजप्रतिष्ठापकेण यथार्थहस्तोच्छ्रयार्जितोर्जित धर्मानुरागेण शब्दार्थगान्धर्वन्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारणधारण – विज्ञानप्रयोगावाप्तविपुलकीर्तिना तुरगगजरथचर्यासिचर्मनियुद्धाद्या ..... तिपरबललाघवसौष्ठवक्रियेन अहरहर्दान– मानानवमानशीलेन स्थूललक्षेण यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्कभागैः कनकरजतबैढूर्यरत्नो– पाचयविष्यन्दमानकोशेन स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारालङ्कृतगद्यपद्यन प्रमाणमानोन्नान स्वरगतिवर्णसारसत्त्वादिभिः परलक्षणव्यंजनैरूपेतकान्तमूर्त्तिना स्वयमधिगत – महाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना वर्षसहस्राय गोब्राह्मण ..... र्थं धर्मकीर्तिवृद्धयर्थं चापीड़यित्वाक–रविष्टिप्रणयक्रियाभिः पौरजानपदं जनं स्वस्मात्कोशान्महता धनौघेनानतिमहताकालेन त्रिगुणदृढ़तरविस्तारायामं सेतुं विधाय ..... (सु) दर्शनतरं कारितमिति।

अस्मिनर्थे महाक्षत्रपस्य मतिसचिवकर्मसचिवैरमात्यगुण समुद्युक्तैरप्यतिमहत्त्वाद्भेदस्या–नुत्साहविमुखमतिभिः प्रख्यातारम्भं पुनः सेतुबंधनैराश्याद्बाहाभूतासु प्रजास्विदाधिष्ठाणे पौरजानपदजनानुग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नानामानर्तसुराष्ट्राणां पालनार्थं – नियुक्तेन पह्लवेन कुलैपपुत्रेणामात्मेन सुविशाखेन। यथावदर्थधर्मव्यवहार दर्शनैरनुरागमभिवर्द्धयता–शक्तेन दान्तेनाचपलेनाविस्मितेनार्येणाहार्येण स्वाधिष्ठिता धर्मकीर्तियशांसि भर्तुरभिवर्द्धयतानुष्ठितमिति।

शब्दार्थ :–

(तदिदं जनपद) स्यार्थे – जनपद के कल्याण के लिए। प्रणालीभिरलंकृतम् – छोटी–छोटी नालियों से सुशोभित कर दिया। राजानुरूपकृतविधानया – राजोचित सुरक्षा व्यवस्था संपन्न। सर्ववर्णैः – सभी जाति के लोगों ने। आप्राणोच्छ्वासात् = आजीवन। संग्रामेषु = युद्धों में। स्वयमभिगतजनपद– प्रणिपतितायुषशरणदेन = अपने आप उपस्थित अवनत जनसमूह को जो दीर्घ जीवन और अभयदान देता था। दस्युव्यालमृगरोगादिभिः = चोर, डाकू, हिंसक जन्तु, जंगली जानवर और रोगादि से। वीर्यार्जितानाम् = अपने पराक्रम से उपलब्ध। अनुरक्तसर्वप्रकृतीनाम् = राज्य के प्रति निष्ठावान् मन्त्रियों वाले। यथावत्प्राप्तधर्मार्थकामविषयाणाम् = संतुलित रूप से धर्म, अर्थ और कामादि त्रिवर्गों का सम्पादन करने वाले। प्रसह्योत्सादकेन = बलपूर्वक उखाड़कर फैंक दिया। अवजित्यावजित्य = दो–दो बार जीतकर। सम्बंधाविद्रतया = निकटतम सम्बंध के कारण। अनुत्सादनात् = मुक्त कर देने से। प्राप्तयशसा = जिसने कीर्ति को प्राप्त किया। भ्रष्टराजप्रतिष्ठापकेन = राज्यच्युत राजाओं को जिसने फिर से प्रतिष्ठित कर दिया। शब्दार्थगान्धर्वन्याया = व्याकरण, राजनीति, संगीत एवं तर्क आदि विद्याओं का विवरण, पारणधारणविज्ञानप्रयोगावाप्तविपुल– कीर्तिना = (शास्त्रों के) अध्ययन, स्मरण, सम्यक् अनुमति और व्यवहार से जिसने प्रभूत यश को प्राप्त किया।

तुरगगजरथचार्यासिचर्मनियुद्धाद्या ..... तिपरबललाघवसौष्ठव = घोड़े, हाथी और रथ के चलाने में तथा ढाल और तलवार के युद्ध में जो अत्यधिक साहस, स्फूर्ति और सफाई दिखाता था। अहरहर्दानमानावमानशीलेन = जो दिन रात, दान और मान के विषय में सर्वथा उदार भाव से सजग रहता था। यथावत्प्राप्तैः बलिशुक्ल भागैः = समुचित रूप से मिलने वाली मालगुजारी और चुंगी द्वारा।

परलक्षणव्यजनैः उपेतकान्तमूर्त्तिना = चक्रवर्तित्व आदि के द्योतक शंख–चक्र आदि के चिन्हों से जिसकी आकृति चमक रही थी।

स्वयमधिगतमहाक्षत्रपनाम्ना = वीरतापूर्ण कार्यों से जिसने स्वयं 'महाक्षत्रप' उपाधि को धारण किया।

नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्य प्राप्तदाम्ना = जिसने राजकुमारियों के स्वयंवर में अनेक जयमालाओं को गले लगाया।

गोब्राह्मणं .....र्थं धर्मकीर्तिवृद्धयर्थम् = गाय और ब्राह्मण की रक्षा के लिए पुण्य और यश की वृद्धि के लिए।

करविष्टिप्रणयक्रियाभिः = कर, बेगारी और भेंट आदि से।

धनौघेन = अपार धनराशि से।

अनतिमहता च कालेन = थोड़े ही समय में।

मतिसचिवकर्मसचिवैः = मतिसचिव और कर्मसचिवों ने। अमात्यगुणसमुद्यक्तैः = सचिवोचित समस्त गुणों से युक्त।

पौरजानपदजनानुग्रहार्थस = नगरनिवासी एवं प्रान्तवासियों पर कृपा करने के लिए।

दान्तेन = संयमी

अचपलेन = स्थिर

अविस्मितेन = निरभिमानी

स्वधिष्ठिता = स्वयं अधिष्ठित किए हुए

अभिवर्द्धयता = बढ़ाते हुए

अनुष्ठितमिति = सुदर्शन झील के बांध को बंधवा दिया।

अनुवाद सहित व्याख्या :–

इस सुदर्शन झील का लोगों के कल्याण के लिए रुद्रदामन ने पुनः निर्माण करवाया था। इस निर्माण कथा को और रुद्रदामन की शौर्य गाथा का मनोहर वर्णन इस गद्यांश में किया गया है। दरार की विशालता को देखकर महाक्षत्रप रुद्रदामन के मतिसचिवों तथा कर्मसचिवों ने टूटे बांध के जीर्णोद्धार के प्रति अपनी असहमति प्रकट कर दी थी। बांध के पुनः बंध जाने की आशा समाप्त होने पर प्रजा में हाहाकार होने लगा। तब प्रजाजनों की भलाई को ध्यान में रखते हुए रुद्रदामन ने अपने कोष से धन खर्च करके प्रान्तीय शासक सुविशाख द्वारा पहले की अपेक्षा तिगुने लम्बे चौड़े और सुदृढ़ बांध बंधवा कर झील को और अधिक सुन्दर बनवा दिया।

इस अभिलेख में रुद्रदामन को एक महान् योद्धा, विजेता और सफल शासक के रूप में अंकित किया गया है। युद्ध भूमि के अतिरिक्त अन्यत्र कभी भी नरहत्या न करने की प्रतिज्ञा उसने की थी। एक विदेशी शक–वंशज होकर भी उसने संस्कृत के प्रति गहरा अनुराग प्रकट किया और स्वयं गद्य और पद्य दोनों प्रकार की काव्य रचना में कुशलता दिखाई।

अपने आप उपस्थित अवनत जनसमूह को जो दीर्घ जीवन और अभय देता था। चोर, डाकू, हिंसक जन्तु आदि जंगली जानवर और रोगादि से सदा अनाक्रान्त रहने वाले जन समुदाय से युक्त स्थानीय स्वशासन से युक्त नगरों वाले अपने पराक्रम से उपलब्ध राज्य के प्रति निष्ठावान् मन्त्रियों वाले पूर्वी मालव, पश्चिमी मालव, काठियावाड़, साबरमती नदी के समीपवर्ती प्रदेश मारवाड, कच्छ, पश्चिमी सिन्ध, पूर्वी सिन्ध, अरावली पहाड़ी भूमि इत्यादि प्रान्तों का जो राजा था, सब पर उसका प्रभाव था।

जिसने राजकुमारियों के स्वयंवर में अनेक जयमालाओं को गले लगाया। महाक्षत्रप के द्वारा रुद्रदामन नाम से सैकड़ों वर्षों के लिए गाय और ब्राह्मण की रक्षा के लिये पुष्प और यश की वृद्धि के लिये बेगार और भेंट आदि से नगर के लोगों को अपने कोष से अत्यधिक धनराशि से थोड़े ही समय में पहले की अपेक्षा तिगुने लम्बे, चौड़े और सुदृढ़ बांध को और अधिक सुन्दर बनवा दिया।

इसके लिए महाक्षत्रप के बुद्धिमान मन्त्रियों द्वारा मन्त्री के योग्य सारे गुणों से युक्त सुदर्शन झील के पुनः निर्माण कार्य के प्रति जिन्होंने असहमति प्रकट कर दी थी। ऐसे मन्त्रियों द्वारा पुनः बांध बांधने की आशा टूटने से प्रजा में त्राहि–त्राहि करने पर अधिष्ठान के लिए, नगर निवासी एवं प्रान्त वासियों पर कृपा करने के लिए समस्त आनर्त और सौराष्ट्र प्रदेश के पालन के लिए कुलेप के पुत्र ने अपनी प्रकाण्ड बुद्धि से धर्म–अर्थ और व्यवहार के समुचित दर्शन से अनुराग प्रेम को बढ़ाने वाले संयमी स्थिर निराभिमानी आर्योचित गुणों से सम्पन्न स्वयं अधिष्ठित किये हुये राजा के धर्म कीर्ति और यश को बढ़ाते हुए सुदर्शन झील के बांध को बांध दिया।

अलंकृत गद्यकाव्य की शैली में लिखा गया यह अभिलेख सिद्ध करता है कि द्वितीय शताब्दी ईस्वी में अलंकृत संस्कृत–गद्य काव्य की शैली का पूर्ण विकास हो चुका था। सुदर्शन झील के बांध की दीवार की उपमा पर्वत से दी गई है। झील के जलरहित हो जाने पर इसकी तुलना मरुभूमि से की गई है।

संतुलित रूप से धर्म अर्थ, और कामादि त्रिवर्गों का सम्पादन करने वाले सभी क्षत्रियों में विख्यात 'वीर' शब्द से उत्पन्न अभिमान के कारण स्वतन्त्र होकर रहने वाले योद्धाओं को बलपूर्वक उखाड़ दिया था। दक्षिण पथ के स्वामी सप्तकर्ण को भी दो बार जीतकर निकटतम सम्बंध के कारण छोड़ देने से जिसने कीर्ति को पाया था। जिसने विजय को प्राप्त किया। राज्य से भ्रष्ट राजाओं को जिसने फिर से प्रतिष्ठित कर दिया। न्याय के आसन से हाथ उठाकर समुचित निर्णय देते रहने के कारण जिसने धर्म के प्रति अपने महान् अनुराग का उपार्जन किया। व्याकरण, राजनीति, संगीत एवं तर्क आदि विद्याओं से सुशोभित, शास्त्रों का अध्ययन, स्मरण, सम्यक् अनुमति और व्यवहार से जिसने प्रभूत यश को प्राप्त किया। घोड़े, हाथी और रथ के चलाने में तथा ढाल और तलवार के युद्ध में जो अत्यधिक साहस, स्फूर्ति और सफाई दिखाता था, जो दिन रात राज और मान के विषय में सर्वदा उदार भाव से सजग रहता था।

बड़े लक्ष्य से प्राप्त समुचित रूप से मिलने वाली, माल गुज़ारी और चुंगी इत्यादि के द्वारा सोना, चांदी, हरे रंग की वैदूर्य मणि और रत्नों के ढेर से जिसका खज़ाना भरपूर था। लघु मधुर चित्र कान्त आदि शब्द–समय से प्रशस्त और अलंकारों से युक्त गद्य–पद्यात्मक काव्य रचना में निपुण बौद्धिक गुणों से यथोचित् चौड़ाई, लम्बाई, ऊँचाई बोलने के स्वर, चलने की गति, शरीर, बल, सत्त्व आदि शारीरिक गुणों से तथा चक्रवर्तित्व आदि के द्योतक शंख–चक्र आदि के चिन्हों से जिसकी आकृति चमक रही थी।

वीरतापूर्ण कार्यों से जिसने स्वयं 'महाक्षत्रप' उपाधि को धारण किया।

–: अभ्यास कार्य :–

निम्नलिखित गद्यांश की प्रसंग सहित व्याख्या करें :–

तदिदं राज्ञौ महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिचष्टनस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्तानाम्नो रुद्रदामनो वर्षे द्विसप्ततिमे ७२ मार्गशीर्ष बहुलप्रति .... सुष्ट वृष्टिना पर्जन्येन एकार्णवभूतायामिव पृथ्वियां कृतायां गिरेरुर्जयतः सुवर्णसिकतापलाशिनी प्रभृतीनां नदीनामतिमात्रोद्धतैर्वेगैः सेतुम् यमाणानुरूप – प्रतिकारमपि गिरिशिखर तरुतटाट् टालकोपतल्पणारशरद्वोच्छ्रयविध्वंसिना युगनिधनसदृशपरमघोरवेगेन वायुना प्रर्मार्थतसलिलविक्षिप्तजर्जरीकृताव (यव) .... क्षिप्ताश्मवृक्षगुल्मलताप्रतानमानदीतलादित्युद्घाटितमासीत्।

ᑫ ᑫ ᑫ ᑫ ᑫ ᑫ

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit,
GDC, Samba.

आदर्शगृहिणी

1. मूल पाठ :–

अस्ति द्रविडेषु काञ्ची नाम नगरी। तस्यामनेककोटिसारः श्रेष्ठिपुत्रः शक्तिकुमारो नामासीत्। सोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चिन्तामापेदे – 'नास्त्यदाराणामननुगुणदारणां वा सुखं नाम। तत्कथं नु गुणवद्विन्देयं कलत्रम्' इति। अथ परप्रत्ययाहृतेषु दारेषु यादृच्छिकीं संपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा वस्त्रान्तपिनद्धशालिप्रस्थो भुवं बभ्राम। 'लक्ष्णज्ञोऽयम्' इत्यमुष्मै कन्याः कन्यावन्तः प्रदर्शयां बभूवुः – यां कांचिल्लक्षणवतीं सवर्णां कन्यां दृष्ट्वा स किल ब्रवीति – 'भद्रे; शक्नोषि किमनेन शालिप्रस्थेन गुणवदन्नमस्मानभ्यवहारायितुम्' इति। स हसितावधूतो गृहाद् गृहं प्रविश्याभ्रमत्।

अस्ति द्रविडेषु ..... गृहं प्रविश्याभ्रमत्

शब्दार्थ :–

द्रविडेषु	=	द्रविड नामक देश में गोदावरी के दक्षिण–पूर्वी समुद्र तट तक फैला हुआ दक्षिण पथ का एक भूखण्ड।
काञ्ची	=	द्रविड देश की राजधानी का वर्तमान नाम काञ्जीवरम् है।
अनेककोटिसारः – अनेकानां कोटीनां सारः यस्य सः	=	कई करोड़ की सम्पत्ति वाला
श्रेष्ठिपुत्रः – श्रेष्ठिनः पुत्रः	=	सेठ का पुत्र।

अष्टादशवर्षदेशिय	=	लगभग अठारह वर्ष की आयु वाला।
चिन्तामापेदे	=	चिन्ता को प्राप्त हुआ।
अदाराणाम् – न सन्ति दाराः येषाम् ते	=	पत्नी रहित पुरुषों का।
अननुगुणदाराणाम् – न अनगुणाः	=	अनुकूल गुण विरहित पत्नियों
दाराः येषां ते तेषाम्		वाले पुरुषों का।
गुणवत्	=	गुणों से युक्त।
कलत्रम्	=	स्त्री को।
विन्देयम्	=	प्राप्त करूँ।
यादृच्छिकी सम्पत्तिम्	=	अभिलाषित सम्पत्ति को।
अनभिसमीक्ष्य	=	अच्छी तरह न देखकर।
कार्तान्तिकः	=	ज्योतिषी।
नाम	=	निश्चय से।
वस्त्रान्त पिनद्धशालिप्रस्थः	=	वस्त्र के छोर में 3 किलो के लगभग धान को बांधे हुए।
बभ्राम	=	घूमने वाला।
लक्षण सः	=	शुभ लक्षणों का ज्ञाता ज्योतिषी।
लक्षणवतीं	=	तेज और शुभ चिन्हों वाली।
सवर्णाम्	=	समान जाति वाली।
ब्रवीति स्म	=	कहता था।
गुणवत्	=	गुणों से युक्त।
अन्नं	=	अन्न को।
अभ्यवहारयितुं	=	खिलाने के लिए

हसितावधूतः	=	हसितः च अवधूतः च, हंसा और तिरस्कार किया गया।
अभ्रमत्	=	घूमता।

अनुवाद :–

द्रविड देश में कांची नामक नगरी थी उसमें शक्ति कुमार नामक कई करोड़ की पूंजी वाला सेठ का पुत्र था। वह जब लगभग अठारह वर्ष का हो गया, तब उसने सोचा = "उस व्यक्ति को निश्चय सुख नहीं है जिसकी पत्नी न हो या हो तो अनुकूल न हो तो क्यों न गुणवती पत्नी प्राप्त करूं ?" इसके बाद दूसरों के विश्वास पर लाई गई पत्नियों में अभीष्ट (गुण) वैभव न देखकर सामुद्रिक (रेखा भविष्य बताने वाले) का स्वांग रचकर कपड़े के छोर में प्रस्थ (सेर चार) भर शालि (एक प्रकार का आजयाधान या मुंजी) बांधकर पृथ्वी का भ्रमण करने लगा। जिस किसी सुन्दर लक्षणों वाली सजातीय कन्या को देखता था तो कहता था = हे कल्याणी! क्या तुम प्रस्थ भर मुंजी से हमें स्वादिष्ट भोजन करा सकती हो ? उसकी हंसी उड़ाई गई और तिरस्कार किया गया तथा एक घर से दूसरे घर में प्रवेश करने लगा।

सप्रसंग व्याख्या :–

प्रस्तुत गद्यांश दण्डी द्वारा रचित 'दशकुमारचरितम्' से लिया गया है। इस गद्यांश में दण्डी ने एक आदर्श गृहिणी का वर्णन एक छोटी सी कन्या के माध्यम से किया है जिसमें द्रविड नामक देश के 'काञ्ची' नामक 'राजधानी' में एक करोड़पति सेठ का 'शक्ति कुमार' नामक पुत्र अपनी अठारह वर्ष की उम्र में अपनी मनवांछित पत्नी पाने के लिए एक ज्योतिषी का रूप धारण कर कपड़े के एक छोर में लगभग चार सेर धान बांधकर निकलता है। उस धान का स्वादिष्ट भोजन तैयार करने जैसी बातें कहकर लोगों की हंसी का, तिरस्कार का पात्र बनकर घूमता रहता है।

2. मूलपाठ :–

एकदा तु शिविषु कावेरीतीरपत्तने सह पितृभ्यां अवसितमहर्धिमवशीर्णभवनसारां धात्र्या प्रदर्श्यमानां काञ्चन विरलभूषणां कुमारीं ददर्श। अस्यां संसक्तचक्षुश्चातर्कयत् – 'अस्याः खलु कन्यकायाः सर्व एवावयवा नातिस्थूला, नातिकृशा, नातिह्रस्वा, नातिदीर्घा, न विकटा मृजावन्तश्च। रक्ततलाङ्गुली यवमत्स्यकमलकलशाद्यने– कपुण्यलेखालाञ्छितौ करौ, समगुल्फसन्धी मांसलावशिरालौ चाङ्घ्री, तनुतरमीषन्निम्नं गम्भीरं नाभिमण्डलं, बलित्रयेण चालंकृतमुदरम धनधान्यपुत्रभूयस्त्वचिह्नलेखालाञ्छततले स्निग्धोदग्रकोमलनखमणी, ऋज्यवनुपूर्ववृत्तताम्राङ्गुली संनतांसदेशे सौकुमार्यवत्यौ निमग्नपर्वसंधी च बाहुलते, तन्वी कम्बुवृत्तबन्धुरा च कन्धरा, वृत्तमध्यविभक्तरागाधरम् असंक्षिप्तचारुचिवुकम् आपूर्णकठिनगण्डमण्डलम्, असंगतानुवक्रनीलस्निग्धबुभ्रूलतम्, अनतिप्रौढ़तिलकुसुमसदृशनासिकम्, असितधवलरक्तत्रिभागभासुरमधुरधीरसंचारमन्थरायतेक्षणम्, इन्दुशकलसुन्दरललाटतम्, इन्द्रनील शिलाकाररम्यालकंपक्ति, द्विगुणकुण्डलितम्लाननालीकनाललालित

लम्बश्रवणपाशयुगलम् आननकमलम्, अनतिभंगुरो बहुलः पर्यन्तेऽप्यकपिल–रूचिरायामतानेकैकनिसर्गसभस्निग्धनीलो गन्धग्राही च मूधर्जकलापः। सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम्। आसज्जति च मे हृदयमस्यामेव। तत्परीक्ष्यैनामुद्वहेयम्। 'अविमृश्यकारिणा हि नियतमनेकाः पतन्त्यनुशयपरम्पराः, इति स्निग्धदृष्टिराचष्ट 'भद्रे कच्चिदस्ति कौशलं शालिप्रस्थेनानेन संपन्नमाहारमस्मानभ्याहारयितुम्' इति।

मूल पाठ :–

एकदा तु ..... संपन्नमाहारमस्मानभ्याहारपितुम्

शब्दार्थ :–

शिविषु	=	एक देश का नाम।
कावेरीतीरपतने	=	कावेरी के तट के नंगर में।
पितृभ्याम् सह	=	माता पिता के साथ।
अवशीर्णभवनसाराम्	=	नष्ट हुई घर की दौलत वाली को।
धात्र्या	=	दाई के द्वारा।
प्रदर्श्यमानाम्	=	दिखाई जाती हुई को।
काञ्चन्	=	किसी विरल आभूषण वालों को।
कुमारीं	=	अविवाहित कन्या को।
ददर्श	=	देखा।
संसक्तचक्षुः	=	अनुरक्त हुए नेत्र वाले।
अतर्कयत्	=	सोचा।
कन्यकायाः	=	कन्या के।
सर्वे	=	सब।
अवयवाः	=	अंग।
नातिस्थूलाः	=	बहुत मोटे नहीं।
नातिकृशा	=	बहुत पतले नहीं।
नातिह्रस्वा	=	बहुत छोटे नहीं।

नातिदीर्घा	=	बहुत लम्बे नहीं।
न विकटा	=	भद्दे नहीं हैं।
मृजावन्तः	=	स्वच्छता से युक्त।
रक्ततलाङ्गुली	=	लाल हथेली और अंगुलियों वाले हाथ।
यवमत्स्यकमलकलशाद्यने– कपुण्यलेखालाञ्छितौ	=	यव, मत्स्य, कमल, कलश आदि अनेक पुण्य रेखाओं से चिन्हित हैं।
समगुल्फसन्धी	=	समतल टखनों के जोड़ वाले।
मांसलावशिशलौ	=	मांस से भरे हुए, शिरा रहित।
तनुतरम्	=	पतला।
गम्भीरम्	=	गहरा।
बलित्रयेन	=	तीन झुर्रियों से।
चालंकृतम्	=	और सुसज्जित्
उदरम्	=	पेट।
धनधान्यपुत्रभूयस्त्वचिन्ह– लेखलाञ्छिततले	=	धन, अनाज और पुत्र की बहुलता के चिन्हों की रेखाओं से चिन्हित हथेलियों वाली।
स्निग्धोदग्रकोमलखमणी	=	जिनकी नख रूपी मणियाँ चिकनी सुस्पष्ट, कोमल हैं।
संनतांसदेशे	=	जिनके कन्धे झुके हुए हैं।
सौकुमार्यवत्यौ	=	सुकोमल।
तन्वी	=	पतली।
असंक्षिप्तचारूचिबुकम्	=	जिसकी ठोडी छोटी और सुन्दर है।
आपूर्णकठिनगण्डमण्डलम्	=	जिसमें कनपटी के आसपास का स्थान पूर्णरूप से विकसित और दृढ़ है।
असंगतानुवक्रनीलस्निग्धभ्रूलतम्	=	जिसमें भौहों रूपी लताएं न मिली हुई, तिरछी, काली और चमकदार हैं।

अनतिप्रौढतिलकुसुमसदृशनासिकम्	=	जिसकी नाक छोटी और तिल कुसुम के समान है।
इन्दुशकलसुन्दरललाटम्	=	जिसमें माथा अर्ध चन्द्रमा के समान सुन्दर है।
इन्द्रनीलशिलाकाररम्यालकपङ्क्ति	=	जिसमें घुंघराले बाल इन्द्रनीलशिला के आकार के समान सुन्दर हैं।
द्विगुणकुण्डलितम्लाननालीकनाल–ललितलम्बश्रवणपाशयुगलम्	=	जिसमें सुन्दर लम्बे कानों के फन्दों का जोड़ा दोहरा मुड़े हुए और मुरझाए हुए कमलनाल के समान है।
आननकमल	=	मुख रूपी कमल है।
रूचिरः आयामवान्	=	किनारों तक काले, सुन्दर लम्बे।
एकैकनिसर्गसमस्निग्धनीलो	=	जिसका प्रत्येक (बाल) स्वभावतः समान, चमकदार और काला है।
गन्धग्राही च	=	और सुगन्धित।
मूर्धजकलापः	=	बालों का समूह।
न व्यभिचरति	=	विपरीत आचरण नहीं करती है।
शीलम्	=	अच्छा चाल–चलन।
अविमृशयकारिणाम्	=	बिना विचारे काम करने वाले।
नियतम्	=	यकीनन।
अनेकाः	=	अनेक।
अनुशयपरम्पराः	=	पश्चाताप की परम्परा।
पतन्ति	=	गिरती हैं।
स्निग्धदृष्टिः	=	प्रेम भरी दृष्टि वाला।
आचष्ट	=	कहने लगा।
भद्रे	=	हे कल्याणकारिणी।
कौशलं	=	चतुराई भरा ढंग।

शालिप्रस्थेन	=	एक प्रस्थ भर धान से।
सम्पन्नम्	=	पका हुआ।
आहारम्	=	भोजन।
अभ्यहारयितुम्	=	खिलाने के लिए।

अनुवाद :–

एक बार शिवि नामक देश में कावेरी नदी के किनारे के नगर में अपने माता–पिता के साथ आई एक लड़की को देखा। उसका महान वैभव समाप्त हो चुका था। कौड़ी और श्रेष्ठ धन समाप्त हो चुका था। गहने बहुत कम थे। दाई ने उसे दिखाया, उस पर नेत्र गढ़ाकर उसने सोचा, इस कन्या के सभी अंग निश्चित ही न तो बहुत मोटे हैं और न ही पतले हैं। न बहुत छोटे हैं, न बहुत लम्बे हैं। कुरूप नहीं हैं, स्वच्छतायुक्त हैं, हाथों की उंगलियों के नीचे का भाग लाल है। उन हाथों पर जौ, मछली, कमल आदि अनेक मंगल रेखाओं के चिन्ह हैं। पैरों, टखनों का जोड़ बराबर (छेद रहित) है। मांस से भरे हुए और नसों से भरे नहीं दिखते। गोलाकार नाभि बहुत पतली, कुछ दबी और गहरी है। पेट तीन रेखाओं से विभूषित है। धन–धान्य और पुत्रों की अधिकता सूचक चिन्ह वाली रेखाएँ चिन्हित है। उन बाहु लताओं के मणि तुल्य नख चिकने और कोमल हैं, उंगलियां सीधी, क्रमशः गोलाई को लिए हुए पतली होती जाती तथा लाल हैं। कन्धे का भाग अच्छी तरह झुका है। उन बाहु लताओं में कोमलता है तथा जोड़ की गांठ दबी हुई है। उस ओज के मध्य भाग में लालिमा है। ठोढ़ी अत्यन्त कमनीय है। गोल गाल, भरा हुआ और तना है। लता के समान भौंह न सटी हुई टेढ़ी, काली तथा चिकनी है। नाक तिल के फूल के सामान अत्यन्त विकसित नहीं हुआ है। आंखें काली, लाल तथा सफेद इन तीनों भागों से युक्त चमकीली, आकर्षक और चंचल गति वाली धीमी और विस्तृत हैं। कपाल चन्द्रमा के समान सुन्दर है, घुंघराले बालों की पांव नीलम की सिल की आकृति की और कुण्डल बनाए गए मुंदें कमल की नाल के कारण सुन्दर और लम्बी केश बहुत टेढ़ी नहीं है। किनारे–किनारे भी पिंगल लालिमायुक्त काली कान्ति रहित और विस्तारयुक्त है। यह अनुभूत आकार अच्छे स्वभाव से रहित नहीं हो सकता और मेरा दिल इसी के प्रति लगा है। अतः परीक्षा करके इसी से विवाह करना चाहिए। यह पूर्ण निश्चित है कि बिना विचार काम करने वालों के आगे पश्चाताप की परम्पराएं गिरती हैं। यह सोचकर स्नेहपूर्ण दृष्टि लेकर बोला = हे कल्याणी! क्या तुम में इस प्रस्थ भर धान से तैयार किया हुआ भोजन मुझे कराने का कौशल है।

व्याख्या :–

प्रस्तुत गद्यांश में 'शक्ति कुमार' नामक उस सेठ के पुत्र का एक ज्योतिषी के रूप को धारण किये हुए एक सुन्दर युवती द्वारा आकर्षित होने का वर्णन है। उस युवती के रूप सौन्दर्य तथा उसमें एक आदर्श गृहिणी की कल्पना करता हुआ शक्ति कुमार नामक वह युवक यह निश्चित कर लेता है कि यह अवश्य ही अच्छी स्वभाव की भी होगी, मेरा दिल भी इस पर आ गया है, अतः क्यों ना इसकी परीक्षा लेकर इसके साथ विवाह

किया जाए। अपने मन में इस तरह से तय करके, आखिरकार उसकी परीक्षा लेने हेतु उसे प्रस्थ भर धान देकर उस प्रस्थ भर धान से भोजन तैयार कर खिलाने की बात कहता है।

मूल पाठ :–

ततस्तया वृद्धा दासी साकूतमालोकिता। तस्यहस्तात् प्रस्थमात्रं धान्यमादाय क्वचिदलिन्दोद्देशे सुसिक्तसंमृष्टेदत्तपादशौचमुपावेशयत्। सा कन्या तान् गन्धशालीन् संक्षुद्य मात्रया विशोष्यातपे मुहुर्मुहुः परिवर्त्य स्थिरसमायां भूमौ नालीपृष्ठेन मृदु मृदु घट्टयन्ती तुषैरखण्डैस्तण्डुलान्पृथक्चकार। जगाद च धात्रीम् – 'मातः' एभिस्तुषैरर्थिनो भूषणमृजाक्रियाक्षमैः स्वर्णकाराः। तेभ्य इमान्दत्वा लब्धाभि काकिणीभिः स्थिरतराण्यनत्यार्द्राणि नातिशुष्काणि काष्ठानि मितंपचां स्थालीमुभे शरावे चाहर इति। तथाकृते तया तांस्तण्डुलान – नातिनिम्नोत्तानविस्तीर्णकुक्षौ ककुभोलूखले लोहपत्रवेष्टितमुखेन समशरीरेण विभाव्यमानमध्यतानवनव्यायतेन गुरुणा खादिरेण मुसलेन चतुरललितोत्क्षेपणावक्षेपणायासितभुजमसकृदङ्गुलिभि– रुद्धृयावहय शूर्पशोधितकणकिंशारूकांस्तण्डुलान सकृदद्भिः प्रक्षाल्य क्वचितपञ्चगुणजले दत्तचुल्लीपूजा प्राक्षिपत्। प्रश्लथावयवेषु प्रस्फुरत्सु तण्डुलेषु मुकुलावस्थामतिवर्तमानेषु संक्षिप्यानलमुपहित – मुखपिधानया स्थाल्यान्नमण्डलम– गालयत्। दर्व्या चावघट्य मात्रया परिवर्त्य समपक्वेषु सिक्थेषु तां स्थालीमधोमुखीमवातिष्ठपत् समपक्ठपत्। इन्धनान्यन्तः साराव्यम्भसा समभ्युक्ष्य प्रशमिताग्नीन् कृष्णागांरीकृत्य तदर्थिभ्यः प्राहिणोत् – 'एभिर्लब्धाः' – काकिणीर्दत्त्वा शाकं, घृतं, दधितैलमामलकं चिञ्चाफलं च यथालाभमानय' इति। तथानुष्ठिते च तया द्वित्रानुपदशानुपपाद्य तदन्नमण्डमार्द्र– बालुको – पहितनवशरावगतमतिमृदुना तालवृन्तानिलेन शीतलीकृत्य सलवणसंभारं दत्तांगांर धूपवासं च संपाद्य, तदप्यामलकं श्लक्ष्णपिष्टमुत्पलगन्धि कृत्वा धात्रीमुखेन स्नानाय तमचोदयत्। तया च स्नानशद्धया दत्ततैलामलकः क्रमेण सस्नौ। स्नातः सिक्तमृष्टे कुट्टिमे फलमारुह्य पांडुहरितस्य त्रिभागशेषलूनस्यागंणक दलीपलाशस्योपरि शरावद्वयं दत्तमार्द्रमभिमृशन्नतिष्ठत्। सा तु तांपेयामेवाग्रे समुपाहरत पीत्वा चापनीताघ्वक्लमः प्रहृष्टः प्रक्लिन्नसकलगात्रः स्थितोऽभूत। ततस्तस्य शाल्योदनस्य दर्वीद्वयं दत्त्वा सर्पिर्मात्रां सूपमूपंदशं चोपजहार। इमं च दघ्ना च त्रिजातकावचूर्णितेन सुरभिशीतलाभ्यां च कालशेयकाञ्जिकाभ्यां शेषमन्नमभोजयत्। सशेष एवान्धस्यसावतृप्यत्। अयाचत पानीयम्। अथ नवभृगांरसंभृतमगुरुधूपधूपितमभिनवपाटलाकुसुमवासितमुत्फुल्लोत्पलग्रथितसौरभं वारि नालीधारात्मना पातयांवभूव। सोऽपि मुखोपहितशरावेन हिमशिशिरकण– करालितारुणायमानाक्षिपक्ष्मा धारावाभिनन्दितश्रवणः स्पर्शसुखोद्भिन्न रोमाञ्चकर्कशकपोलः परिमलप्रवालोतपीडफुल्लध्राणारन्ध्रो माधुर्यप्रकर्षावर्जितरस– नेन्द्रियस्तदच्छं पानीयं आकण्ठं पपौ शिरः कम्पसंज्ञावारिता च पुनरपरकरकेणाचमनमदत्त कन्या। वृद्धया तु तदुच्छिष्टमपोहय हरितगोमयोपलिप्ते कुट्टिमे स्वमेवोत्तरीयकर्पटं व्यवधाय क्षणमशेत। परितुष्टश्च विधिवदुपयम्य कन्यां निन्ये। नीत्वैतदनपेक्षः कामपि गणिकामवरोधमकरोत्। तामप्यसौ प्रियसखीमिवो – पाचरत्। पतिं च दैवतमिव मुक्ततन्द्रा पर्यचरत। गृहकार्याणि चाहीनमन्नवतिष्ठत्। परिजनं च दाक्षिण्यनिधिरात्माधीनमकरोत्। तदगुणवशीकृतश्च भर्ता सर्वमेव कुटुम्बं तदायत्तमेवकृत्वा तदेकाधीनजीवितशरीरस्त्रिवर्गं निर्विवेश।

शब्दार्थ :–

साकूतम्	=	विशेष अभिप्राय से।
आलोकिता	=	देखी।
आदाय	=	लेकर
अलिन्दोद्देशे	=	दरवाज़े के सामने के चबूतरे के स्थान पर।
सुसिक्त संमृष्टे	=	अच्छी तरह से गीला करके लीपे हुए।
दत्तपादशौचम्	=	जिसको पैरों की स्वच्छता के लिए जल दिया गया।
उपावेशयत	=	बैठा दिया गया।
गन्धशालीन	=	सुगन्धित धान को।
संक्षुद्य	=	कूट कर।
मात्रया	=	अल्प परिमाण सें
विशोष्य	=	सुखा कर।
आतपे	=	धूप में।
मुहुः–मुहुः	=	बार–बार।
परिवर्त्य	=	उलट–पलट कर।
स्थिरसमायाम्	=	पक्की और समतल।
भूमौ	=	ज़मीन पर।
नालीपृष्ठेन	=	डंडे के पिछले भाग से।
मृदु–मृदु	=	हल्के–हल्के रूप में।
घट्टयन्ती	=	कूटती हुई।
अखण्डैः	=	सम्पूर्ण।
तण्डुलान	=	चावलों को।
पृथक् चकार	=	अलग कर दिया।

जगाद	=	कहा।
धात्रीम्	=	दाई को।
तुषैः	=	भूसों से।
मातः	=	हे माता।
भूषणमृजाक्रियाक्षमैः	=	गहनों की रंगने की क्रिया में स्मर्थ।
एभिः	=	इन।
तुषैः	=	भूसों के।
अर्थिनः	=	याचक।
स्वर्णकाराः	=	सुनार।
लब्धाभिः	=	प्राप्त हुई से।
काकिणीभिः	=	कौड़ियों से।
स्थिरताणि	=	ठोस
अनत्याद्रीणि	=	न बहुत गीली।
नातिशुष्कानि	=	न बहुत सूखी।
काष्ठानि	=	लकड़ियां।
मितपचां	=	एक निश्चित नाप की।
स्थाली	=	पतीली।
उभे शरावे च	=	और दो कटोरे।
आहर	=	ले आओ।
अनतिनिम्नोत्तानविस्तीर्णकुक्षौ	=	जिसका मुख न बहुत गहरा, न बहुत ऊँचा, न बहुत फैला हुआ था।
ककुभोलूखले	=	अर्जुन वृक्ष के ओखल में।
लोहपत्रवेष्टितमुखेन	=	लोह पत्र से जुड़े हुए मुख वाले।
समशरीरेण	=	समान आकार वाले।

विभाव्यमानमध्यतानवेन	=	जिसके मध्य भाग का पतलापन दिखाई दे रहा है।
व्यायतेन	=	लम्बे चौड़े।
गुरुणा	=	भारी।
खादिरेण	=	खैर से बने हुए।
मुसलेन	=	मूसल के द्वारा।
चतुरललितोत्क्षेपणावक्षेपणा	=	चतुराई और सुन्दरता से उठाने
यासितभुजम्		और गिराने से अपनी भुजाओं को थका कर।
असकृत्	=	बार–बार।
अङ्गुलिभिः	=	अंगुलियों से।
उद्धृत्य	=	उठाकर।
अवहत्य	=	कूट कर।
शूर्पशोधितकणकिंशारूकान्	=	सूप से साफ कर दिए गए हैं कंकड़ और तिनके जिनसे ऐसे।
तण्डुलान	=	चावलों का।
प्रक्षाल्य	=	धोकर।
क्वथितपञ्चगुणो	=	गर्म किए गए पांच गुणे पानी में।
दत्तचुल्लीपूजा	=	चूल्हे की पूजा करने लगी।
प्राक्षिपत्	=	डालने लगी।
प्रश्लथावयवेषु	=	शिथिल अंगों वाले।
मुकुलावस्थांकली	=	अर्थात् कठोर अवस्था को।
अतिवर्तमानेषु	=	छोड़ देने वाले।
तण्डुलेषु प्रस्फुरत्सु	=	चावलों के फूल जाने पर।
अनलं	=	आग को

संक्षिप्य	=	बुझा कर।
उपहितमुखविधानायां	=	मुख के ऊपर रखे ढकने वाली।
स्थाल्यां	=	पतीले में।
अन्नमण्डम्	=	अन्न की माण्ड को
अगालयत्	=	गलाया।
दर्व्या	=	करछी से।
अवघट्य	=	हिला करके।
मात्रया	=	उचित मात्रा में।
परिवर्त्य	=	पलट करके।
समपक्वेषु सिक्थेषु	=	भात के दानों के समान रूप से पकने पर।
अधोमुखीम्	=	नीचे मुख वाली करके।
अवातिष्ठिपत्	=	टिका दिया।
अन्तःसाराणि इन्धनानि	=	अन्दर बचे हुए अंश वाली अर्थात् लकड़ियों को।
अम्भसा	=	पानी से।
समभ्युक्ष्य	=	बुझा कर।
प्रशामिताग्नीन	=	बुझी हुई आग वाली (लकड़ियों से)
कृष्णागांरीकृत्य	=	कोयला बनाकर के।
तदर्थिभ्यः	=	उनकी आवश्यकता वालों को।
प्राहिणोत	=	भेज दिया।
यथालाभम्	=	जितना मिल सके।
द्वित्रानुपदंशान	=	दो तीन सब्ज़ियों को।
उपपाद्य	=	तैयार कर।
आद्रवालुपहितनवशरावगतम्	=	गीली बालू पर रखे हुये नये कुण्ड में डाले हुए।

तालवृन्तानिलेन	=	ताड़ के पत्तों से बने हुए पंखों की हवा से।
शीतलीकृत्य	=	ठंडा करके।
सलवणसंभारम्	=	नमक मिलाकर।
दत्तागांरधूपवासं संपाद्य	=	जलते अगांर पर से उठने वाली सुगन्धित से वासित करके अर्थात् छौंक देकर।
तदप्यामलकम्	=	उस आँवले को।
श्लक्ष्यापिष्टम्	=	महीन पिसा हुआ।
उत्पलगन्धि	=	कमलों से सुगन्धित्।
कृत्वा	=	करके।
स्नानाय	=	स्नान के लिए।
आचोदयत	=	प्रेरित किया।
सिक्तमृष्टे	=	धोये पोंछे हुए।
कुट्टिमे	=	फर्श पर।
फलकम्	=	लकड़ी के पीढ़े पर।
आरूह्य	=	बैठकर।
पाण्डुहरितस्य	=	कुछ पीले, कुछ हरे।
अंगणकदलीपलाशस्य उपरि	=	आंगन में लगे हुए केले के पत्ते के ऊपर।
शरावद्वयं दत्तम	=	रखे हुए दो कटोरों को।
अभिमृशत्	=	स्पर्श करते हुए।
पेयाम्	=	पीने योग्य।
समुपाहरत	=	पास लाई गई।
अपनीताध्वकल्मः	=	जिसकी रास्ते की थकान दूर हो गई हो।
प्रहृष्टः	=	प्रसन्न हुआ।
प्रक्लिन्नसकलगात्रः	=	गीले शरीर वाला।

दर्वीद्वयम्	=	दो करछूल।
सर्पिमात्रम्	=	थोड़ा सा घी।
सूपम्	=	दाल।
उपजहार	=	परोस दिया।
त्रिजातकावचूर्णितेन	=	पिसे हुए सोंठ, मिर्च तथा पीपल से।
कालशेयम्	=	एक कलश में बिना जल मिला मट्ठा।
काञ्जिका	=	कांजी।
अभोजयत्	=	खाया।
सशेषे	=	बचे रहने पर।
अन्धसि	=	अन्न के।
नव भृगांर संभृतम	=	नयी सुराही में रखे हुये।
पाटलाकुसुमवासितम्	=	गुलाब के फूलों से सुगन्धित।
उत्फुल्ललोत्पलग्रथित सौरभम्	=	खिले कमलों की सुगन्धि से युक्त।
नालीधारात्मना	=	नाली से धार बाँध कर।
पातयाबभूव	=	गिराया।
मुखोपहित	=	मुख तक ले जाये गये।
परिमलप्रवालोत्पीडफुल्ल घ्राणरन्ध्रः	=	जिसकी नासिका गहरी सुगन्ध से भर गई है।
आकण्ठं पपौ	=	गले तक पिया अर्थात् खूब पिया।
उच्छिष्टम्	=	जूठन को।
अपोह्य	=	हटा कर।
उत्तरीयकर्पटम्	=	ऊपर का कपड़ा, दुपट्टा।
उपयम्य	=	निर्वाह करके।
निन्ये	=	ले गया।

एतदनपेक्षः	=	इसके उदासीन होते हुए।
अवरोधमकरोत्	=	अपने अन्तःपुर में प्रविष्ट कराया।
मुक्ततन्द्रा	=	आलस्य छोड़कर।
अहीनम्	=	त्रुटियों से रहित।
दक्षिण्यनिधिः	=	उदारता की भण्डार।
तदायत्तम्	=	उसके अधीन।
त्रिवर्ग निर्विवेश	=	धर्म, अर्थ, काम, किया।

अनुवाद :–

तब उस बूढ़ी नौकरानी ने अभिप्राय के साथ देखा। उसके हाथ से प्रस्थ भर धान लेकर दरबान के पास के एक स्थान को भली–भान्ति पानी से तर और साफ कर पैर धोने का पानी देकर बैठाया। उस लड़की ने उन सुगन्धित मुंजियों को मलकर धूप में सीमित रूप से सुखाकर धीरे–धीरे उलट–पलट कर कड़ी और समतल ज़मीन पर उखल में मूसल कर नीचे के भाग से हल्के हाथों से कूटती हुई बिना टूटी भूसी के साथ चावल अलग कर लिए, फिर धाय से बोली माता! यह भूसी गहनों को साफ करने में समर्थ है। स्वर्णकार इसके ग्राहक हैं। उन्हें ये देकर प्राप्त काकिणियों (विशेष सिक्के पैसे) से ठीक न अधिक गीली और न अधिक सूखी लकड़ियां कम चीज़ पकाने लायक छोटी हांडी और दो कटोरे ले आओ। उसके वैसे कर देने पर उसने वे चावल कुछ दबी, ऊपर मुख वाली तथा फैले पेड़ वाली गूलर (वृक्ष का नाम) की बनी ओखली में मूसल से पीटा। उस (मूसल) का मुँह लोहे की चादर से मढ़ा था। उसकी काया समतल थी। मध्य में पतलापन प्रतीत होता था विशेष बड़ा भारी और खैर की लकड़ी से बना था निपुण और सुन्दर उत्क्षेपण (मूसल उठाने की क्रिया) तथा अवक्षेपण (नीचे गिराने की क्रिया) के द्वारा चावल की कनियां और बाली के अग्र भाग सूप से साफ कर चावल बार–बार पानी में धोकर उबले हुए पंच गुणे पानी में चूल्हे की पूजा (पकाये जाने वाले अन्न का थोड़ा भाग चूल्हे की आग में डालकर) के बाद डाल दिया। जब चावल के अंग खूब ढीले हो गए, वे फूल गए तथा कली की (कढ़ी को) स्थिति पार कर गए, तब आग कम कर उसे बलटोई से जिसके मुख पर ढक्कन लगाया गया था, मांड गिरा दिया। फिर कलछुल से चलाकर सीमित रूप से उलट–पलट कर भात के समान रूप से पक जाने पर बलटोई औन्धा दी। ठोस लकड़ियां जल से तर कर उनकी आग शान्त कर उन्हें कोयले के रूप में बदल दिया और उनके ग्राहकों के पास भेज दिया और धाय (दाई) को कहा कि उनसे प्राप्त काकिणियां देकर साग, घी, दही, तेल, आँवला और इमली जितना मिल सके ले आओ। इसके द्वारा वैसा किए जाने पर दो तीन व्यञ्जन तैयार कर भात के उस मांड को नए सकोरे में रखकर और गीली रेत पर बैठाकर बहुत हल्की पंखे की हवा से ठंडा कर नमक आदि सामान डाला और जलते कोयले पर सुगन्धित

पदार्थ रखकर धुएं से सुगन्धित किया। फिर उस आँवले का बारीक चूर्ण कमल की सुगंधसे युक्त करके धाय द्वारा स्नान कर लेने को प्रेरित किया। उस (लड़की) ने (स्वयं) स्नान से शुद्ध होकर तेल और आँवला दिया और उस (शक्ति कुमार) ने क्रम से स्नान किया। स्नान कर स्वच्छ और साफ फर्श पर रखे पीढ़े पर बैठकर आंगन के केले के पेड़ के सफेद और हल्के हरे और इस प्रकार तोड़े गए पत्ते के ऊपर के तीन भाग (पेड़ पर ही) शेष रहे, रखे हुए सकोरों का जोड़ा पकड़ता हुआ बैठ गया। उधर उस (लड़की) ने वह पेय (भातयुक्त मांड) ही पहले परोसा। उसे पीकर उसके राह चलने की थकावट दूर हो गई। रोमांच हो आया और सारा शरीर खूब (पसीने से) गीला लिए हुए बैठ गया। फिर धान का भात दो कड़छियां देकर थोड़ा घी, चटनी और सब्ज़ी परोसी और इस (शक्ति कुमार) को त्रिजातक (एक सुगन्धित पदार्थ) के साथ फैले हुए दही से सुगन्धित और शीतल मट्ठे तथा काँजी के साथ शेष भात खिलाया। भात के बचे रहने पर ही वह तृप्त हो गया और पानी मांगने लगा।

इसके बाद नए शृंगार (एक प्रकार का टोंटीदार बर्तन) से भरा अगरबत्ती के धुएं से वासित खिले हुए कमलों से सुगन्धयुक्त जल टोंटी की धार के रूप में गिराया। फिर उसने मुख पर रखे हुए सकोरे से वह पानी गले तक पिया। उसकी बरौनियां बर्फ जैसे ठण्डे कणों से विस्तारित तथा लाल हो रही थीं। सुगन्ध प्रवाह के दवाब से नाक छिद्र खिल गए थे। मधुरता की अधिकता से जीभ आकृष्ट हो गई थी। सिर हिलाने के संकेत से रोकी जाने पर कन्या ने फिर दूसरे जल पात्र से आचमन के लिए जल दिया।

उधर वृद्धा के द्वारा उसकी जूठन हटाकर ताज़ा गोबर से लेपे फर्श पर वह अपना उत्तरीय वस्त्र भाग बिछाकर क्षण भर सोया। सन्तुष्ट होकर विधिपूर्वक विवाह कर कन्या को ले गया। ले जाने के बाद इसकी परवाह न करके उसने एक वैश्या को पत्नी बनाया। उस (लड़की) ने उस (वैश्या) के प्रति भी प्यारी सहेली जैसा आदर किया और आलस्य छोड़कर देवता की भान्ति पति की सेवा की। घर के काम सुचारू रूप से किये। उदारता की निधि बनकर उसने नौकर–चाकर वर्ग को अपने वश में कर लिया। उसके गुणों के वशीभूत होकर पति ने सारा का सारा परिवार उसके ही अधीन करके उस अकेली के अधीन प्राण और शरीर करके, धर्म, अर्थ और काम का उपभोग किया। अतः मेरा कहना है :–

गृहस्थ के लिए प्रिय और हितकर हर पत्नी के गुण होते हैं।

व्याख्या :–

प्रस्तुत गद्यांश में दण्डी जी ने आदर्श गृहिणी का वर्णन करते हुए बताया है कि जब शक्ति कुमार देशाटन के समय एक युवती से प्रभावित होकर उससे प्रस्थ भर धान से स्वादिष्ट भोजन बनाने की बात कहता है तो किस प्रकार वह युवती उसी मुंजी से ही अपनी कार्यकुशलता से घी आदि मंगवाती है और सुपाच्य भोजन बनाकर उसे भोजन खिलाकर सन्तुष्ट करती है। वह युवक उस युवती में आदर्श पत्नी के गुण देखता है जैसे– अकृत्रिम् अर्थात् प्राकृतिक सुन्दरता, अत्यल्प धन में सुस्वाद भोजन का निर्माण, पाक, कला में निपुणता, गृह प्रबन्ध में कुशलता, परिवारजनों पर उदारतापूर्वक नियन्त्रण रखने की क्षमता तथा पति की आवश्यकताओं की

शीघ्र पूर्ति और ध्यान रखने की भावना आदि गुणों का होना।

इन गुणों को देखकर उस युवक ने इस आदर्श गृहिणी से स्वयंवर किया और उसे अपने धर्म, अर्थ, काम में सहभागी बनाया।

इस तरह दण्डी ने आदर्श पत्नी में अकृत्रिम् सौन्दर्य, थोड़े धन द्वारा सुस्वादु भोजन बनाने की कला में निपुणता, गृह प्रबन्ध करने की कुशलता, परिजनों पर उदारतापूर्वक नियन्त्रण रखने की क्षमता तथा पति की आवश्यकताओं का ध्यान रखने की भावना – इन गुणों का होना आवश्यक बताया है।

–: अभ्यास कार्य :–

निम्नलिखित गद्यांश की व्याख्या करें :–

अस्ति द्रविडेषु काञ्ची नाम नगरी। तस्यामनेककोटिसारः श्रेष्ठिपुत्रः शक्तिकुमारो नामासीत। सोऽष्टादशवर्षदेशीययश्चिन्मतामापेदे = नास्त्यदाराणामननुगुणदाराणां वा सुखं नाम। तत्कथं नु गुणवद्विन्देयं कलत्रम् इति। अथ पर प्रत्ययाहृतेषुदारेषु यादृच्छिकीं सम्पत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तान्तिको नाम भूत्वा वस्त्रान्तपिनद्धशालिप्रस्थो भुवं बभ्राम। लक्ष्णज्ञोऽयम इत्यमुष्मै कन्याः कन्यावन्तः प्रदर्शयां बभूवुः – यां कांचिलक्षणवतीं सवर्णां कन्यां दृष्ट्वा स किल ब्रवीति–भद्रे:, शक्नोषि किमनेन शालिप्रस्थेन गुणवदन्नमस्मानभ्यवहारायितुम्' इति। स हसितावधूतो गृहाद् गृहं प्रविश्याभ्रमत्।

ggggggg

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit
GDC, Samba.

शुकनासोपदेश

1. मूल पाठ :–

आलोकयतु तावत्कल्याणभिनिवेशी लक्ष्मीमेव प्रथमम्, इयं हि खड्गमण्डलोत्पलवनविश्रमभ्रमरी लक्ष्मीः। क्षीरसागरात्पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्त– वक्रताम्, उच्चैः श्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेः नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता। न ह्येवं विधमपरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणसंदाननिस्पन्दीकृतापि नश्यति। उद्धामदर्पभटसहस्रोल्लासिता सिलतापञजरविधृताप्यपक्रामति। मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितधनघटा परिपालितापि प्रपालयते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति न सत्य मनुबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति। अद्याप्यारूढ़मन्दरपरिवर्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनीसंचरण व्यतिकरलग्ननीलिननालकण्टकेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। दातारं दुस्वप्नमिव न स्मरति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति। परस्परविरुद्ध चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ति प्रकटयति जगति निजं चरितम्। विग्रहवत्यप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि। कलुषीकरोति। यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति।

शब्दार्थ :–

आलोकयतु	–	देखिये।
कल्याणाभिनिवेशी	–	कल्याण में आग्रह रखने वाला।
लक्ष्मी	–	विष्णु की पत्नी।

खड्गमण्डली	–	तलवारों के समूह रूपी नील कमलों के वन में घूमने वाली भौरीं।
क्षीरसागरात्	–	क्षीरसागर से।
पारिजातपल्लवेभ्यः	–	पारिजात वृक्ष के नए आए हुए कोमल पत्रों से।
रागम्	–	आसक्ति।
इन्दुशकलात	–	चन्द्रकला से।
वक्रता	–	कुटिलता।
उच्चैश्रवसः	–	उच्चैश्रव घोड़े से।
चञ्चलता	–	अस्थिरता, चपलता।
कालकूटात्	–	हलाहलविष से।
मोहनशक्तिम्	–	वशीकरण शक्ति।
कौस्तुभमणेः	–	विष्णु भगवान की कौस्तुभ मणि से।
नैष्ठुर्य	–	निर्दयता, कठोरता।
सहवासपरिचयवशात्	–	साथ रहने से उत्पन्न परिचय के कारण।
विरहविनोदचिह्नानि	–	विरह काल में मनोरंजन के चित्रों को।
गृहीत्वा	–	लेकर।
उद्गता	–	निकली।
अनार्या	–	आचारभ्रष्टा।
लब्धापि	–	प्राप्त की गई थी।
परिपाल्यते	–	संभाली जाती है।
दृढगुणपारासंदाननिष्पन्दीकृतापि	–	मज़बूत गुण रूपी फन्दे के बन्धन से न हिलने डुलने वाली।
अपक्रामति	–	निकल भागती है।

मदजलदुर्दिनान्धकारगनघटितधन– घटापरिपालिता	–	मदजल मेघाच्छन्न दिवस के अन्धकार से संबलित हाथियों द्वारा रचित घने समूहों में रखी हुई।
प्रपलायते	–	भाग जाती है।
अभिजनम्	–	कुलीनता।
ईक्षते	–	देखती है।
कुलक्रमम्	–	कुल परम्परा।
अनुवर्तते	–	अनुगमन करती है।
शीलम्	–	चरित्र।
वैदग्ध्यम्	–	पाण्डित्य।
गणयति	–	विचार करती है।
श्रुतम्	–	शास्त्रम्।
आकर्णयति	–	सुनती है।
अनुरूध्यते	–	अभ्यास करती है।
आद्रियते	–	आदर करती है।
विशेषज्ञता	–	सर्वार्थ वेदिता।
आचारम्	–	चालचलन।
अनुबुध्यते	–	जानती है।
लक्षणम्	–	शरीर पर भाग्यसूचक चिन्ह।
गन्धर्वनगरलेखा	–	गन्धर्व नगर की पंक्ति।
गन्धर्वनगर	–	आकाश में एक काल्पनिक नगर।
परिभ्रमति	–	घूमती है।
क्वचिदपि	–	कहीं भी।

निर्भर	–	दृढ़ता से।
पदं न आबध्नाति	–	पैर नहीं रखती है।
दातारम्	–	दानी को।
दुःस्वप्नम् इव	–	बुरे स्वप्न की तरह।
न स्मरति	–	स्मरण नहीं करती।
मनस्विनम्	–	प्रज्ञावान को।
उन्मत्तमिव	–	पागल की भान्ति।
उपहसति	–	मज़ाक करती है।
परस्परविरुद्धम्	–	एक दूसरे से असम्बद्ध।
इन्द्रजालमिव	–	मानों जादू की भान्ति।
दर्शयन्ति	–	दिखाती हुई।
प्रकटयति	–	प्रकट करती है।
जगति	–	जगत में।
निज चरितम्	–	अपने चरित्र को।
रेणुमयीव	–	धूलीमयी सी।
स्वच्छमपि	–	स्वच्छ वस्तु को भी।
कलुषी करोति	–	मलिन करती है।
यथा–यथा	–	जैसे जैसे।
चपला	–	च॰चलता।
दीप्यते	–	प्रदीप्त होती है।
तथा–तथा	–	वैसे–वैसे।
दीपशीखेव	–	दीपक की लौ की भान्ति।

कज्जलमलिनमेव	–	काजल के समान मैले।
कर्म	–	कर्म को।
उद्वमति	–	उगलती है।

अनुवाद :–

मंगल के अभिलाषी आप तब तक पहले लक्ष्मी को ही देख लें। श्रेष्ठ योद्धाओं के तलवार रूपी कमल वन में भ्रमरी रूपा यह लक्ष्मी एक साथ में रहने से परिचय बढ़ जाने के कारण वियोग के समय में मनोविनोद के चिन्ह रूप में पारिजात के कोमल पल्लवों से राग (आसक्ति) चन्द्रकला से अत्यन्त कुटिलता, उच्चैश्रवा नामक इन्द्र के घोड़े से चंचलता, हलाहल विष से मोहक शक्ति, मदिरा से मादकता और कौस्तुभमणि से क्रूरता आदि लक्षणों को लेकर ही मानों यह लक्ष्मी क्षीर समुद्र से बाहर निकली है।

न ही इस संसार में कोई दूसरी वस्तु ऐसी अपरिचित है जैसी कि यह दुष्टा है क्योंकि प्राप्त हो जाने पर भी बड़ी कठिनाई से पाली जाती है। राजोचित गुणों के बन्धन से दृढ़ रूप से बंधी लुप्त हो जाती है, उत्कट अभिमान से युक्त हज़ारों योद्धाओं द्वारा उठाई हुई भी निकल जाती है। मदजल रूपी वर्षा से अन्धकार कर देने वाले हज़ारों हथियारों द्वारा रचित सघन समूह द्वारा सुरक्षित रखी जाने पर भी भाग जाती है।

यह लक्ष्मी न परिचय के बन्धन को रखती है, न उत्तम कुल को देखती है, न सुन्दरता को देखती है, न कुल परम्परा का अनुसरण करती है, न चातुर्य को ही गिनती है, न शास्त्र को सुनती है, न त्याग का ही आदर करती है, न जानती है, न सामुद्रिक शास्त्रोक्त मनुष्य के शरीर में रहने वाले लक्षणों को ही प्रमाण बनाती है। गन्धर्व नगर की पंक्ति की भान्ति देखते–देखते ही नेत्रों के सामने से अलक्ष्य हो जाती है।

आज भी मानो मन्दराचल द्वारा घुमाये जाने से उड़े हुए भँवर से उत्पन्न भ्रान्ति के संस्कार से युक्त यह लक्ष्मी घूमती रहती है। कमलिनियों में विचरण के सम्बन्ध में मानो लगे हुए कमल नाल के कांटों से घायल हुई यह कहीं पर ही दृढ़ता से पैर रख जाती है। दानी को मानों बुरा स्वप्न समझकर स्मरण नहीं करती। मनस्वी को पागल समझकर उसका उपहास करती है। यह लक्ष्मी परस्पर–विरोधी अपने चरित्र को मानो जादू की तरह दिखाती हुई संसार प्रकट करती है। शरीर धारण करने वाली होती हुई भी प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ती है। पुरुषोत्तम भगवान विष्णु में अनुरक्त होती हुई भी दुष्ट लोगों की प्रिय है।

धूलमयी यह लक्ष्मी वस्तु को भी कलुषित कर देती है और जैसे जैसे यह चंचल लक्ष्मी प्रदीप्त होती है, वैसे–वैसे दीप शिखा की भान्ति काजल के समान मलिन कार्यों को उगलती है।

प्रसंगसहित व्याख्या :–

प्रस्तुत गद्यांश इस पुस्तक में 'कादम्बरी' के शुकनासोपदेश में से लिया गया है। इसके रचयिता बाणभट्ट हैं। इस गद्यांश में शुकनास नामक बूढ़े मन्त्री का नवनियुक्त राजा चन्द्रपीड़ के राज्याभिषेक के समय दिया गया

उपदेश निहित है। इस उपदेश में शुकनास ने अपने अनुभवों द्वारा राजभट्ट का एवं राजलक्ष्मी आदि का वर्णन समुचित रूप से किया गया है। लेखक ने इस गद्यांश में बताया है कि लक्ष्मी चन्द्रकला के कुटिलता, इन्द्र के घोड़े सी चंचलता, मदिरा की मादकता, कौस्तुभमणि से क्रूरता आदि लक्षणों को धारण कर समुद्र से आई है। यह दुष्टा है क्योंकि बहुत कठिनाई से प्राप्त करने पर भी टिकती नहीं है। सुरक्षित रखने पर भी भाग जाती है। यह लक्ष्मी स्थिर नहीं है। यह लक्ष्मी दानी को भी याद नहीं रखती है। मनस्वी को भी कुछ नहीं समझती। शरीर धारण करने वाली होती हुई भी प्रत्यक्ष नहीं दिखती है। विष्णु भगवान की प्रिय होती हुई भी यह दुष्ट लोगों की प्रिय है।

यह लक्ष्मी स्वच्छ मन में भी लालच पैदा कर कलुषित करती है और जैसे जैसे यह लक्ष्मी किसी के पास उजाला करती हुई आती है तो वैसे–वैसे दीपक की भान्ति काजल के समान मलिन कार्यों को भी करवाती है। अर्थात् धन प्राप्ति होने पर मनुष्य न चाहते हुए भी बेकाबू हो बुरे कार्यों में लग जाता है।

2. मूलपाठ :–

न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति। पुरतकमय्यपीन्द्रजालमाचरति। उत्कीर्णापि विप्रलभते। श्रुताप्यभिसंधत्ते। चिन्तितापिवञ्चयति। एवं विधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवा भवन्ति राजानः सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति। तथा हि = अभिषेकसमय एवं चैतेषां मगंलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्। पुरोहितकुशाग्रसमार्जनीभिरिवापह्रयते क्षान्तिः। उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्। आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम्। ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः। तथाहि = केचिच्छ्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचटुलाभिः खद्योतोन्मेषमुहूर्तमनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिर्तिभिः संपभ्दिः प्रलोभ्यमानः धनलवलाभावावलेपविस्मृत जन्मानोऽनेकदोषोपचितेन दोषासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः विविधविषयग्रसितालसैः पञ्चभिरप्यनेक सहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियैरायास्यमानः प्रकृतिचञ्चलतया लब्ध प्रसेरेणैकेनापि शतसहस्रतामिवोपगते मनसाकुली क्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति। ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिवग्रस्यन्ते, मदनशरमर्माहता इव मुखभंगसहस्राणि कुर्वन्ते, घनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, कालदृष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते अनुदिवसमापूर्यमाणाः पापेनबाध्मातमूर्त्तयो भवन्ति। तदवस्थाश्रवव्यसनशतसंख्यतामुपगता वल्मीकतृणाग्रावस्थिता जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।

अपरे तु स्वार्थं निष्पादनपरैर्धनपिशितग्रासगृध्रैरास्थाननलनी धूर्त बकैर्धूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावीधरणमपरप्रणेयत्वमिति, स्वच्छन्दतां प्रभुत्वमिति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति, दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः, स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुष्य लोको चिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ता निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्यारोपितालिकाभिमाना = मर्त्यधर्मानोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचित्त चेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति।

एवं विधास्ते दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गणयन्ति। दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति। संभाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति। आज्ञामपि वरदानं मन्यन्ते। स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान् नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान, नाभ्यूत्तिष्ठन्ति गुरुन्। जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम्, आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं सवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्यवचनं श्रृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमुपर– चिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति। किं वा तेषां सांप्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणंकौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्।

तदेवं प्राये राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहकारिणि च यौवने कुमार, तथा प्रयतेथा यथा नोपहास्यसे जनेः न निन्द्यसे साधुभिः, नोपलभ्यसे सुहृद्भिः, न शोचयसे विद्वद्भिः, न प्रकाश्यसे विटैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्चयसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा चा समरोपित संस्कारः तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि तथापि भवद् गुणसंतोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। हंटमेव च पुनःपुनरभिधीयसे। धीरमपि प्रतत्नवन्तमपि पुरुषं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमानमनुभवतु भवान्नवयौवराज्याभिषेकमंगलम्। अवनमयद्विषतां शिरांसि। उन्नमय बन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरं प्रारब्ध दिग्विजयः विजितामपि तव पित्रासप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुंधराम्। अयञ्च ते कालः प्रतापमारोपयितुम। आरूढ़प्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति इत्येतावदभिधायोपशशाम्।

शब्दार्थ :–

अपरिचितया	=	अपरिचिता।
अनया	=	इस (लक्ष्मी) के द्वारा।
निर्भरम्	=	दृढ़ता से।
उपगूढ़ो	=	आलिंगन किया गया।
न विप्रलब्धः	=	ठगा न गया हो।
नियतम्	=	निश्चित रूप से।
आलेख्यगतापि	=	चित्र लिखित होने पर भी।
चलति	=	चलती है।
पुस्तकमय्यपि	=	ज्ञानमयी होने पर भी।

इन्द्रजालम् आचरति	=	जादू करती है।
चिन्तितापि	=	चिन्तन की हुई भी।
वञ्चयति	=	छल लेती है।
एवंविधयापि	=	इस प्रकार (पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त) होने पर भी।
अनया दुराचारया	=	दुष्ट आचरण वाली इस (लक्ष्मी) के द्वारा।
दैववशेन	=	भाग्यवश।
परिगृहीता	=	पकड़े गए।
विक्ल्वाः	=	व्याकुल।
भवन्ति	=	हो जाते हैं।
राजानः	=	राजा।
सर्वाविनयाधिष्ठानताम्	=	सब प्रकार की उच्छृंखलाओं के निवास स्थान को।
गच्छन्ति	=	प्राप्त करते हैं।
तथाहि	=	जैसे कि।
अभिषेकसमये एव	=	राजतिलक के समय ही।
मंगलकलशजलैरिव	=	मंगल घटों के जल से मानो।
प्रक्षाल्यते	=	धो दी जाती है।
दाक्षिण्यम्	=	उदारता।
अग्निकार्यधूमेनेव	=	यज्ञ के धुएं से मानो (इनका) हृदयम्।
मलिनीक्रियते	=	मैला कर दिया जाता है।
पुरोहितकुशाग्र सम्मार्जिनीभिरिव	=	पुरोहितों की कुशाओं की नौकों रूपी झाड़ुओं से मानो।
अपनीयते	=	दूर कर दिया जाता है।
क्षान्ति	=	क्षमा गुण।

उष्णीषपट्टबन्धेनेव	=	मानो पगड़ी का रेशमी कपड़ा बांधने से।
आच्छाद्यते	=	ढक दी जाती है।
जरागमनस्मरणम्	=	बुढ़ापा आने की स्मृति।
आतपत्त्रमण्डलेनेव	=	मानो छत्र के मण्डल से।
अपसार्यते	=	रोक दिया जाता है।
परामृश्यते	=	पोंछ दिया जाता है।
यशः	=	यश।
केचित्	=	कुछ लोग।
श्रमवश – शिथिलशकुनिगलपुट–	=	थकावट के कारण कांपते हुए पक्षी
चपलाभिः		की गर्दन के समान चञ्चल।
खद्योतोन्मेष–मुहूर्तमनोहराभिः	=	जुगनू के चमकने की तरह क्षण भर के लिए मन हरने वाली।
सम्पद्भिः	=	सम्पत्तियों से।
प्रलोभ्यमानाः	=	लुभाए जाते हुए।
धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः	=	थोड़े से धन की प्राप्ति से जन्म को भूले हुए।
अनेकदोषोपचितेन	=	अनेक दोषों के बढ़ जाने से।
रागवशेन	=	आसक्ति के आवेश से।
बाध्यमानाः	=	सताए जाते हुए।
विविधविषयग्रासलालसैः	=	नाना प्रकार के विषयों रूपी ग्रासों की प्रबल इच्छाओं द्वारा।
पञ्चभिरपि	=	पाँच होती हुई भी।
अनेकसहस्रसंख्यैः	=	हज़ारों प्रतीत होने वाली।
प्रकृतिचञ्चलतया	=	स्वभाव की चञ्चलता के कारण।
लब्धप्रसरेण	=	प्रसार को प्राप्त हुए।

आकुलक्रियमाणाः	=	व्याकुल किए जाते हुए।
विह्व1लताम्	=	व्याकुलता को।
उपयान्ति	=	प्राप्त होते हैं।
ग्रहैरिव	=	ग्रहों द्वारा मानो।
गृह्यन्ते	=	पकड़े जाते हैं।
अभिभूयन्ते	=	दबा लिए जाते हैं।
मन्त्रैरिव	=	मानो मन्त्रों से।
आवेश्यन्ते	=	वश में कर लिए जाते हैं।
सत्वैरिव	=	मानो बलवान् हिंसक जानवरों द्वारा।
अवष्टभ्यन्ते	=	जकड़ लिए जाते हें।
वायुनेव	=	मानो हवा से।
विडम्ब्यन्ते	=	उड़ाए जाते हैं।
पिशाचैरिव	=	मानो पिशाचों द्वारा।
ग्रस्यन्ते	=	पकड़ लिए जाते हैं।
मदनशरैः	=	कामदेव के बाणों द्वारा।
मर्माहता इव	=	मानो शरीर के सजीव प्राणमूलक भाग पर चोट खाए हुए।
कुर्वते	=	बनाते हैं।
धनोष्मणा	=	धन की गर्मी द्वारा।
पच्यमाना इव	=	मानो पकाए जाते हुए।
विचेष्टन्ते	=	नाना प्रकार के प्रयत्न करते हैं।
नाभिजानन्ति	=	नहीं पहचानते हैं।
कालद्रष्टा इव	=	सांप से डसे हुए व्यक्तियों की भान्ति।

महामन्त्रैरपि	=	वैद्यों के महान मन्त्रों से भी।
न प्रतिबुध्यन्ते	=	जागते नहीं हैं।
अनुदिवसम्	=	प्रतिदिन।
पापेन आपूर्यमाणाः इव	=	मानो पाप से परिपूरित होते हुए भी।
अध्मात मूर्तयः	=	मोटे शरीर वाले।
व्यसनशतशरव्यतामुपगताः	=	सैकड़ों व्यसनों के लक्ष्य बने हुए।
वल्मीकतृणाग्रावस्थिताः	=	वामी के तिनकों से अग्रभागों पर टिकी हुई।
जलबिन्दवः इव	=	पानी की बून्दों की तरह।
पतितमपि	=	गिरते हुए भी।
आत्मानम्	=	अपने आप को।
नावगच्छन्ति	=	नहीं जानते हैं।
स्वार्थ निष्पादनतत्परैः	=	अपना मतलब पूरा करने में लगे हुओं के द्वारा।
धनपिशितग्रासतगृध्रैः	=	धन रूपी मांस के कौर पर गीद तुल्य।
दोषानपि	=	दोषो को भी।
विहसद्भिः	=	हंसते हुए।
प्रतारणकुशलैः	=	ठगने में चतुरों के द्वारा।
द्युतम्	=	जुआ।
विनोदमिति	=	मनोरंजन।
परदाराभिगमनम्	=	पर स्त्री गमन।
वैदग्ध्यमिति	=	चतुरता।
स्वदारपरित्याग	=	अपनी स्त्री का त्याग।
अव्यसनितेति	=	व्यसन नहीं है।
गुरुवचनावधीरणम्	=	गुरु के वचन का उल्लंघन।

अपरप्रणेयत्वमिति	=	दूसरों की अधीनता का न होना है।
स्वच्छन्दता	=	मनमानी।
प्रभुत्वमिति	=	आधिपत्य है।
तरलता	=	चञ्चलता।
उत्साह इति	=	उत्साह है।
अपक्षपातित्वमिति	=	पक्षपात का अभाव है।
अमानुषलोकोचिताभिः	=	आलौकिक जनों के उपयुक्त।
स्तुतिभिः	=	प्रशंसाओं द्वारा।
प्रतार्यमाणाः	=	ठगे जाते हुए।
वित्तमदमत्तचिताः	=	धन के घमण्ड से उन्मत्त हृदयवाले।
निश्चेतनतमा	=	सुध–बुध न होने के कारण।
आरोपितालीकाभिमाना	=	झूठा अभिमान करने वाले।
मर्त्यधर्माणोऽपि	=	मरणशील होते हुए भी।
दिव्यांशावतीर्णमिव	=	मानो दिव्य अंश के अवतार को।
सदैवतमिव	=	मानो देवत्व को।
अतिमानुषम्	=	मानो आलौकिकत्व।
आत्मानम्	=	अपने को।
उत्प्रेक्षमाणाम्	=	सम्भावना करते हुए।
सर्वजनस्य	=	सब लोगों के।
उपहास्यताम्	=	मज़ाक के पात्र।
उपयान्ति	=	बनते हैं।
एव विधाः	=	इस प्रकार के।
दर्शनप्रदानम्	=	दर्शन देने को।

गणयन्ति	=	गिनते हैं।
उपकारपक्षे	=	उपकार के पक्ष में।
स्थापयन्ति	=	स्थापित करते हैं।
सविभागमध्ये	=	पारितोषक देना।
मिथ्यामाहात्म्यगर्तनिर्भराः	=	झूठे बड़प्पन के घमण्ड से भरे हुए।
न प्रणमन्ति	=	नमस्कार नहीं करते हैं।
द्विजातीन्	=	ब्राह्मणों को।
अर्चनीयान्	=	पूज्यों की
न अभिवादयन्ति	=	स्वागत नहीं करते हैं।
न अभ्युतिष्ठन्ति	=	उठकर स्वागत नहीं करते हैं।
जरावैक्लयव्यप्रलपितमिति	=	वृद्धावस्था की व्याकुलता से उत्पन्न घड़बड़ाहट है।
वृद्धजनोपदेशम्	=	वृद्ध लोगों के उपदेश को।
आत्मप्रज्ञापरिभवः	=	अपनी बुद्धि का तिरस्कार है।
असूयन्ति	=	ईर्ष्या करते हैं।
हितवादिने	=	हितकर बात को करने वाले से।
सर्वथा	=	सब प्रकार से।
आलापन्ति	=	बातचीत करते हैं।
अवतिष्ठन्ते	=	बैठते हैं।
शृण्वन्ति	=	सुनते हैं।
वर्षन्ति	=	वर्षा करते हैं।
बहुमन्यन्ते	=	उत्कृष्ट जानते हैं।
अहर्निशम्	=	दिन रात।
अनवरत	=	निरन्तर।

उपरचिताञ्जलिः	=	हाथ जोड़कर।
अधिदैवतमिव	=	आराध्य देवता के रूप में।
विगतान्यकर्त्तव्य	=	अन्य कार्यों को छोड़कर।
माहात्म्यम्	=	बड़प्पन को।
उद्भविष्यति	=	उभारता है।
साम्प्रतम् किम्	=	क्या उचित है।
अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणम्	=	अति कठोर उपदेश से क्रूर।
कौटिल्यशास्त्रम्	=	कौटिल्य का शास्त्र।
राज्यतन्त्रे	=	राज्य शासन में।
महामोहकारिणी यौवने	=	महान अज्ञान रूपी अन्धकार वाले यौवन में।
प्रयतेथा	=	प्रयत्न करो।
न उपहास्यसे	=	उपहास न किए जाओ।
जनैः	=	लोगों द्वारा।
न निन्धसे	=	निन्दित न किए जाओ।
साधुभिः	=	साधुओं द्वारा।
न उपालभ्यसे	=	उलाहना न दिए जाओ।
सुहृद्भिः	=	मित्रों द्वारा।
न शोच्यसे	=	शोक के पात्र न बनते जाओ।
विद्वद्भिः	=	विद्वानों द्वारा।
न प्रकाशयसे	=	प्रकट न किए जाओ।
विटैः	=	लम्पटों द्वारा।
न वञ्च्यसे	=	न ठगे जाओ।
धूर्तैः	=	धूर्तों द्वारा।

न प्रलोभ्यसे	=	लुभाए न जाओ।
वनिताभिः	=	कामिनियों द्वारा।
न उन्मत्ती क्रियसे	=	पागल न बनाए जाओ।
मदनेन	=	काम द्वारा।
न आक्षिप्यसे	=	न खिंचे जाओ।
विषयैः	=	विषयों द्वारा।
न अवकृष्यसे	=	आकर्षित न किए जाओ।
रागेण	=	आसक्ति से।
न अपह्रियसे	=	लुटे न जाओ।
प्रकृत्या एव	=	स्वभाव से ही।
धीरः	=	धैर्यशाली।
पित्र	=	पिता द्वारा।
समारोपित संस्कारः	=	जिसके संस्कार किए गए हैं।
तरलहृदयम्	=	चञ्चल चित्त वाले को।
मदयन्ति	=	मस्त करते हैं।
भवद्गुणसन्तोषः	=	आपके गुणों के सन्तोष ने।
मामेवम्	=	मुझे इस प्रकार।
मुखरीकृतवान्	=	वाचाल बना दिया है।
इदमेव	=	यही।
अभिधीयसे	=	कहे जाते हो।
धीरमपि	=	धैर्यशाली।
प्रयत्नवन्तमपि	=	प्रयत्नशील को भी।
खलीकरोति	=	पथभ्रष्ट कर देती है।

सर्वथा	=	सब प्रकार के।
पित्रा	=	पिता द्वारा।
कल्याणैः	=	शुभ कार्यों द्वारा।
क्रियमाणम्	=	किए जाते हुए।
नवयौवराज्याभिषेकमंगलम्	=	नए यौवनराज्याभिषेक के मंगल का।
अनुभवतु	=	अनुभव करो।
अवनमय	=	झुकाओ।
द्विषताम	=	शत्रुओं को।
शिरांषि	=	सिरों को।
उन्नमय	=	ऊपर उठाओ।
बन्धुवर्गम्	=	सम्बन्धियों को।
अभिषेकानन्तरम्	=	राजतिलक के पश्चात्।
प्रारब्धदिग्विजयः	=	दिशाओं के विजय को आरम्भ करने वाले।
परिभ्रमण	=	घूमते हुए।
विजितामपि	=	जीती गई भी।
तव पित्रा	=	तुम्हारे पिता द्वारा।
सप्तद्वीपभूषणम्	=	सात द्वीप रूपी आभूषणों वाली।
वसन्धुराम्	=	पृथिवी को।
पुनर्विजयस्व	=	पुनः विजय करो।
प्रतापम्	=	प्रभाव।
आरोपयितुम्	=	ज़माने का।
त्रैलोक्यदर्शीव	=	तीनों लोकों के द्रष्टा की तरह।
सिद्धादेशः	=	सिद्ध पुरुष की आज्ञा।
इति	=	इस प्रकार।

अभिधाय	=	कह कर।
उपशशाम्	=	शान्त हो गया।

अनुवाद :–

निश्चय ही किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखता है जो इस अपरिचित लक्ष्मी के द्वारा दृढ़ आलिंगित न किया गया हो और तत्पश्चात् ठगा न गया हो। यह चित्रलिखित होने पर भी निश्चित रूप से चलती है। मिट्टी लकड़ी आदि की पुतली होती हुई जादू का खेल करती है। केवल सुनी जाने पर भी कपट करती है। इस प्रकार दुष्ट आचरण वाली इस लक्ष्मी के द्वारा जैसे–कैसे भाग्यवश भी पकड़े गए राजा लोग विकल हो जाते हैं तथा हर प्रकार की शृंखलाओं के निवास स्थान हो जाते हैं। जैसे कि राज्याभिषेक के समय ही मंगल पात्रों के जलों से मानो इनकी उदारता धो दी जाती है। यज्ञ के धुएं से मानो इनका हृदय मलिन कर दिया जाता है। पुरोहित की कुश रूपी झाड़ुओं से इनका गुण मानों दूर कर दिया जाता है। रेशमी पगड़ी बांधकर इनमें बुढ़ापा आने के स्मरण को मानो ढक दिया जाता है। छत्रमण्डल से मानो इनका परलोक दर्शन रोक दिया जाता है। चँवर की वायु से मानो इनके सत्य बोलने के गुण को उड़ा दिया जाता है, बेंत की छड़ी से मानो इनके सभी गुण दूर कर दिए जाते हैं। जयकार के कोलाहल से मानो शुभ वचन तिरस्कृत कर दिये जाते हैं। ध्वजाओं के वस्त्रों के छोर से मानो इनकी कृति पोंछ दी जाती है।

थक जाने के कारण पक्षियों की शिथिल गर्दन के समान चंचल, जुगनू के समान चमकने की भान्ति, थोड़ी देर के लिये मन हरने वाली, ज्ञानियों द्वारा निन्दित्त सम्पत्तियों से लुभाये गए थोड़े से धन की प्राप्ति के अहंकार से जन्म को भूले हुए अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, आसक्ति के आवेग से सताये जाते हुए नाना प्रकार के विषय भोगों के आस्वाद के लिए लालायित, पांच होती हुई भी हज़ारों की संख्या में प्रतीत होने वाली इन्द्रियों से क्लेश पहुंचाए जाते हुए चंचल स्वभाव के कारण प्रसार को प्राप्त हुए, एक होते हुए भी मानो हज़ारों की संख्या वाले मन से व्याकुल किये जाते हुए कुछ राजा लोग परेशान हो जाते हैं।

ये राजा लोग मानो सूर्यादि ग्रहों द्वारा पकड़ लिए जाते हैं। मानो हिंसक प्राणियों से हठात् पकड़ लिये जाते हैं। मानो वायु द्वारा इधर–उधर उड़ा दिए जाते हैं। मानो पिशाचों द्वारा ग्रस्त कर दिये जाते हैं। मानो कामदेव के बाणों द्वारा मर्माहत हुए वे राजा लोग हज़ार प्रकार की मुखाकृतियां बनाते हैं। मानो धन की गर्मी से पकाए जाते विभिन्न प्रकार की मुखाकृतियां बनाते हैं। मरणासन्न व्यक्तियों के समान अपने परिवारजनों एवं सम्बन्धियों को नहीं पहचानते हैं। काले सांप से दुष्ट व्यक्ति शक्तिशाली मन्त्रों से भी होश में नहीं आते। मानो पाप से प्रतिदिन परित होते हुए भी वे अधिक मोटे हो जाते हैं और उस अवस्था में सैकड़ों व्यसनों के लक्ष्य बने हुए अपने पतन को उस भान्ति नहीं जान पाते जैसे वामी की घास के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दुओं को अपने गिरने का किञ्चिद् भी आभास नहीं होता।

दूसरे अन्य राजा तो स्वार्थ साधन में तत्पर धनरूपी मांस भक्षण में वृहद् सरीखे, राज–भवन रूपी कमल वन में बगुले के समान, अन्दर ही अन्दर स्वयं राजाओं का उपहास करने वाले दोषों में भी गुणों का आरोप करने

वाले, धूर्तों द्वारा जुआ मनोरंजन है। परस्त्री गमन चतुरता है। अपनी स्त्री के त्याग में विरक्त होता है। गुरुओं के वचनों का उल्लंघन करना परवशता का न होना है। मनमानी करना प्रभुत्ता है। चंचलता उत्साह है। विशेषज्ञ न होना पक्षपात से रहितत्व है।

इस प्रकार के ढंगों में कुशल धूर्तों द्वारा आलौकिकजनों के ही उपयुक्त स्तोत्रों द्वारा ठगे जाते हुए धन के घमण्ड से मतवाले हृदय वाले, सुध–बुध न होने के कारण 'ऐसा ही है' इस प्रकार मिथ्याभिमान करने वाले मरणशील होते हुए भी अपने मन में मानो दिव्य अंश के अवतार को मानो देवत्व को, मानो दिव्य शक्ति सम्पन्नत्व को मानते हुए, अलौकिक जनोचित हाव–भावों को प्रारम्भ करने वाले सब लोगों के उपहास के पात्र बन जाते हैं। वे राजा लोगों को अपना दर्शन देना भी कृपा करना मानते हैं। किसी पर दृष्टि डाल देने को भी उपकार मानते हैं। वार्तालाप करने को भी पुरस्कार देना मानते हैं। किसी को छू देना उसे पवित्र मानते हैं तथा झूठे महत्त्व के घमण्ड से भरे हुए राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते। ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते। मानने योग्य व्यक्तियों का सम्मान नहीं करते पूजनीयों की पूजा नहीं करते। अभिवादन के योग्य व्यक्तियों का अभिवादन नहीं करते, पधारे हुए गुरुजनों का उठकर स्वागत नहीं करते हैं। वृद्धों के उपदेश वृद्धावस्था की परेशानी से उत्पन्न बकवास मानकर उनकी उपेक्षा कर देते हैं। अपनी बुद्धि का तिरस्कार समझकर मन्त्रियों के परामर्श की उपेक्षा करते हैं। राज्य के हित के लिए यथार्थ बोलने वाले को क्रोध से देखते हैं। सब प्रकार से उसका ही स्वागत करते हैं।

उसी को अपने पास बैठाते हैं, उसी को आगे बढ़ाते हैं, उसी के साथ सुख से बैठते हैं, उसकी ही बातें सुनते हैं, उसी में धन आदि की वृष्टि करते हैं, उसे बहुत मानते हैं, उसे ही विश्वासपात्र समझते हें, जो सभी कार्यों को त्यागकर देता है। हाथ जोड़कर निरन्तर रात–दिन इष्ट देवता के समान उनकी स्तुति करता रहता है। अथवा उनकी बढ़ाई प्रकट करता है। अथवा उन राजाओं के लिये कौन–सा काम उपयुकत हैं, जिनके लिए प्रायः अति कठोर उपदेशों से क्रूर बना कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रमाण है।

अतः हे कुमार! इस प्रकार की 'अति कुटिल' तथा दुःख देने वाले हज़ारों चेष्टाओं से कठोर बने हुए, राज्य शासन में और इस महान् अज्ञान के अन्धकार वाले यौवन में ऐसा प्रयत्न करो कि लोगों द्वारा तुम्हारा उपहास न किया जाये, सज्जन लोग निन्दा न करें, गुरुजन किसी कारण न धिक्कारें, मित्रगण उलाहना न दें। विद्वानों द्वारा आलोचना के पात्र न बनो। कामियों द्वारा प्रकट न किये जाओ। चतुर पुरुषों द्वारा हंसे न जाओ। लम्पटों द्वारा उपभोग न किये जाओ। सेवक रूपी सियारों द्वारा नष्ट न कर दिये जाओ। धूर्तों द्वारा ठगे न जाओ, कामिनियों द्वारा लुभाये न जाओ। लक्ष्मी छोड़कर न चली जाये। अहंकार से नचाये न जाओ, आसक्ति से आकृष्ट न हो जाओ। तुम्हारा यह राज्य–सुख किसी के द्वारा छीन न लिया जाये।

यद्यपि आप स्वभावतः ही धीर तथा गम्भीर हैं तथा आपके पिता ने बड़े प्रयत्न से सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन करा कर, पूर्णतया संस्कार युक्त बना दिया है, तो भी धन आदि तो चंचलचित्त वाले को तथा असावधान व्यक्ति को मतवाला बनाते हैं। सर्वथा सुयोग्य होने के कारण ये सब आपको विचलित नहीं कर सकते तो भी आपके अन्दर विद्यमान गुणों के द्वारा उत्पन्न मेरे अन्दर के सन्तोष ने ही मुझे उपदेश देने के लिए विवश होकर प्रेरित

कर दिया है। बार–बार आपसे यही कहा जाता रहा है कि धीर–वीर स्वभाव सम्पन्न को भी, प्रयत्नशील पुरुष को भी यह दुराचारिणी राज्य लक्ष्मी, अतिशीघ्र सन्मार्ग से भ्रष्ट कर देती है। आप हर प्रकार से अपने पिता द्वारा किये जाने वाले मंगल पदार्थों से युक्त नवीन युवराज्याभिषेक के उत्सव को अनुभव करो। वंश परम्परा से प्राप्त तथा अपने पूर्वजों द्वारा पूर्णतया सम्भाले गए राज्य का भार ग्रहण करो। शत्रुओं के सिरों को झुकाओ और अपने बन्धुवर्ग एवं इष्ट मित्रों को ऊपर उठाओ। इस महान राज्याभिषेक के अनन्तर ही विश्व विजय करने के लिए तैयार होकर सभी दिशाओं में भ्रमण करते हुए आप पिता जी के द्वारा अपने अधीन की हुई सात द्वीप रूपी आभूषण वाली इस पृथ्वी को फिर से जीतो। हे युवराज! तुम्हारे लिये पूर्ण प्रभाव दिखाने का यही समय है क्योंकि यह निश्चय है कि पराक्रमशील एवं प्रतापी राजा त्रिलोकदर्शी महात्मा की भान्ति सिद्धादेश होता है। अर्थात् उसके आदेश का उल्लंघन कोई नहीं करता। इतना उपदेश देकर मन्त्री शुकनास शान्त हो गये।

व्याख्या :–

प्रस्तुत गद्यांश में कवि ने शुकनास और चन्द्रपीड़ के माध्यम से अभिनव–यौवन एवं ऐश्वर्यमद से होने वाले उच्छृंखलता, निरंकुशता एवं शास्त्र और लोकमर्यादाओं का उल्लंघन आदि स्वाभाविक दोषों का यथार्थ चित्रण कर वस्तुतः एक सार्वभौम तथ्य का प्रतिपादन किया है। उन्होंने नवयुवकों को इन दोषों के बन्धन में न फंसकर श्रेष्ठ गुरुओं द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर जीवन सार्थक बनाने की प्रेरणा दी है। उन्होंने राजाओं और लक्ष्मीसम्पन्न लोगों को उन धूर्तों के चंगुल से बचने की चेतावनी दी है। जो उल्टी–सीधी वञ्चनाओं द्वारा सदा अपना उल्लू सीधा करने में लगे रहते हैं। विषय वासनाओं से इन्द्रियों को रोकने की आवश्यकता वृद्ध मन्त्री ने बड़े अधिकारपूर्ण ढंग से जोर देकर समझाई है।

युवावस्था में, जबकि मनुष्य को विस्तृत संसार में प्रवेश करना होता है, शुकनास के गम्भीर उपदेश का मनन करना अत्यन्त लाभप्रद हो सकता है।

यह उपदेश प्रत्येक उस युवक के प्रति दीक्षान्त भाषण के रूप में है जो सैद्धान्तिक ज्ञान उपार्जित करने के अनन्तर संसार रूपी महार्णव में पर्दापण करने को तत्पर प्रत्येक युवक के लिए दीक्षान्त भाषण के सदृश्य है।

ग ग ग ग ग ग

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit
GDC, Samba.

शिववीरस्य राष्ट्रचिन्तनम्

(अम्बिकादत्तव्यासकृत – शिवराजविजयतः)

मूल पाठ :–

महाराष्ट्रराजस्तु चिन्तासन्तापेनापि तप्यमानो नालभत निद्राम्। अथ पर्यङ्कं विहाय तत्रैवाऽऽसन्दीमेकामध्युवास। मनस्येव च चिन्तयितुमारब्धवान्। यद्! – अहह! किं करोमि? क्व गच्छामि? कथं पुनः पुण्यनगरं प्राप्नोमि' कथं पुनः प्रतापदुर्गशिखरमारूह्य सस्यश्यामां महाराष्ट्रभूमिमवलोकयामि ? कथं पुनस्तोरणदुर्गसाम्मुखीनां मारुतिमूर्तिं प्रणमामि? कथं पुना राजदुर्गस्थराजसिंहासनमधिरोहामि? कथं पुनर्दैवज्ञवर्यस्य देवशर्मणश्चरणौ स्पृशामि? हन्त! तदाश्रमस्थाया गौरसिंहभगिन्या विवाहसाहाय्यार्थं वरमन्वेष्टुञ्च प्रतिज्ञातवानस्मि। हा! श्रूयते तदर्थमभिमतो रामसिंह एव रघुवीर–नाम्ना मदनुचर आसीत्। अहह! योऽन्वेष्टव्यः स एव मया सभर्त्सनं निःसारितः। हा कथं स्वपुत्रवियोगदुखितं ब्रह्मचारिवेषं महाराज – जयसिंहस्यान्यतमं बन्धुं वीरेन्द्रसिंह सान्त्वयिष्यामि? नूनं निर्दोषरघुवीरनिर्वासनपापस्यैव फलमेतत् यत् स्वयमागत्य प्रत्यर्थिनां क्रोडे पतितोऽस्मि। प्रथमसाक्षात्कार एव अनादरं समनुभूतवानस्मि परेऽहन्येव च सन्देशं प्राप्तवानस्मि यद् – भूपतिसभायां यदुक्तं तत् सम्राजः कर्णशष्कुलिम–स्पृशत्। तस्यायमेव दण्डो यन्न पुना राजसभायामागन्तव्यमिति। अल्पीयस्यपि मे सेना नगराद् बहिरेव शिविरेऽस्ति। पञ्चषैरात्मीयैः कतिपयैरेव च भृत्यैः सहात्र निवसामि। अत्रत्यं वायुजलं नानुकूलमिति छलेन महाराष्ट्रदेशनिवर्तनादेशाय प्रेषितेऽप्यावेदनपत्रे दिल्लीकलङ्केन विषयान्तरे बहुलिखितमप्याज्ञा सम्बन्धे किमपि नालेखि। विनैवाज्ञां यदि पलायेय, अथ गृह्येय चेद् यवन हस्तेन ध्रुवो मृत्युः। अहो दुरदृष्टम्। यद् राघवाचार्यसंन्यासिनोऽपि न स्वीकृतं वचनम् – इति विचारयन्नेव निष्कुटककुटान्तरालेष्वेवास्पटाकृतिं कञ्चन पुरुषमद्राक्षीत्।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

शिववीरस्य — महाराष्ट्र के राजा शिवाजी की।

राष्ट्रचिन्तनम्	—	राष्ट्र (देश) की चिन्ता।
चिन्तासन्तापेन	—	चिन्ता की पीड़ा से
तप्यमानः	—	दुःखी होता हुआ
पर्यंकम्	—	पलंग को
विहाय	—	छोड़कर
आसन्दीम्	—	कुर्सी के
अध्युवास	—	ऊपर बैठकर
आरब्धवान्	—	आरम्भ किया
पुण्यनगरम्	—	पूना
प्राप्नोमि	—	पहुँचूगा
दुर्गशिखरम्	—	दुर्ग की चोटी पर
आरुह्य	—	चढ़कर
सस्यश्यामा	—	उगी फसल से हरी भरी
तोरणदुर्गसाम्मुखीनाम्	—	मेहरावदार दरवाज़े के फाटक के सामने की।
मारुत्तिमूत्तिर्म	—	वायुपुत्र हनुमान् की प्रतिमा को
प्रणमामि	—	प्रणाम करता हूँ
कथं	—	कैसे
अधिरोहामि	—	बैठ पाऊँगा
दैवज्ञवर्य्यस्य	—	उत्कृष्ट ज्योतिषी के
देवशर्मणः	—	देव शर्मा के
हन्त	—	हाय
विवाहसाहाय्यार्थम्	—	विवाह की सहायता के लिए
अन्वेष्टुम	—	ढूँढने के लिए

प्रतिज्ञातवानामि	—	प्रतिज्ञाकर चुका हूँ
मदनुचरः	—	मेरा सेवक
सभर्त्सनम्	—	डांट डपट के साथ
सान्तवयिष्यामि	—	दिलासा दूंगा
भूपतिसभायाम्	—	राजा के दरबार में
कर्णशष्कुलिम्	—	कान के छेद को
यवनहस्तेन	—	मुसलमान के हाथ से

प्रसंग सहित व्याख्या :–

प्रस्तुत गद्यांश "अम्बिकादत्तव्यास प्रणीत" ''शिवराजविजय'' नामक ग्रंथ से लिया गया है।

इस प्रस्तुत पाठ में महाराष्ट्र के राजा शिवाजी की अपने राष्ट्र के प्रति चिन्ता को दर्शाया गया है। जब शिवाजी को औरंगज़ेब ने छल से बन्दी बनाया था उस समय अपने देश की चिन्ता शिवाजी को सता रही थी।

शिवाजी को जेल से बाहर निकालने के लिये उनका एक सेवक राघवाचार्य के पास आता है। राघवाचार्य शिवाजी को अपने साथ चलने को कहता है और मार्ग में आने वाली विभिन्न बाधाओं का निराकरण किस प्रकार से किया गया है, किस प्रकार सुरक्षा की व्यवस्था हमने की है। इन सब बातों का विवरण वह शिवाजी को देता है और अपने साथ महाराष्ट्र के नरेश शिवाजी को लेकर कारागृह से बाहर आता है।

इसमें अम्बिकादत्तव्यास ने अपनी प्रतिभा से अत्यन्त खूबी से सजाया है। अलंकारों का यथोचित समावेश और सरल मनोहारिणी भाषा का प्रभाव सहृदय पाठकों के मन को सहसा ही आकृष्ट कर देता है।

प्रस्तुत गद्यांश में राजा और उसके प्रजा के प्रति कर्त्तव्य तथा सेवक और उसके स्वामी के प्रति कत्तव्यों को अत्यधिक सुगमता से वर्णित किया गया है।

व्याख्या :–

महाराष्ट्र के राजा भी चिन्ता की अग्नि में तप रहे थे। निद्रा उनको नहीं आती थी। अतः पलङ्गों को छोड़कर वहीं कुर्सी पर बैठ गये। मन में ही चिन्ता करनी शुरू की — ओह् मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, कैसे नगर को पुनः प्राप्त कर सकूँ, कैसे फिर से प्रताप दुर्ग पर चढ़कर हरी–भरी खुशहाल महाराष्ट्र की भूमि को देख सकूँगा? कैसे पुनः तोरण किले के सामने वाले हनुमान जी को प्रणाम करूँगा? कैसे फिर से राज दुर्ग के सिंहासन पर आरूढ़ होऊँगा? कैसे फिर से देवता के समान देव शर्मा के चरणों का स्पर्श करूँगा? हन्त। उस आश्रम में रहने वाली गौरसिंह की बहन की शादी के लिये वर को खोजने के लिये मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। हाँ सुना जाता है उसके लिये वरों में रामसिंह रघुवीर नामक

युवक मेरे नौकर थे। ओह, ढूँढने योग्य वही मेरे द्वारा डांट–डपट कर निकाले गये हैं। हाँ कैसे अपने पुत्र के वियोग से दुःखित ब्रह्मचारीवेष वाले महाराज जयसिंह को सांत्वना दूँगा? निश्चय से निर्दोष रघुवीर को निकालने के पाप का यह फल है। जो स्वयं आकर शत्रुओं की गोद में गिरा हूँ। प्रथम मिलन में ही अनादर को अनुभव कर रहा हूँ। दूसरे दिन वह सन्देश मुझे प्राप्त हुआ जो राजा की सभा में कहा गया। उस समाचार ने कान के छेद को छुआ उसी का ही दण्ड है जो फिर से राजसभा में नहीं आना चाहिए। बहुत छोटी मेरी सेना नगर से बाहर शिविर में है। पांच–छः आत्मीयों से तथा कुछ नौकरों के साथ यहां निवास कर रहा हूँ। यहा की वायु और वाणी अनुकूल नहीं है। छल से महाराष्ट्र देश को लौटने की आज्ञा के लिये भेजे गये आवेदन–पत्र में दिल्ली के कलंक ने अन्य बातों के सम्बंध में अधिक लिखने पर भी आदेश के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। यदि बिना आज्ञा के भाग जाऊँ, उसके बाद अगर पकड़ा जाऊँ तो मृत्यु निश्चित है। अहो दुर्भाग्य, राघवाचार्य संन्यासी ने भी वचन को स्वीकृत नहीं किया। इस प्रकार सोचते हुए क्रीड़ोद्यान के वृक्षों के बीच में ही धुंधली शक्ल वाले को देखा।

मूल पाठ :–

"चौरोऽयं लुण्ठकोऽयं सपत्नोऽयम् इति विचारयन्, सपदि विकोशां छुरिकां हस्ते गृहीत्वोदस्थात्। तस्मिन् किञ्चित् समीपमायाते च ददर्श–यदेको भस्मोद्धूलित शरीरो विश्लथत्कचकुलसमाच्छन्नांसपृष्ठवक्षःस्थलो लम्बकूर्चो नीलरसरञ्जितवसनो वामकरगृहीतमृत्तिकामालो यवनभिक्षुरायात इति। अथोच्चैः सप्रौढि तमपृच्छत–कस्त्वं रे। निशीथे? इति। स तु मन्दमाहजनोऽयं कश्चित् शुभचिन्तको भवतः, शनैरालपनीयमेतेन। ततः स कञ्चित् श्रुतपूर्वस्वरं कर्णे कुर्वन्नपि मरिचेतुमक्षमः पुनरपृच्छत् — नावगतं नो भवान्? इति। स आह — "शुभचिन्तकोऽयं राघवाचार्यः संन्यासी।" तदाकर्ण्य महाराष्ट्रपतिः प्रकाशं प्रबलीकृत्य निपुणं निरीक्ष्य, कृत्रिमां जटां कूर्चश्मश्रुपुञ्जञ्च विलोकयन्, मन्दं स्मित्वा उवाच — अवधूत धन्योऽसि य एवमपि दयसे। किन्तु पिहितेषु द्वारेषु कुत आयातोऽसि?

कठिन शब्दों के अर्थ :–

चोरोऽयं	—	यह चोर है
लुण्ठकोऽयम्	—	यह लुटेरा है।
सपत्नोऽयम्	—	यह शत्रु है।
सपदि	—	झटपट
विकोशां	—	म्यान से बाहर निकलती हुई
छुरिकां	—	छुरी को
गृहीत्वा	—	पकड़ कर
लम्बकूर्चः	—	लम्बी दाढ़ी वाला

यवनभिक्षुः	—	मुसलमान फकीर
सप्रौढ़ि	—	साहस के साथ
निशीथे	—	आधी रात में
मन्दमाह	—	धीरे से कहा
आलपनीयम्	—	बातें करनी चाहिए

अनुवाद सहित व्याख्या :–

यह चोर है। यह लुटेरा है, यह शत्रु है। ऐसे विचार करते हुए जल्दी म्यान से बाहर छुरी को हाथ में लेकर उठ खड़े हुए हैं। उन्होंने थोड़ा भी पास आते हुए जो एक भस्म और धूल वाले शरीर से भरा हुआ लटकती हुई जटा समूह में ढके हुए, कंधे, पीठ और छाती वाला, लम्बी दाढ़ी वाला, नीले रंग से रंगे कपड़ों वाले, बाएँ हाथ में मिट्टी की माला पकड़ी है, ऐसे मुसलमान भिक्षु को आते हुए देखा उसके बाद ऊँचे स्वर में साहस के साथ उसे पूछा : तुम कौन हो? अरे, रात्रि के समय वह धीरे से बोले यह मनुष्य आपका शुभचिन्तक है। धीरे से बोला जिसका स्वर पहले सुना था। फिर भी कान से सुनता हुआ पहचानने में असमर्थ, फिर से पूछा। आपने नहीं पहचाना, उसने कहा। शुभचिन्तक यह राघवाचार्य संन्यासी है। उसको सुनकर महाराष्ट्र के स्वामी ने रोशनी को तेज़ करके देखकर नकली जटा, दाढ़ी, मूँछें इत्यादि को देखते हुए धीरे से मुस्कराकर कहा — संन्यासी धन्य हो, जो इस प्रकार भी दया करते हो। किन्तु इन बन्द द्वारों में तुम कहां से आये हो?

मूल पाठ :–

स उवाच — प्राचीरमुल्लङ्घ्य कष्टेनाऽऽयातोऽस्मि।

एष उवाच — कथमद्य रूपान्तरम्? स उवाच – नगरेऽस्मिन् वैष्णवेषु प्रपतति सर्वेषां दृष्टिः, च म्लेच्छावधूतेषु – इति तद्वेषमेवावलम्बितवानस्मि।

तत उपविष्टयोरूभयो मुहूर्तानन्तरमेवमभूवन्नालापाः–

महाराष्ट्रराजः — कुतः समागच्छत्यार्यः?

राघवाचार्यः — व्रतसाधनाय परितो भ्रमामि।

महा॰ — अपि जानाति कमपि कुशलवृत्तान्तं महाराष्ट्रदेशस्य भवान्? अपि कुशलिनी मे जननी? कुशलिनो वा जनपदाः। अपि वा कुशली शम्भुकुमारः?

राघ॰ — दीन बन्धो! यादृशस्य महाशयस्य हस्तेमहाराष्ट्र – भूमिभरणभारं निक्षिप्त–वानसि, तादृशस्य शासने न सम्भवत्यकुशल वार्ताऽपि। जननी च कुशलिनी, श्रीमत एव कुशलाय व्रतमाचरन्ती क्षामदेहा स्थण्डिलशायिनी हविष्याऽऽहारा च वर्वर्ति।

महा॰ — हा मातः। (इति मुखं परावर्त्य) कांश्चिदश्रु–विन्दूनमुचत्।

राघव — महाराज! न चिन्तनीयं किमपि। कुशलीकुमारः शम्भुवीरः, तुरगं चालयन् स्वदर्शनेन प्रजा रञ्जयति। ग्रामे–ग्रामे गृहे–गृहे मन्दिरे–मन्दिरे च परमात्मा समाराध्यते।

महा॰ — अपि मम कुशलाय परमेश्वर आराध्यते?

राघ॰ — वीरवर! भवत्प्रजासु के न भवन्तं प्राणाधिकं मन्यन्ते? सम्प्रति क्वचन महारुद्रमुद्रया रुद्रोऽभिषिच्यते, क्वचन सहस्रै र्गृहीतब्रह्मचर्याणां

ब्राह्मणानां समन्त्रसम्पुटचण्डीपाठैर्भगवतीदुर्गाऽऽद्रियते, क्वचिच्च ग्रहमातृकादिमण्डलमण्डितस्य मण्डपस्याधस्तात् वेदमन्त्रैर्भगवान् वृहद्भानुर्हविषा हूयते। किं ब्रवीमि? यदि अल्पमपि भवदमङ्गलं श्रूयेत महाराष्ट्रैः, तन्मन्ये कोपकृशानुहेतिभिरखिलं भूमण्डलं भस्मसात् क्रियेत्।

महा॰ — भगवन्। का क्षमता वराकस्यैतस्य ममामङ्गलमाचरितुम? परं भवतो वचनमङ्गीकृत्य समायातोऽस्मीति तत्फलमेव भुञ्जे।

राघ॰ — तत्किं दिल्लीश्वरेण तु कृतसन्धिः श्रीमान्?

महा॰ — किमिव लज्जयते मां स्वामी? सर्वं विदितमार्य्याणाम्।

राघ॰ — अत्रावस्थानं न रोचते चेदद्यैवे प्रतिष्ठताम्। को नाम वागुरया समीरणमिव भवन्तं रोत्स्यति?

महा॰ — मन्ये कोऽप्युपाय उद्भावितः पलायनस्य।

राघ॰ — किमज्ञातमार्य्याणाम्?

महा॰ — किमति?

राघ॰ भगवन्! अनायासेनाद्यान्धतमसे

गृहीतयवनभिक्षुवेषो मया सह निः सरतु श्रीमान्।

महा॰ — ततः।

राघ॰ — यद्यपि नगरस्यास्य परित उच्चा भित्तिरस्ति, तथापि पूर्वत एकत्र महान् सशङ्कुग्रन्थिवशः एकः स्थापितोऽस्ति, तदवलम्ब्य कुड्योल्लङ्घनमनायास सिद्धं महाराष्ट्रवीराणाम्। परतश्च शृङ्खलैका संलम्बते तदालम्ब्य त्रुटिमात्रेण भूमिं स्प्रक्ष्यति। तत्र वृक्षच्छायायां निलीन एकोऽश्वः। तेन क्षणेन किञ्चिद् गत्वैव द्रक्ष्यते यत् कलिन्दतनयायामेकाऽल्पीयसी नौकाऽस्ति तस्यां क्षेपणीहस्ता दश वाहकाः प्रभुमपेक्षन्ते। ते च त्वरया मथुरां प्रापयिष्यन्ति। ततस्तु येन केनापि यथा सुखेन भवान् महाराष्ट्र देशं प्रयास्यति इति।

महा॰ — अत्यन्तं प्रशंसामि भवदुद्योगम्, किन्तु मन्यतां यदि कश्चन मार्गे प्रहरिषु परिचिनुयात्?

राघ॰ — एतस्मिन् पथि पञ्चषा आस्माकीना महाराष्ट्रा एव कलितयवनवेषा प्रहरितां प्राप्ताः सन्ति। ते च श्रीमतः शुभं चिन्तयन्ति।

महा॰ — अथ कोऽपि प्राचीरोल्लङ्घन–समये परिचिनुयात्? अन्तरायं च विदध्यात्?

राघ॰ — महाराज। तस्मिन्नेव स्थानेऽन्धकारे द्वादश महाराष्ट्रभटाः खड्गहस्ताश्छद्मवेषिणोऽन्धतमसाऽऽच्छन्नाश्च सन्ति। यदि कश्चिद् विघ्नमाचरेत्, तस्य ध्रुवं मरणम्।

महा॰ — अथ परतो यमुनामार्गे चेदाक्राम्यते कैश्चित्।

राघ॰ — न भयम्, न भयम्। अस्माभिः शास्तिखानयुद्धे बहूनां यवनभटानां पट्टिकाः खड्गाः वीरतावस्त्राणि शिरोवेष्टनानि अधोवसनानि उपानहः कटिबन्धनानि च बलाद् गृहीतानि, तैरेव कलितयवनवेषाणां स्वाध्यक्ष–तदध्यक्षाहिसहितानां गुप्त सेनैकास्ति। तस्या एव शतशो भटाः पथि परितो गूढं भ्रमन्ति। सर्वे ते श्रीमद्रक्षकाः।

महा. – नौकाऽऽरोहसमये चेदापत्तिः ?

र:घ॰ — वाहकां अपि योद्धा, शस्पूर्णा च नौका। यमुना तटेऽपि कपटभिक्षुकाः भावत्काः सजृम्भारभं स्वापमिवानुकुर्वन्ति।

महा॰ — केचनाभिज्ञाय चेत् पथि तरणिगतिं रून्ध्युः?

राघ॰ — तरणितनूजामभितस्तटेऽपि भावत्काः पत्तयः सादिनश्च सतर्काः सन्ति। तरणिरोधं कोऽपि विधातुं पारयेच्चेत्, तरिणिरोधमपि विधातुं पारयेत्।

महा॰ — मथुरायाञ्चेदापत्तिः?

राघ॰ — मैवं मथुरायां सहस्रशो भावत्का वैष्णववेषेण सञ्चरन्ति।

महा॰ — (क्षणं विचार्य) अथ मामकानां शिविरस्थानां दिल्लीनगरे चेतस्ततोऽधिवासितानां का दशा भवेत्?

राघ॰ — महाराज! भवन्तमलभमानो दिल्लीश्वरस्तान् गृहीत्वाऽपि त्यजेत्।

महा॰ — नैवं सम्भाव्यते क्रूरतमेऽस्मिन् यो भ्रातृनप्यवधीत्, पितरञ्च न्यग्रहीत्।

राघ॰ — महाराज! किमप्यस्तु, परन्तु यदि नाद्य पलायते भवान् तदा श्वो गृहाद् बहिर्गमनमपि भवतो निषिद्धं भवेत्।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

भवतः	—	आपका
एतेन	—	इससे
अवधूत	—	संन्यासी
आचरन्ति	—	धारण करती हैं।
आन्दोल्य	—	हिलाकर
किमिव	—	क्यों
अल्पीयसी	—	छोटीसी
साधयितुम	—	पूरा करने के लिये।
मन्द स्मित्वा	—	धीरे मुस्कराकर
पिहितेषु द्वारेषु	—	दरवाज़ों के बन्द होने पर
प्राचीरम्	—	किले की दीवार को
उल्लङ्घ्य	—	फांद कर
प्रपतति	—	गिरती है
म्लेच्छावधूतेषु	—	मुसलमान संन्यासियों पर
परितः	—	चारों ओर
मे जननी	—	मेरी मां
शासने	—	राज्य में
क्षामदेहा	—	कमज़ोर शरीर वाली
स्थण्डिलशायिनी	—	चबूतरे पर सोने वाली
अमुचत्	—	बहाने लगा।
तुरगम्	—	घोड़े को
सम्प्रति	—	अब
अपि	—	भी

रुद्रः	—	शिव की रुद्रावतार वाली मूर्ति
किमिव	—	क्यों
दिल्लीश्वरेण	—	दिल्ली के राजा से
तेन क्षणेन	—	उसी क्षण
गत्वा	—	जाकर
त्वरया	—	शीघ्रता से
ते च	—	और वे
भवदुद्योगम्	—	आपके परिश्रम को
मन्यताम्	—	मानिए
कश्चन	—	कोई
प्रहरिषु	—	पहरेदारों में एक
पञ्चषां	—	पाँच–छः
प्रहरिताम् प्राप्ता	—	पहरेदार बने हुए
छद्मवेषिणः	—	कपट वेष को धारण करने वाले
अस्माभिः	—	हमारे द्वारा
यवनभटानाम्	—	मुसलमान वीरों की
शिरोवेष्टाणि	—	साफे
खड़गाः	—	तलवारें
चेत् आपत्तिः	—	यदि मुसीबत आती है?
कपटभिक्षुकाः	—	झूठमूठ फकीर बने हुए
तरणित्तनुजाम्	—	यमुना के
पत्तयः	—	पैदल सैनिक
सादिनः	—	घुड़सवार
सतर्काः	—	सावधान

पारयेत्	—	समर्थ होगा
ज्ञातवानसि	—	आपने मालूम किया है
स्वातन्त्रयम्	—	स्वाधीनता को
उच्छवस्य	—	सांस भरकर
राज्ञाम्	—	राजाओं का
भूमि विलुण्ठनैः	—	भूमि पर लुढ़कने से
इति कलरवैः	—	इस प्रकार के शोरों से
पटान्तम्	—	आँचल को
तृणवद्	—	तिनके के समान
स्वदेहम्	—	अपने शरीर को
दयानीधिः	—	दया के सागर

अनुवाद सहित व्याख्या :–

इस प्रकार वह कहने लगा (उसने कहा) कि — दीवारों को लांघकर कष्ट से आया हूँ। मैंने यह कहा — आज कैसे यह रूपान्तर किया? उसने कहा — इस नगर में वैष्णवों पर सब की दृष्टि पड़ती है, न ही मुसलमान फकीरों पर। इस प्रकार उसी वेष को मैंने धारण किया है। उसके बाद बैठकर दोनों ने पल भर के बाद ही बात की।

महा॰ — आर्य कहां से आ रहे हैं?

राघव॰ — व्रत की सिद्धि के लिये चारों ओर घूमता हूँ।

शिवाजी — आप जानते हो कुछ कुशल समाचार महाराष्ट्र का भी? मेरी माता अच्छी है? जनसमूह कुशलतापूर्वक है? शुभ कुमार कुशल तो है न?

राघव॰ — दीनों के बन्धु, आप जैसे महाशय के हाथों में महाराष्ट्र भूमि के पालन–पोषण को छोड़ा है। उस प्रकार के शासन में अकुशल वार्तालाप कैसे हो सकता है? माता भी सकुशल है। आपकी कुशलता के लिए व्रतों का आचरण करती है। व्रतों को रखती है। वह कमज़ोर शरीर वाली चबूतरे पर सोने वाली व्रतादि के समय हल्के पदार्थ को खाती हुई जीवित है।

शिवाजी — हाँ माँ। इस प्रकार मुँह को देखकर आँसुओं की बूंदों को बहाने लगे।

राघ॰ — महाराज कुछ भी चिन्ता न करें। कुमार शम्भु वीर भी सकुशल है। घोड़े को चलाते हुए आपके दर्शन से प्रजा को खुश करते हैं। गाँवों–गाँवों, घरों–घरों, मन्दिरों–मन्दिरों में परमात्मा की आराधना की जाती है।

शिवाजी — मेरी कुशलता के लिए परमेश्वर की आराधना की जाती है।

राघवाचार्य — वीरवर। आपको प्रजा में कौन अपने प्राणों से अधिक नहीं समझता है? सब कहीं बड़े भयंकर रूप वाले शिव की रुद्रावतार वाली मूर्ति नहलाई जाती है। कहीं पर हज़ारों ब्रह्मचर्य को धारण किये हुए ब्राह्मणों की मन्त्रों के साथ चण्डी के पाठ से भगवती दुर्गा आदृत की जाती है और कहीं पर नौ ग्रह और 16 मातृदेवियों के समूह से शोभित मण्डपों के नीचे वेदमन्त्रों से भगवान् अग्नि की घी आदि की आहुति से हवन किया जा रहा है। क्या कहूँ, थोड़ा भी अमंगल मैंने महाराष्ट्रीयों से नहीं सुना। मैं मानता हूँ क्रोध रूपी अग्नि की ज्वालाओं से समस्त पृथिवी को जलाकर राख किया जायेगा।

शिवाजी — कुछ–कुछ प्रसन्न हुए अंगों को हिलाकर भगवन्। शत्रु की कौन–सी क्षमता है जो मेरा अमंगल कार्य करने के लिये परन्तु आपके वचन को स्वीकार कर मैं यहां आया हूँ। उसका फल ही भोग रहा हूँ।

राघ॰ — श्रीमान्, तो क्या दिल्ली नरेश से सन्धि कर ली?

शिवाजी — इस प्रकार क्यों लज्जित कर रहे हो? आर्य सब कुछ, आर्य जानते हैं।

राघव — यहां रहना मुझे अच्छा नहीं लगता तो आज ही चल दीजिये। कौन नाम जाल से वायु तुल्य आपको रोकेगा?

शिवाजी — मानता हूँ। कोई भी उपाय पलायन का सोच लिया है।

राघव॰ — क्या आर्यों को भागने का मालूम है?

शिवाजी — किस प्रकार?

राघव॰ — भगवन्, अनायास से, बिना प्रयत्न के लिये गहरे अन्धकार में मुसलमान भिक्षु के वेष को धारण करके मेरे साथ निकल चले श्रीमान्।

शिवाजी — उसके बाद?

राघव॰ — यद्यपि इस नगर में ऊँची दीवारें हैं। फिर भी पूर्व दिशा की ओर एक जगह महान् कील और रस्सी की गांठ वाला बांस गढ़ा हुआ है। उसका आलम्बन करके दीवार को फांदना बिना प्रयत्न किये हुए सफल है महाराष्ट्र के वीरों का। दूसरी ओर एक ज़ंजीर लटक रही है। उसको पकड़कर एक क्षण में ही भूमि को प्राप्त होंगे। वहां पर वृक्ष की छाया में छिपा हुआ एक घोड़ा होगा। उसी क्षण पाकर ही देखा जाएगा। यमुना में छोटी सी नाव है, वहां पर चप्पू को हाथ में लिये हुए दस नाव चलाने वाले आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। और वे आपको जल्दी से पहुंचा देंगे जिससे आप सुख से महाराष्ट्र को प्राप्त होंगे।

शिवाजी — आपकी अत्यन्त प्रशंसा करता हूँ। आपके इस कार्य के लिये परन्तु मानो यदि कोई रास्ते में पहरेदारों ने पहचान लिया तो।

राघव॰ — इस रास्ते में पांच–छः हमारे महाराष्ट्र के वीर मुसलमान वेष को धारण करके पहरेदार बने हुए हैं। वे भी आपके शुभ की चिन्ता करते हैं।

शिवाजी — कोई भी दीवार के उल्लंघन समय में से परिचय मिले तो? उसके बाद विघ्न उपस्थित हो तो।

राघव॰ — महाराज उसी समय स्थान में अन्धेरे में 12 महाराष्ट्र के वीर हाथ में तलवार लेकर हैं। यदि कोई विघ्न पैदा होगा तो उसका मरण निश्चित होगा।

शिवाजी — उसके बाद चारों ओर यमुना के रास्ते में यदि कोई आक्रमण करे तो?

राघव॰ — न डरो, न डरो। हमारे द्वारा शास्ति खान युद्ध में बहुत से मुसलमान वीरों की पट्टिका तलवारें, वीरों के कपड़े, सिर के टोप, कमर में बांधी जाने वाली कपड़े या चमड़े की पेटियां पकड़ी गई हैं। उन्हीं से मुसलमान का वेष बनाये हुए उसके निरीक्षण आदियों से युक्त एक गुप्त सेना है। सैकड़ों वीर भागों में चारों ओर गुप्त घूमते हैं।

शिवाजी — नाव में चढ़ने के समय यदि आपत्ति आती है तो?

राघव॰ — नाविक भी योद्धा हैं। शस्त्र से परिपूर्ण वे नौकाएं हैं। यमुना के तट पर भी कपट वेश वाले भिक्षुक आपकी जम्हाई की शुरूआत के साथ मानो नीर का अनुकरण करते हैं।

शिवाजी — किसी ने पहचान कर रास्ते में नौका की गति को रोक लिया तो?

राघव॰ — यमुना के तट पर भी दोनों ओर पैदल सैनिक घुड़सवार सतर्क हैं। नौका को रोकने के लिये यदि कोई समर्थ हो जायेगा तो सूर्य को भी रोकने के लिये समर्थ होगा।

शिवाजी — मथुरा में यदि आपत्ति पड़ती है तो?

राघ॰ — ऐसा मत कहो। मथुरा में हज़ारों आपके शुभचिन्तक वैष्णव वेष में घूमते हैं।

शिवाजी — *(थोड़ी देर सोचकर)* इसके बाद मेरे तम्बू में रहने वालों की दिल्ली नगर में रहने वाले आदमियों की क्या दशा होगी?

राघ॰ — महाराज आपको न पाता हुआ दिल्ली का राजा उनको पकड़ कर भी छोड़ देगा।

महा॰ — नहीं ऐसी सम्भावना नहीं की जा सकती? उस निर्दय पर जिसने अपने भाईयों को भी मार दिया हो और पिता को भी गिरफ्तार कर चुका है।

मूल पाठ :–

महा॰ — अपि सत्यमिदम्?

राघ॰ — अतिसत्यम्।

महा॰ — आः केनेव योगबलेन ज्ञातवानसि? (क्षणं विचिन्त्य) आचार्य! भवादृशे शुभचिन्तके साहाय्यं विदधति

कारागारस्थोऽपि स्वातन्त्र्यमासादयिष्यामि। किन्तु। आश्रितान् मृत्युकपोले कवलवन्निपात्य नहि जिजीविषामि। किञ्च, अधुनैवापसृतष्वस्मासु कदाचन अस्मद्दोषमेव दिल्लीश्वर जयसिंहादयः प्रकटयेरन्–यत्

"सम्मानयितुमुत्सुकमपि त्यक्त्वा, धाष्ट्र्येनैव पलायितः" इति तद् भवतु नाम कश्चन प्रकटोऽपराधो दिल्लीश्वरस्य, ततो यास्यामः। न हि महाराष्ट्रवीरा वराकैरेतैः सिंहा इव शशकै र्निग्रहीतुं शक्यन्ते। तावद् यदि क्लेशो न स्यात्, तत् सूच्यन्तमस्मत्पूजक पाचक लेखकपाठकादयः सपदि महाराष्ट्रदेशाभिमुखं प्रस्थातुम्।

राघ॰ — *(उच्छ्वस्य)* धन्यो महाराजः। च एवं प्राणानाप्यगणयन् करुणया आत्मीयानां कुशलं चिन्तयति। एवमेव धर्मो राज्ञां यत् स्वीयानां प्रतिपालनं सम्माननं सदा कुशलचिन्तनञ्च। भृत्या हि, रोदं रोदं वक्षो घ्नतीं मातरम्, विलुलितैः केशै र्भूमिविलुण्ठनैश्च रोदसी रोदयन्तीं पत्नीम्, तात–तातेति कलरवैर्मूर्च्छयतः पटान्तमाकर्षतः पृथुकांश्च, तृणवद् विहाय स्वामिकार्यं साधयितुं स्वदेहमर्पयन्ति। तत्कृतज्ञतास्वीकारो हि राज्ञां प्रथमो धर्मः — इति धन्यो भवान् राजधर्मपरतन्त्रो दयानिधिः—

राघ॰ — अति सत्य है।

शिवा॰ — आपने किससे योगबल का ज्ञान लिया है? *(क्षण भर सोचकर)* आचार्य आपके समान शुभचिंतक सहाय्य होगा तो कारागर में भी स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लूंगा। किन्तु आश्रितों को मौत के मुँह में छोड़कर कैसे जीने की इच्छा करता हूँ। अभी भी हमारे हट जाने पर कहीं हमारे दोष को ही दिल्ली का राजा जयसिंह इत्यादि प्रकट करेगा और जो आदर करने के लिये उतावले छोड़कर ढिठाई से भाग गया। इस प्रकार का कोई प्रकट कर लिया है अपराध को दिल्लीश्वर के साथ जिनहोंने कहा उसी के साथ जायेंगे। महाराष्ट्र के वीरों को गुफा के शेर के बच्चे के समान कौन रोक सकता है। यदि क्लेश न हो तो उसको सूचित किया जाये हमारे पुजारी, रसोइये, लेखक, पाठक आदि तत्काल महाराष्ट्र के प्रति प्रस्थान करेंगे।

राघ॰ — *(साश्रु भरकर)* धन्य हो महाराज!

प्राणों को भी चिन्ता न करते हुए करुणा से अपने लोगों का शुभ सोचते हैं। राजाओं का धर्म यही है जो अपनों का पालन, सदा सम्मान और चिन्तन करे क्योंकि नौकर भी रो–रो कर छाती पीटती हुई माता को व्यस्त वालों से भूमि पर लुढ़कने से रुलाती हुई पत्नी को, हे पिता, हे पिता! इस प्रकार के शोरों से मूर्छित करते हुए, आँचल को खींचते हुए बच्चों को तिनके के समान छोड़कर स्वामी के काम सिद्ध करने के लिये अपने शरीर को समर्पित करते हैं। किए हुए कार्य को स्वीकार करना राजाओं का प्रथम धर्म है। इस प्रकार आप धन्य हैं। इस प्रकार राजा के धर्म में पराधीन दया के सागर हैं।

ग ग ग ग ग ग

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit
GDC, Samba.

वासन्ती

(श्री वटुकनाथशास्त्री खिस्ते)

मूल पाठ :–

(1)

'पुत्रि! किमित्यत्र मौनमालम्बमाना शून्यदृष्टिर्मनसि भ्रमता विचारेण व्याकुली कृतेवाद्य प्रतिभाससे?' एतदाकर्ण्य सहसैव विचारनिद्रायाः प्रबुद्धा वासन्ती समीरणोल्लासितं दुकूलमावृण्वती समुत्थाय पितरं दीनानाथशर्माणमवादीत् — 'तात! अद्य प्रातःकालादारभ्य वसन्तविषये रणरणकचेखिद्यमानमानसा तदीयं भागधेयं कष्टकरमेवावलोकयामि।' वसन्तः किल वासन्त्या ज्यायान् भ्राता ऽऽसीत्। अथ दीनानाथ शर्मा किंचिद् गम्भीरमिव स्वाकारं विधाय भूयोऽप्यवोचत् — 'पुत्रि! अलं तदीयचिन्तया। स खलु मया बहुशो विनिवारितोऽपि न तां व्यसनितां त्यजति। सम्प्रति मया भाषणमपि परित्यक्तम्। अद्यैव पश्य कीदृशं कलहं कृत्वा वहिर्निर्गतः। भगवता पुत्रस्त्वेक एव दत्तः, किन्तु सोऽप्येवंविधः। विधेर्विलसितमेतत्। किमन्यद् ब्रूमहे' इत्येवं वादिनो दीनानाथशर्मणो वदनमान्तरविषादजनितेन कालिम्ना समाच्छादितमभूत्। अथ वासन्ती तां पितुरवस्थां विलोक्य विषयपरिवर्तनेच्छया वातायनादुत्थाय जगाद–षड्वादनसमयो दृश्यते। भवतोऽति सन्ध्योपास्तेः कालोऽयम्। पक्वप्रायमेव भवेदशनम् इत्युक्त्वाऽभ्यन्तरे प्रविवेश।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

शून्यदृष्टि	—	शून्य नज़र वाली
भ्रमता	—	घूमते हुए
आवृण्वती	—	ओढ़े हुए
समुत्थाय	—	उठकर

व्यसनितां	—	बुरी आदत
कलह	—	लड़ाई
निर्गतः	—	निकल गया
विलसितम्	—	खेल
शल्यम्	—	काँटा
विलसन	—	इठलाती हुई
लभतेस्म	—	प्राप्त करता था
आकर्ण्य	—	सुनकर
अभिधाय	—	कहकर
आरभ्य	—	लेकर
भवतोऽपि	—	आपका भी
सन्ध्योपासतेः	—	सन्ध्या और उपासना का
कालोऽयम्	—	यह समय
पक्वप्रायम् एव	—	लगभग पका हुआ ही
अशनम्	—	भोजन
इति उक्त्वा	—	यह कहकर
अभ्यन्तरे	—	भीतर
प्रविवेश	—	दाखिल हो गई

अनुवाद सहित सप्रसंग व्याख्या :–

'वासन्ती' नामक कहानी के रचयिता विख्यात संस्कृत विद्वान श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते हैं। इन्होंने अपनी इस कहानी में एक पारिवारिक वातावरण को बहुत ही अच्छी प्रकार से संजोया हुआ है। दीनानाथ शर्मा को दो सन्तानें थी, एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम वसन्त और पुत्री का नाम वासन्ती। वासन्ती बहुत ही बुद्धिमती, सदाचारी एवं दयालु युवती थी। अपने माता–पिता की वह हर समय सेवा करती थी। इसके विपरीत वासन्ती का भाई वसन्त दुर्जन संङ्गति में फंस कर रह गया था। वह माता–पिता का निरादर करता था और घर से हमेशा दूर ही रहा करता है। इस प्रकार की कथा का गुम्फन श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते ने अपनी पुस्तक में बहुत ही अच्छी प्रकार से किया है :–

(1)

श्री दीनानाथ शर्मा अपनी पुत्री वासन्ती को अत्यन्त दुःखी देख करके बोले — हे पुत्री! किस कारण तुम यहाँ मौन शून्य नजर वाली तथा मन से भ्रमण करती हुई अत्यधिक दुःखी प्रतीत हो रही हो? अपने पिता के वचन सुनकर यथा शीघ्र हवा में उड़ते हुए अपने दुपट्टे को सम्भाल कर, अपने पिता दीनानाथ शर्मा से बोली : हे पिता जी! आज प्रातःकाल से वसन्त के विषय में अत्यन्त दुःखी हृदय से उसके भाग्य को दुष्कर देख रही हूँ। उसके बाद दीनानाथ शर्मा किञ्चित गम्भीर भाव से फिर बोले। हे बेटी! तुम व्यर्थ की चिन्ता मत करो। क्योंकि वह मेरे द्वारा बार–बार मना करने पर भी उस दुर्व्यसन को नहीं छोड़ता है। इसलिये मैंने अब उसको समझाना भी छोड़ दिया। आज ही देखा किस प्रकार झगड़ा करके गया। भगवान् ने एक ही पुत्र दिया, वह भी इतना मूर्ख दिया। यह तो विधाता की ही इच्छा है और क्या बोलूं? इस प्रकार बोलने के बाद दीनानाथ शर्मा का शरीर अत्यन्त चिन्ता से व्याकुल हो गया। इस प्रकार वासन्ती पिता की दशा देख करके विषय में परिवर्तन करने हेतु खिड़की से उठकर बोली, छः बज गये हैं। इसलिये आपका संन्ध्यावन्दन का यह समय है। भोजन लगभग पक ही गया होगा, इस प्रकार बोल करके वह अन्दर चली गई।

मूल पाठ :–

(2)

दीनानाथशर्मणो गृहं लक्ष्मणपुरे नगरमध्ये एवाऽऽसीत्। एतेषां गृहे पत्नी, एकः पुत्रः, एका कन्या चेति परिवार आसीत् कन्या वासन्ती बुद्धिमती, सदाचारसम्पन्ना, युक्तायुक्त विवेकाऽभिज्ञा चाऽभूतः सम्प्रति सा शैशवं समाप्य यौवने पदमाधातुं सन्नद्धैवाऽऽसीत्। दीनानाथशर्मा तस्मिन्नेव नगर एकस्मिन्ना ङ्गलविद्यालये संस्कृताध्यापक आसीत्। वेतनं चासौ अशीतिमुद्रात्मकं लभते स्म। तेनैव द्रव्येण गार्हस्थ्यशकटं यथा कथमपि चलति स्म। पुत्रस्य दुराचरणेन सर्वदैवेतस्य चेतः परितप्यते स्म। कन्यायाश्च विवाहकाल — मुपस्थितमालोक्य वरान्वेषणे सप्रयत्न आसीदसौ ब्राह्मणः साम्प्रतिकेषु दिवसेषु दीनानाथशर्मणो मनसि 'दत्ता सुखं प्राप्सयति वा न वा" इत्येव विचारो नक्तन्दिवं भ्रमति स्म। सूनोदु स्वस्थया दीनानाथस्य कन्यैव पुत्रप्रेम्णो भाजनमासीत् । दीनानाथस्य पत्नी नवीनाचारानभिज्ञाा सरलस्वभावा सदाचारपरायणा मनोरमाऽऽख्यासीत्। तस्या एव चरितं वासन्त्यामपि प्रतिबिम्बितमासीत्। वसन्तः प्रथमं मातुः शिक्षया सुशीलो बभूव। किन्तु पश्चान्नागरिकविटानां स ङ्गत्या कुमार्गमवततार। एतदेवैकं शल्यमासीद् दीनानाथमनसः, एतदभावे तदीयं गार्हस्थ्यं सुवर्णमयमभविष्यत्।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

नगरमध्ये	—	नगर के बीच में
एतेषां	—	इनके
सदाचारसम्पन्ना	—	अच्छे आचरण से युक्त
युक्तायुक्तविवेका	—	उचित और अनुचित का ज्ञान रखने वाली

अभिज्ञा	—	ज्ञानी
शैशवं	—	बाल्यकाल को
समाप्य	—	समाप्त करके
यौवने	—	युवावस्था में
पदम् आधातुं	—	कदम रखने के लिए
तस्मिन् एव नगरे	—	उसी नगर में
एकस्मिन् आंगलविद्यालये	—	एक अंग्रेज़ी पाठशाला में
संस्कृताध्यापकः	—	संस्कृत का अध्यापक
अशीतिमुद्रात्मकम्	—	अस्सी मुद्राएं
लभते स्म	—	प्राप्त करता था
तेन एव द्रव्येण	—	उसी धन से
गार्हस्थ्यशकटं	—	गृहस्थ की गाड़ी
यथाकथमपि	—	कठिनाई से
दुराचारणेन	—	बुरे चाल चलन से
चेतः	—	हृदय
विवाहकालम्	—	विवाह का समय
आलोक्य	—	देखकर
वरान्वेषणे	—	वर को ढूंढने में
सूनोः	—	पुत्र की
मनोरमाऽऽख्या	—	मनोरमा नाम वाली
नागरिकविटानां	—	नागरिक धूर्तों की
कुमार्ग	—	बुरे रास्ते की ओर
अवततार	—	चला गया

एतदेवैकं	—	यही एक
सुवर्णमयं	—	सोने का
अभविष्यत्	—	होता

अनुवाद सहित व्याख्या :–

दीनानाथ शर्मा का घर लक्ष्मणपुर के मध्य में था। इनके घर में पत्नी, एक पुत्र तथा एक पुत्री, यही इनका परिवार था। इनकी पुत्री वासन्ती अत्यन्त बुद्धिमान तथा सदाचार सम्पन्न थी। अब वह बचपन से यौवन अवस्था को प्राप्त हो गई थी। दीनानाथ शर्मा उसी नगर में अंग्रेज़ी विद्यालय में संस्कृत के अध्यापक थे। उनको 80 रुपये मासिक वेतन मिलता था। उसी वेतन से वह परिवार रूपी गाढ़ी जैसे–तैसे चलाते थे। पुत्र के दुराचार से उनका हृदय हमेशा दुःखी रहता था। पुत्री के विवाह काल को उचित समझकर वे वर खोजने में तत्पर हो गए। विवाह के बाद वर्तमान समय में उनके मन में सुख प्राप्त होगा कि नहीं, यही चिन्ता रात–दिन उसके हृदय में घूमती थी। पुत्र के दुराचार से उनका हृदय हमेशा दुःखी रहता था। पुत्री के विवाहकाल को उचित समझकर वे वर खोजने में तत्पर हो गए। विवाह के बाद वर्तमान समय में उनके मन में सुख प्राप्त होगा कि नहीं, यही चिन्ता रात–दिन उसके हृदय में घूमती थी। पुत्र के दुराचार से दीनानाथ की पुत्री ही पुत्र–प्रेम के योग्य थी। यानि पुत्र का वास्तविक प्यार अपनी पुत्री को ही देते थे। दीनानाथ शर्मा की भार्या नवीन आचरण से रहित, सरल स्वभाव से युक्त एवं मधुर बोलने वाली थी जिसका नाम मनोरमा था। उसी के आचरण को वासन्ती भी पूर्णतया अपनाई थी। वसंत पहले माता की शिक्षा के द्वारा सुशील था। परन्तु बाद में दुष्टों के संसर्ग से वह कुमार्गगामी हो गया। यही एक दुःख दीनानाथ शर्मा को था। इसके अभाव में उनका गृहस्थ सुवर्णमय होता।

मूल पाठ :–

(3)

शनैः शनैर्भगवान् भास्करो भुवनतलं स्वकीयाभाभिर्भासयन्नभोऽङ्गनमभजत्। प्राभातिकः पवनोऽपि सलीलं विलसन् रुचिपुरुष इव कुसुमसौरभमाधाय तनुलतांसदेशमालम्ब्य वहति स्म। प्राची तस्मिन् काले सकलेभ्यो जनेभ्य उत्साहसम्पदमर्पयन्ती दानशीला सीमन्तनीव दृश्यते स्म।

अस्मिन्नेव काले दीनानाथशर्मणो गृहे मङ्गलवाद्यध्वनिरुदतिष्ठत् आम्। ज्ञातम्, अद्य वासन्त्या विवाहोत्सव आसीत्। अनवरतमन्तर्बहिः प्रविशता निर्गच्छता च जनसम्मर्देन समाकुलमासीद् दीनानाथगृहद्वारम्। सर्वतः सम्प्रवृतेऽपि प्रमोद प्रवाहे वासन्त्याः पितरौ कयाचिद् वेदनयाऽऽक्रान्ताविव दृश्येते स्म। अद्य विवाहोत्सवे वसन्तो नागत आसीत्। न जाने स क्व पलायित आसीत्। एतदेव तयोर्दम्पत्योर्दुखकारणमभूत्। वासन्त्याः पतिर्माधवनाथः सच्छीलो धनवान् रूपगुणसम्पन्नो वासन्त्या अनुरूप एवासीत्। वासन्ती जनसम्मर्दे कथमपि सहजलज्जाजड़या दृशा तमवेक्ष्य तदीय गुणगरिमाणं वयस्याभ्यः समाकर्ण्य स्वात्मानं धन्यममन्यत। किन्तु को जानाति स्म तदा यदस्य विवाहस्य कीदृशो विपाको भवतेति।

अथ व्यतीते विवाहोत्सवे वासन्ती साश्रुनेत्रोत्पला कथमपि पितरौ नमस्कृत्य स्वगृहं प्रतिष्ठत। वासन्त्यां गतायां मनोरमेदमवदत् — अस्माकमेक एवाधार आसीज्जीवनस्य, सोऽपि गतः। पुत्ररत्नवत् कीदृशीं पीड़ामाधत्त इति वयमेव वेत्तुं पारयामः। हन्त! दौर्भाग्यमस्माकं न जाने कियद् वर्तते! पुत्र एवास्माकं वंशधूर्धरः। तस्मिननेवासद्वृत्ते किमिवास्माकं सुखं भवेदिति।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

भास्करः	—	सूर्य
भुवनतलम्	—	लोकों को
भासयन्	—	प्रकाशित करते हुए
नभोऽङ्गनम्	—	आकाश के आङ्गन में
अभजत्	—	पहुँचे
पवनोऽपि	—	वायु भी
विलसन्	—	इठलाती हुई
रूचिपुरुष इव	—	मनचाहे पति की तरह
तनुलतासंदेशम्	—	कोमल लता के संदेश को
आलम्ब्य	—	आश्रय लेकर
प्राची	—	पूर्व दिशा
सकलेभ्यः जनेभ्यः	—	सभी लोगों को
उत्साहसम्पदम्	—	जोश रूपी सम्पत्ति
अर्पयन्ती	—	भेंट करती हुई
दानशीला	—	दान करने के स्वभाव
सीमन्तनी इव	—	नारी की तरह
दृश्यते स्म	—	दिखाई देती थी
मङ्गलवाद्य ध्वनिः	—	शुभ वाद्य यन्त्रों की आवाज़
उदतिष्ठत्	—	उठी

ज्ञातम्	—	पता चला
अनवरतम्	—	लगातार
सच्छीलः	—	अच्छे स्वभाव वाला
जनसम्मर्दै	—	लोगों की भीड़ में
सहजलज्जा तया जडया	—	स्वाभाविक शर्म से गतिहीन
तम् अवेक्ष्य	—	उसको देखकर
वयस्याभ्यः	—	सखियों से
स्वात्मानम्	—	अपने आप को
विपाकः	—	परिणाम्
भविता	—	होगा
आधारः	—	सहारा
वेत्तुं पारयामः	—	जानने के लिये समर्थ है
वंश धूर्धरः	—	कुल भार सम्भालने वाला
सुखं किमिव भवेत इति	—	सुख कैसा होगा

(3)

अनुवाद सहित व्याख्या :–

धीरे–धीरे भगवान् सूर्य अपने कान्ति को फैलाते हुए उदय हुए। प्रभातकालीन हवा भी अपने हावभाव से वर के समान पुष्प के सौरभ को लेकर लता–मण्डपों को मानों सन्देशदे रही हो। पूर्व दिशा में उसी समय सभी लोगों में उत्साह भरती हुई दानशीला नारी के समान पूर्व दिशा सुशोभित हुई।

उसी समय दीनानाथ के घर मङ्गल ध्वनि प्रारम्भ हुई। उसी समय लोगों ने कहा : हम जान गए वासन्ती का विवाह है आज। इस प्रकार अन्दर–बाहर आते जाते लोगों से दीनानाथ शर्मा का घर भरा हुआ था। सभी जगह आनन्द की लहर छाई हुई थी, परन्तु वासन्ती के पिता के अन्दर दुःख की लहर ही दिखाई दे रही थी। इस विवाह उत्सव में वसन्त नहीं आया था। इसी कारण से वह पति–पत्नी दुःखी थे। न जाने वह कहां भाग गया था। वासन्ती के पति माधवनाथ सुशील, धनवान, रूप गुण से सम्पन्न थे। वासन्ती उस भीड़ में कठिनाई से तथा स्वभाविक लज्जा के कारण अधोमुखी सखियों के द्वारा उनके गुणों को सुनकर अपने आपको धन्य समझ रही थी परन्तु कौन जानता था कि इसके

विवाह का परिणाम पाश्चात्य में क्या होगा?

अतः विवाह उत्सव समाप्त हो जाने पर कमल रूपी अपने नेत्रों में आंसू भरकर वासन्ती अत्यन्त कठिनाई से अपने माता–पिता को नमस्कार करके पति के घर चली गई। वासन्ती के चले जाने पर मनोरमा देवी बोली, हम लोगों के /जीने का एक ही आधार था, वह भी चली गई। श्रेष्ठ पुत्र की विरह पीड़ा पीड़ित कर रही है। यह हम लोग ही जानते हैं। हाय! हमारा दुर्भाग्य न जाने कैसे है? हमारा पुत्र भी अत्यन्त दुष्ट है। उस पुत्र के द्वारा हम लोगों को कैसे सुख प्राप्त होगा?

मूल पाठ :–

(4)

पतिगृहे वर्षद्वयं व्यतीतं समागताया वासन्त्याः। एतावति काले सेव्यमानश्वशुरादि गुरुजनाया गृहकर्मसम्पादननिपुणाया वासन्त्याः सुखेनैव कालो जगाम। पत्युरपि समधिकं प्रेम वासन्ती लेभे। कदाचित् पित्रोः स्मृतिराकुलयति स्म तदीयं चेतः। किन्तु पतिप्रेम्णः प्रभावेण नाधिकं कष्टोत्पादिनी जनकयोः स्मृतिरभूत।

किन्तु नहि सर्वदा सुखमविच्छिन्नमवतिष्ठते। कुमित्रसंसर्गान्नु स्वामिनोविमृश्यकारित्वान्न, वासन्त्या दुर्भाग्यस्य नियतत्वान्तु माधवनाथो मदिरापान — सातत्यमाललम्बे। प्रथमतः कियन्तिचिद् दिनानि सुगुप्तमसावनुतिष्ठति स्म तत् कर्म। किन्तु चतुरतरा वासन्ती सद्य एव तदलक्ष्यत्। न प्रत्यक्ष–मुच्चचार पत्युर्मनः क्लेशोदयभिया। भृशमसौ दुःखसागरे निपतिता प्रत्युरुद्धरणायाहोरात्रं विचारयन्तयेवातिष्ठत्। अथैकस्मिन् दिने बिलम्बेनायातं मदबलधूर्णमानं चक्षुर्युगलं माधवनाथमवेक्ष्य वासन्ती सद्य एव शयनीये तमवस्थाप्य तालवृन्तेन शनैः शनैर्वीजयन्ती पत्युः क्रोधशङ्कया निवार्यमाणेन मन्द–मन्दाक्षरा परिपप्रच्छ–नाथ! कोऽयमद्यत्वे समवलम्बितो भवता पन्थः? अति गर्हणीयः परिहरणीयश्चायम् इति। अथैतदाकर्ण्य सापराधमिव स्वात्मानं मन्यमानः शिरोऽप्युन्नमयितुं न शशाक माधवः। किन्तु सद्य एव तादृशमात्मनो विकारमुपसंहृत्य धाष्ट्र्यमिवावलम्ब्य जगाद – यद् वयं कुर्मस्तत् समीचीनमेव। न कोऽप्यत्र भवतीनां वाचामवसरः। एवमभिधाय तत्क्षणं माधवो गृहाद् बहिः कुत्रचिन्निरगात्। वासन्ती तु तत्रैव स्थिता लालाटीं लिपिं प्रमार्ष्टुमिवाश्रुजल सङ्ग्रहे तत्पराऽभवत्।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

पतिगृहे	—	पति के घर में
व्यतीतम्	—	बीत गए
एतावति काले	—	इस समय में
सुखनैव	—	सुख से ही
जगाम	—	बीता
समधिकम्	—	बहुत ज़्यादा

लेभे	—	प्राप्त किया
पित्रोः	—	माता–पिता की
जनकयोः	—	माता–पिता की
अविच्छिन्नम्	—	लगातार
कुमित्रसंसर्गात	—	बुरे दोस्तों की स ङ्गति के कारण
नियतत्वात्	—	अवश्यंभावी होने के कारण
सुगुप्तम्	—	छुपे हुए
असौ	—	वह
सद्य एव	—	तत्काल ही
अलक्षयत्	—	देखा
पत्युः	—	पति के
भृशम्	—	अत्यधिक
निपतिता	—	गिर पड़ी
आयातं	—	आए हुए को
समवलम्बितः	—	पकड़ा गया है
अतिगर्हणीयः	—	बहुत निन्दनीय
परिहरणीयः	—	त्यागने योग्य
न शशाक	—	समर्थ न हुआ
विकारम्	—	दोष को
उपसंहृत्य	—	नियन्त्रित करके
धाष्टर्यम्	—	ढिठाई

अनुवाद सहित व्याख्या :–

वासन्ती को पति गृह में दो वर्ष व्यतीत हो गए। इस प्रकार अपने सास–ससुर तथा बड़ों की सेवा एवं गृह

कार्य में निपुण वासन्ती सुखपूर्वक समय का सदुपयोग करती थी। पति से भी वासन्ती अत्यधिक प्यार प्राप्त करती थी। कभी–कभी उसके हृदय में माता–पिता की स्मृति व्याकुल करती थी।

परन्तु पति के अत्यधिक प्रेम के कारण माता–पिता की अधिक कष्टोत्पादिनी स्मृति नहीं होती थी। किन्तु वह सुख उसका निरन्तर कम होता चला गया, क्योंकि दुर्जन मित्रों के संसर्ग से उसके पति का स्वभाव दिन–प्रतिदिन बदलता गया। क्योंकि वासन्ती के दुर्भाग्यवश माधवनाथ शराब का आश्रय लेने लगा। कुछ दिन तो उसका यह कर्म गुप्त रहा किन्तु बुद्धिमाती वासन्ती उसका सब कर्म जान गई। परन्तु पति के हृदय में दुःख होगा, इससे वह प्रत्यक्ष नहीं करती थी। वह अत्यधिक दुःख रूपी सागर में पड़ी हुई, पति को सन्मार्ग पर लाने के लिए वह रात–दिन प्रयत्न करती थी। एक दिन बहुत देर से आये हुए शराब पीने से इधर–उधर गिरते हुए माधवनाथ को देखकर शीघ्र ही वासन्ती उसको बिस्तर पर लिटाकर पति के क्रोध की आशंका से धीरे–धीरे पंखे से हवा करती हुई मधुर स्वर में बोली — हे स्वामी! आजकल आप यह कौन सा मार्ग अपनाये हुए हैं जो कि अत्यन्त निन्दनीय तथा त्याज्य है। वासन्ती के इस प्रकार के वाक्य सुनकर मानों अपना अपराध स्वीकार करके माधवनाथ अपना सिर ऊपर उठाने के लिए समर्थ नहीं हुआ।

किन्तु शीघ्र ही अपनी विकारयुक्त अवस्था को त्यागकर गम्भीर स्वर में बोला — जो मैं करता हूँ ठीक ही करता हूँ, इसमें आपको बोलने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार बोलकर वह घर से बाहर कहीं चला गया तथा वासन्ती भी बैठकर अश्रुपात को पौंछने लगी।

मूल पाठ :–

(5)

'समानशील व्यसनेषु सरव्यम्' इति न्यायेन दैवयोगान् माधवनाथस्य विटमण्डलीषु वसन्तेन सह स्वनगरे पानगोष्ठीसौहार्दमुदपद्यत। किन्तु वसन्तः 'भगिनी तिरस्करिष्यति' इति भयेन माधवनाथस्य गृहं कदापि न गच्छति स्म। एकदा माधवनाथो वासन्त्या भूयो भूयोऽनुनीयमानसकोपमभाणीत् — 'प्रथमं गत्वा स्वबन्धुराजं निवर्तय। पश्चान्मामुपदेक्ष्यसि।' एतदाकर्ण्य ततः प्रभृति 'कथं वसन्तोऽपि सहैवैतेषाम्? इति द्विगुणमौन्मत्यमनयोर्भविष्यति इति समधिकया चिन्तया समाक्रान्ताऽभूत। सकलेऽपि गृहोपकरने विक्रीतेसति, शनैः शनैः वसिन्त्या आभूषणान्यपि मदिरागृहोपहारतां जग्मुः। दिनद्वयादारभ्य गृहे लेशोऽपि नासीदशितव्ययस्य वस्तुनः। चिरन्तनया वृद्धया परिचारिकया वासन्त्याः अवस्थां परिकल्य स्वगृहात् किञ्चिदशितव्यमानीतमासीत् तच्च कथमपि वासन्त्या दुस्त्यजतया बुभुक्षायाः निगीर्णम्। माधवस्तु बहोः कालादेव बहिरेव यथाभिलषित भोजनं विद्यत्ते स्म।

वसन्तस्य समागमेन माधवनाथस्य स्वेच्छाचारित्वं भृशमवर्धत। प्रथमं दिवसान्तरे एकवारमपि माधवनाथो गृहमायाति स्म। इदानीं तु साप्ताहिकमपि गृहागमनं कृच्छ्रेण भवति स्म। माधवनाथस्य चरितं श्रुत्वा सपत्नीको दीनानाथशर्मा समधिकमखिद्यत। प्रथमतः एव पुत्रविषयकः क्लेश आसीदेव। पुनरेतेन दुहितुदौर्भाग्यगरिम्णा स ववृधे। एवमुभयतः कष्टमनुभवन्समेधमानाधि परिपीड्यमान आत्मनो गार्हस्थ्यभविष्यमन्धकारमयमवलोक्य शयनीयमभजत। माधवनाथोपि स्ववपुषि बहुलदुराचारविधानेन तनिमानमतिसूक्ष्मतया समागमत्। संलक्ष्य चैतद् वासन्ती कयाचित् नूतनया चिन्तया

दुःखसागर आकण्ठं ममज्ज। पुरन्ध्रीणामियमेव चिन्ताऽतिदुर्विषह्या भवति।

यद्धि वासन्त्या शङ्कितमासीत्, तच्छनैः शनैः सत्यतामुपगन्तुमिव सन्नद्धं ददृशे। माधवनाथो रोगशय्यायां सुस्वाप। वासन्त्याः सदाचारपरायणत्वं सकलकष्टसहत्वं च माधनाथो न वेत्ति स्मेति न, किनवात्मनो गर्वप्रदर्शनार्थमेकदाऽपि तस्या आदरं न विदधे। वासन्ती तु सकलमप्यवमानं सहमाना कदापि न खेदयामास माधवीयं मनः, वाचा कर्मणा चेष्टयाऽपि वा।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

समानशीलं व्यसनेषु	—	समान स्वभाव और दोष वालों में
सख्यम्	—	दोस्ती
इति न्यायेन	—	इस नियम से
दैवयोगात्	—	भाग्य में मिलन से
विटमण्डलीषु	—	धूर्तों की टोलियों में
स्वनगरे	—	अपने नगर में
पानगोष्ठीसौहार्दम्	—	शराब पीने की सभाओं में मित्रता
भूयः भूयः	—	बार–बार
अनुनीयमानः	—	प्रार्थना किया जाता हुआ
सकोपम्	—	गुस्से से
द्विगुणमौन्मती	—	दुगुनी चुप्पी से युक्त
गृहोपकरणे	—	घर का सामान
जग्मुः	—	चले गए
लेशोऽपि	—	थोड़ा सा टुकड़ा भी
शितव्यम्	—	खाने की वस्तु
दुस्त्यजतया	—	कठिनता से त्यागने वाली
बुभुक्षया	—	भूख द्वारा
समागमेन	—	स ङ्गति से

कृच्छ्रेण	—	कठिनता से
ववृधे	—	बढ़ा
अनुभवन	—	अनुभव करते हुए
शयनीयम् अभजत्	—	बिस्तर पर पड़ गया
स्ववपुषि	—	अपने शरीर पर
पुरन्ध्रीणाम्	—	विवाहिता स्त्रियों की
दुर्विषह्या	—	कठिनता से सहन करने योग्य
सत्यताम्	—	सच्चाई की ओर
सन्नद्धम्	—	तैयार
ददृशे	—	दिखाई दिया
सुस्वाप	—	सो गया
वाचा	—	वाणी से
कर्मणा	—	कार्य से

"समान स्वभाव तथा समान दोष वाले व्यक्तियों से दोस्ती" इस न्याय से भाग्यवश माधवनाथ के दुष्टों की मण्डली में वसन्त के साथ शराब पीने की सभा मे मित्रता हो गई। किन्तु बहिन अपमान करेगी। इस भय से वसन्त माधवनाथ के घर नहीं जाता था। एक दिन माधवनाथ बार–बार वासन्ती के द्वारा मना करने पर क्रोधपूर्वक बोला : पहले जाकर अपने भाई को रोको, पश्चात् मुझको समझाना। ऐसा सुनकर "क्या वसन्त भी इन लोगों के साथ है" यह वासन्ती सोचने लगी और मौन धारण करके रहने लगी। इससे उसकी चिन्ता अत्यधिक बढ़ गई। धीरे–धीरे घर का सारा समान बिक गया तथा अलंकार भी शराब पीने में बिक गये। दो दिन से घर में खाने को कुछ नहीं था, एक बूढ़ी दासी वासन्ती की इस दशा को देखकर वह अपने घर से कुछ खाने की वस्तु लाई। उस भोजन को वासन्ती ने बहुत कठिनाई से कुछ खाया तथा माधवनाथ तो बहुत दिन से बाहर ही अपनी इच्छानुसार भोजन करता था।

वसन्त के साथ माधवनाथ के दुर्व्यसन और बढ़ गये। हफ्ते में मुश्किल से एक दिन घर आते थे। माधवनाथ के इस समाचार को सुनकर पति–पत्नी दीनानाथ शर्मा अत्यन्त दुःखी हुए। पहले से तो एक पुत्र का शोक था, दूसरा अब बेटी के दुर्भाग्य से उनका शोक अत्यधिक बढ़ गया। इस प्रकार वे दोनों कष्ट का अनुभव करते हुए तथा अपना गृहस्थ जीवन को अंधकारमय सोचकर सो गये। माधव ने भी दुर्व्यसन के द्वारा अपने को बहुत कमज़ोर बना दिया। ऐसा देखकर वासन्ती को नई चिन्ता हो गई तथा शोक रूपी सागर में डूब गई यद्यपि वासन्ती से वह शंकित था किन्तु धीरे–धीरे सत्य बोलने को उत्सुक दिखाई देता था। इस प्रकार माधव रोग रूपी शय्या पर सो गया। सदाचार परायण

वासन्ती सम्पूर्ण कष्ट सहन करती थी परन्तु यह माधवनाथ न ही जानता था न ही विचार करता था। अपने अहंकार के कारण उसने कभी भी उसका आदर नहीं किया। वासन्ती भी सब कुछ सहन करती हुई कभी भी वाणी से कर्म से तथा चेष्टा से उनका अनादर नहीं करती थी।

मूल पाठ :–

अथैकस्मिन् दिने वासन्ती नित्यक्रमानुसारं माधवनाथमुपचरन्ती गृहकर्मणि संलग्नाऽऽसीत्। माधवनाथस्तां तादृशीमवेक्ष्य शनकैः प्रिये वासन्ति इत्येवं सगद्गदं शनैराकाख्यामास। वासन्ती तु निद्राप्रबुद्धेव तं तादृशमश्रुतपूर्वं तदीयं व्याहारमाकर्ण्य साश्रुलोचना पर्यङ्कस्य समीपमागत्य तूष्णीं तस्थौ। सा तदीयाह्वानस्य प्रत्युत्तरमपि विसस्मार। माधवनाथस्तां तादृशीमवेक्ष्य मुहुर्त यावत् किमपि वक्तुं न शशाक। अथासौ मस्तकमुन्नमय्य — उत्थातुं प्रयत्नमकरोत्। वासन्ती झटितितदभि सन्धिं लक्षयित्वा — स्वहस्तावलम्बनेन तमुत्थाप्यास्थापयत्। अथ माधवनाथो वासन्त्याः पाणिं रोगकृशे स्वपाणावादाय साश्रुनेत्रो बभाषे – दयिते! बह्वपराद्धं मया, क्षम्यताम्, त्वादृशी गृहलक्ष्मीर्मया दुराचारेण पदभ्यामताड्यत! धिङ् माम्। मादृशं — 'मध्य एव तस्य वचनमाक्षिप्य वासन्ती — 'नैवमहं नरक गामिनी विधेया' इति वचनमाभाष्य पत्युर्वदने स्वपाणिपल्लवं व्यधात्। वासन्त्यास्तपः साफल्यंमुपययौ किन्तु सा रोगराक्षसदंष्ट्राया माधवनाथं रक्षितुं नाशकत्। एकस्मिन् दिने विलपन्तीं वासन्तीं परित्यज्य माधवः शाश्वतं पदं प्राविशत्।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

नित्यक्रमानुसार	—	प्रतिदन के क्रम के अनुसार
आकारयामास	—	पुकारना
पर्यङ्कस्य	—	पलंग के
प्रत्युत्तरम्	—	जवाब
झटिति	—	झटपट
पाणिम्	—	हाथ को
मादृशम्	—	मुझ जैसे
अताड्यत	—	पीटी गई
परित्यज्य	—	छोड़कर

अनुवाद सहित व्याख्या :–

एक दिन वासन्ती नित्य क्रिया करके तथा माधवनाथ के उपचार करके घर के कार्य में संलग्न थी। माधव वासन्ती को इस प्रकार देखकर बोला, हे प्रिये! इस प्रकार धीरे से बुलाया गया वासन्ती भी निद्रा में जगी हुई की तरह उसको वैसा देखकर तथा उसका व्यवहार सुनकर आँसू से भरी हुई नेत्रों वाली उसके पलंग के पास आ करके मौन

खड़ी हो गई। वह उसके बुलाने का उत्तर भी भूल गई थी। माधव उसको वैसा देखकर थोड़ी देर कुछ भी बोलने में समर्थ नहीं हुआ उसके बाद सिर उठा करके उसने उठने का प्रयत्न किया। वासन्ती ने शीघ्र ही उसके प्रयत्न को समझ करके उसको उठाकर बिठा दिया। उसके बाद माधव वासन्ती के हाथ को अपने रोग से अत्यन्त क्षीण हाथ में रखकर नेत्रों में आँसू भरकर बोला — हे प्रिये! मैंने बहुत अपराध किया है। मुझे क्षमा कर दो। आप जैसी घर की लक्ष्मी को मैंने दुराचार के द्वारा पैर से मारा है। मुझको धिक्कार है। उसके बाद वासन्ती बीच में रोककर बोली — हे स्वामी! ऐसा मत बोलो, हम को नरक के मार्ग में जाने वाला नहीं बनाइये। ऐसा बोलकर वासन्ती ने अपनी कठिन तपस्या से भी रोग रूपी राक्षस से उसको नहीं बचा पाई। एक दिन रोती हुई वासन्ती को छोड़कर माधवनाथ सदा के लिए चला गया।

मूल पाठ :–

वसन्तोऽपि माधवनाथस्य मरणवार्तया समुन्मीलितलोचनोऽभवत। कतिपय दिवसानन्तरं वसन्तः कथमपि साहसमवलम्ब्य स्वभगिन्या गृहमाजगाम। किन्तु तत्रत्यैः प्रतिवेशिभिरिदमुक्तं यत्पत्युर्मरणानन्तरमल्पीयस्यैव कालेन सा कुत्राप्यगमत् इति। अथ वसन्तः खिन्नमनसः पितरौ सेवमानो मनस आश्वासनाय तीर्थयात्रायै सहैव पितृभ्यां निर्जगाम्। अथ क्रमेणासौ हरिद्वार–तीर्थे समाययौ। तत्रैकस्मिन् दिने ग ङ्गातीरे तेन काऽपि योगिनी दूरतः समायान्ती दृष्टा। तां च समीपमागतां सभ्यग् निर्वर्ण्य सह सैव वसन्त–वदनात् 'किं वासन्ति! इत्यक्षराणि निर्ययुः। साऽपि वसन्तमवेक्ष्य किं भ्रातः! इत्युक्तवा पादयोः पपात। अथ वसन्त आचरणमूलान्तामवेक्ष्य 'भगिनि! इत्यपृच्छत्। वासन्ती सु सहसैव हिस्याकथयत् —

'को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तु —

द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे'

कठिन शब्दों के अर्थ :–

मरणवार्तया	—	मृत्यु की घटना से
समुन्मीलितलोचनः	—	धुंधली आँखों वाला
कतिपयदिवसानन्तरं	—	कुछ दिनों के बाद
साहसम्	—	बल का
स्वभगिन्या	—	अपनी बहन से
तत्रत्यैः	—	उस स्थान से सम्बद्ध (लोगों के द्वारा)
प्रतिवेशिभिः	—	पड़ोसियों द्वारा
इदम् उक्तम्	—	यह कहा गया
अल्पीयसैव	—	थोड़े ही

कालेन	—	समय बाद
अगमत्	—	चली गई
खिन्नमानसः	—	दुःखी मन वाला
सेवमानः	—	सेवा करता हुआ
आश्वासनाय	—	तसल्ली केलिए
पितृभ्याम्सह	—	माता–पिता के साथ
निर्जगाम्	—	निकल गया
समायान्ती	—	आती हुई
सम्यग	—	अच्छी तरह
निर्वर्ण्य	—	देखकर
किं भ्रातः	—	क्या भाई
पाकाभिमुखस्य	—	पकने को तैयार
दैवस्य	—	भाग्य के
द्वाराणि	—	दरवाजों को
पिधातुम	—	बन्द करना

प्रसंग सहित व्याख्या :–

वसन्त भी माधव के मरने का समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ। कुछ दिन बाद वसन्त कुछ साहस भरकर अपनी बहन के घर गया। वहां जाने पर पड़ोसियों से पता चला कि पति के मरणोपरान्त कुछ ही दिन के बाद वह कहीं चली गई। उसके बाद वसन्त दुःखी मन से अपने माता–पिता की सेवा करता हुआ तथा उनको आश्वासन देने के लिए, शीघ्र ही अपने माता–पिता के साथ तीर्थ यात्रा करने गया। इसके पश्चात् वे क्रमशः हरिद्वार पहुँचे। वहां एक दिन गंगा नदी के किनारे कोई योगिनी स्त्री आती हुई दिखाई दी तथा उसके समीप आने पर अच्छी प्रकार से देखकर शीघ्र वसन्त बोला, क्या तुम वासन्ती हो? यह बात सुनकर वह भी वसन्त को देखकर बोली — क्या भाई वसन्त हो? ऐसा कहकर उनके पैरों में गिर पड़ी। इसके बाद वसन्त उसकी अवस्था तथा वेश–भूषा देखकर बोला, यह क्या बनी हो बहन? वासन्ती शीघ्र ही हंसकर बोली कौन सा जीवधारी पकने को तैयार भाग्य के द्वार को बन्द करना चाहता है।

प्रस्तुत गद्यांश के भाषा का प्रवाह सरल एवं मधुरतम है। अलंकारों का भी प्रयोग हमें अच्छी प्रकार से देखने को मिलता है।

अभ्यास कार्य

परीक्षा में किसी पंक्ति अथवा पूर्ण अनुच्छेद की व्याख्या पूछी जा सकती है। अतः सम्बन्धित पाठों को ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए कि कौन सी बात किसने कही है अथवा किस प्रसंग में कही गई है। निम्नलिखित कुछ सन्दर्भ दिए जा रहे हैं, उनकी व्याख्या का अभ्यास करना अपेक्षित है :–

(क) दीनानाथशर्मणो गृहं लक्ष्मणपुरे ..... लभते स्म।

(ख) "समानशीलव्यसनेषु सख्यम्" ..... भोजनं विद्यत्ते स्म।

(ग) पतिगृहे वर्षद्वयं ..... जनकयोः स्मृतिरभूत्।

महावीर

विद्यार्थियों से अपेक्षित है कि वे निम्नलिखित परिच्छेदों की अपनी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत गद्य–संकलन' से ढूंढकर उचित अनुवाद सहित व्याख्यात करें —

(क) "मधुमदमुदितकामिनी ..... प्रहारहृष्टकप्रेलिशतः।"

(ख) "महाशृङ्गारीव सुगन्धवाहः ..... दोषानुबन्धरहित।"

g g g g g g

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit
GDC Samba.

मातङ्गदारिकापरिव्राजनम्

मूल पाठ :–

(1)

एकस्मिन समये भगवान श्रावस्त्यां विहरति स्म। जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। केन खलु समयेन तस्मिन्नुदपाने प्रकृतिर्नाम मातङ्गदारिका उदकमुद्धरते स्म। अथायुष्मानानन्दः प्रकृतिं मातङ्गदारिकामेतदवोचत्। देहि मे भगिनि पानीयं, पास्यामि। एवमुक्ते मातङ्गदारिकायुषमन्तमानन्दमिदमवोचत्। मातङ्गदारिकाहमस्मि भदन्तानन्द! नाहं ते भगिनी कुलं जातिं वा पृच्छामि। अपितु स चेते परित्यक्तं पानीयं देहि पास्यामि।

अथ प्रकृतिर्मातङ्गदारिकायुष्मत आनन्दाय पानीयमदात। अथायुष्मानानन्दः पानीयं पीत्वा प्रक्रान्तः। अथ प्रकृतिर्मातङ्गदारिकायुष्मत आनन्दस्य शरीरे मुखे स्वरे साधु च सुष्ठु च निमित्तमुद्गृहीत्वा योनिशो मनसि विकारेणाविष्टा संरागचित्तमुत्पादयति स्म। आर्यो मे आनन्दः स्वामी स्यादिति। माता च मे महाविधाधरी। सा शक्ष्यत्यार्यमानन्दमानचितुम्।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

मातङ्गदारिकापरिव्राजनम्	—	चण्डाल कन्या का सांसारिक माया मोह का त्याग
भगवान्	—	बुद्ध (महात्मा)
विहरति स्म	—	घूमते थे
उदकम्	—	पानी
उद्धरते स्म	—	निकालती थी।

पास्यामि	—	पिऊँगा
परित्यक्तम्	—	त्याग किए हुए को
अदात्	—	दिया
प्रक्रान्तः	—	चला गया
स्वरे	—	आवाज़ में
उद्गृहीत्वा	—	ग्रहण करके
विकारेण आविष्टा	—	विकार से चिन्तित
स्यात्	—	हों
आदाय	—	लेकर
निक्षिप्य	—	फैंककर
स्वां जननीं	—	अपनी मां को
खलु एव	—	निश्चित रूप में ऐसा
महाश्रमणगौतमस्य	—	महाभिक्षु गौतम का
उपस्थापकः	—	सेवक
तमहम्	—	मैं उसको
स्वामिनम् इच्छामि	—	स्वामी बनाना चाहती हूँ

प्रसंग सहित व्याख्या :–

प्रस्तुत गद्यांश "मातङ्गदारिका परिव्राजनम्" दिव्यानंद द्वारा रचित "शादूलकर्णावदानत" ग्रन्थ से लिया गया है। इसमें प्रकृति नामक चण्डालकन्या का महात्मा बुद्ध के शिष्यआनन्द के प्रति आकृष्ट होने का और अन्त में महात्मा बुद्ध के प्रभाव में आकर संन्यास ग्रहण करने की कथा है।

एक समय में भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में घूमते थे, जेतवन में अनाथों को पिण्ड देते थे। वहां पर प्रकृति नाम वाली मातङ्ग चाण्डाल कन्या इस तालाब से पानी निकालती थी। आयुष्मान आनन्द ने चाण्डाल कन्या को कहा — हे बहन, मुझे पीने योग्य पानी दो, मैं पिऊँगा। इस प्रकार के कहने पर मातङ्गादारिका ने आयुष्मान आनन्द को कहा : मैं एक मातङ्ग कन्या हूँ। हे मातङ्ग कहने वाली बहन, मैं तुम्हारी कुल और जाति को नहीं पूछ रहा हूँ। अतः यह हृदय से हटाकर मुझे पीने योग्य पानी दो, मैं पिऊँगा। इसके बाद प्रकृति नामक चाण्डाल कन्या ने आनन्द को पीने योग्य पानी दिया।

उसके बाद आयुष्मान आनन्द पानी पीकर चला गया इसके बाद चाण्डाल कन्या ने आयुष्मान आनन्द के शरीर में, मुँह में अच्छा व शोभन संकेत ग्रहण करके मन में चाण्डाल योनि के विकार से चिन्तित हुई थी। आर्य आनन्द मेरे लिये आनन्द स्वामी हो। विद्याधरी मेरी माता है। वह आर्य को ला सकेगी।

(2)

अथ प्रकृतिमार्तङ्गदारिका पानीयघटमादाय येन चण्डालगृहं तेनोपसङ्क्रम्य पानीयघटमेकान्ते निक्षिप्य स्वां जननीमिदमवोचत्।

यत्खल्वेवमम्ब जानीया आनन्दो नाम श्रमणो महाश्रमणगौतमस्य श्रावक उपस्थापकस्तमहं स्वामिनमिच्छामि। शक्ष्यसि तमम्ब आनयितुम्।

सा तामवोचत्। शक्ताहं पुत्रि। आनन्दमानयितुम्। स्थापयित्वा यो मृतः स्याद् यो वा वीतरागः। अपि च राजा प्रसेनजित् कौशलः श्रमणगौतममतीव सेवते, भजते पर्युपासते। यदि जानीयात् सोष्यं चण्डालकुलस्यानर्थाय प्रतिपद्येत। श्रमणश्च गौतमो वीतरागः श्रूयते। वीतरागस्य मन्त्राः पुनः सर्वमन्त्रानभिभवन्ति।

एवमुक्त्वा प्रकृति र्मातङ्गदारिका मातरमिदमवोचत्। स चेदम्ब श्रमणो गौतमो वीतरागस्तस्यान्तिकाच्छ्रमणमानन्दं न प्रतिलप्स्ये जीवितं परित्यजेयम्। स चेत् प्रति लप्स्ये जीवामि। मा ते पुत्रि जीवितं परित्यजसि आनयामि श्रमणमानन्दम्।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

शक्ताहम्	—	मैं समर्थ हूँ
अतीव	—	अत्यधिक
भजते	—	सत्कार करता है
पर्युपासते	—	आराधना करता है
अनर्थाय प्रतिपद्येत्	—	बुरा होगा
वीतरागः संन्यासी	—	जिसने अपने रागों का
पर्युपासते	—	आराधना करता है
अन्तिकात्	—	पास से
प्रतिलपस्ये	—	मिलेगा
परित्यजेयम्	—	त्याग दूँगी
जीवामि	—	जीती हूँ

व्याख्या :–

इसके बाद चाण्डाल कन्या ने पानी के घड़े को लेकर चाण्डाल के घर के पास पहुँचकर एकान्त में घड़े को फैंककर अपनी माता को कहा — जो निश्चय धारण कर आनन्द नामक बौद्ध महाश्रमण गौतम का उपासक है, उसको मैं पति रूप में चाहती हूँ। हे माता! उनको आने के लिये कहोगी? उसने उसको कहा — पुत्री मैं समर्थ हूँ। आनन्द को लाने के लिये। मृत्यु को रखकर जिसने वीतराग को धारण किया है और राजा प्रसेनजित कौशल बौद्ध गौतम की अतीव सेवा करते हैं, भजते हैं, उनकी उपासना करते हैं। यदि वह यह जान लेंगे तो इससे चाण्डाल कुल का अनर्थ ही होगा। गौतम बुद्ध वीतरागी हैं। सुना जाता है वीतराग के मन्त्र सभी मन्त्रों को तिरस्कृत करते हैं।

इस प्रकार सुनकर प्रकृति नामक मातङ्गदारिका ने अपनी माता से कहा — माता गौतम बुद्ध के पास रहने वाले आनन्द को अगर प्राप्त न कर पाऊँगी तो जीना छोड़ दूँगी। उसकी प्राप्ति के लिये ही मैं जिऊँगी। पुत्री, नहीं, अपने प्राणों का त्याग न करो। लाती हूँ बौद्ध आनन्द को।

मूल पाठ :–

(3)

अथ प्रकृतेर्मातङ्गदारिकाया माता मध्ये गृहाङ्गनस्य गोमयेनोपलेपनं कृत्वा वेदीमालिप्य दर्भान् संस्तोर्वाग्निं प्रज्वाल्याष्टशतमर्कपुष्पाणां गृहीत्वा मन्त्रानावर्तयमाना एकैकमर्कपुष्पं परिजप्य अग्नौ प्रतिक्षिपति स्म। अथायुष्मत आनन्दस्य चित्तमाक्षिप्तम्। स विहारान्निष्क्रम्य येन चण्डालगृहं तेनोपसङ्क्रामति स्म। अद्राक्षीच्चण्डाली आयुष्मन्तमानन्दं दूरादेवागच्छन्तम्। दृष्टवा च पुनः प्रकृतिदुहितरमिदमवोचत्। अयमसौ पुत्रि श्रमण आनन्द आगच्छति शयनं प्रज्ञपय।

अथ प्रकृति र्मातङ्गदारिका हृष्टतुष्टा प्रमुदितमना आयुष्मत आनन्दस्य शय्या प्रज्ञपयति स्म।

अथायुष्मानानन्दो येन चण्डालगृहं तेनोपसङ्क्रान्तः। उपसङ्क्रम्य वेदीमुपनिश्रित्यास्थात्। एकान्तस्थितः स पुनरायुष्मानानन्दः प्रारोदीद्। अश्रुणि प्रवर्तयमान एवमाह–व्यसनप्राप्तोऽहमस्मि। न च मे भगवान् समन्वाहरति।

अथ भगवानायुष्मन्तमानन्दं समन्वाहरति स्म। समन्वाहृत्य सम्बुद्धमन्त्रैश्चण्डालमन्त्रान् प्रतिहन्ति स्म। अथायुष्मानानन्दः प्रतिहतचण्डालमन्त्रश्चण्डालगृहान्निष्क्रम्य येन स्वको विहार स्तेनोपसङ्क्रमितुमारब्धः।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

गोमयेन	—	गोबर से
दर्भान्	—	कुशों के तिनके
अर्कपुष्प	—	आक के फूल को
गृहीत्वा	—	लेकर
आवर्तयमाना	—	प्रदक्षिणा करती हुई

एकैकम्	—	एक एक को
परिजप्य	—	जप करके
अग्नौ	—	आग में
परिक्षिपति स्म	—	फैंकती थी
आयुष्मत् आनन्दस्य	—	दीर्घायु आनन्द को
चण्डालगृहं उपसङ्क्रामति स्म	—	चण्डाल के घर के आस–पास
अद्राक्षीत्	—	देखा
आगच्छन्तम्	—	आते हुए को
दृष्टवा च	—	और देखकर

व्याख्या :–

इसके बाद प्रकृति की माता मातङ्गदारिका ने आंगन और घर गोबर से लीप डाले। वेदी को लीप कर, दर्भा को इकट्ठा कर अग्नि को जलाकर 800 अर्क फूलों को लेकर मन्त्रों को पढ़ती हुई एक–एक फूल को आग में फैंकती थी। इसने दीर्घायु आनन्द के चित्त को विक्षिप्त किया। वह (आनन्द) विहार के लिए निकल कर चाण्डाल के घर के पास घूमने लगा। दूर से ही दीर्घायु आनन्द को आते देखकर फिर से पुत्री प्रकृति को कहा, वह आनन्द आ रहा है, उसका बिस्तर लगाओ।

इसके बाद मातङ्गदारिका प्रकृति प्रसन्न मन से दीर्घायु आनन्दको चारपायी पर देख रही थी। इसके बाद दीर्घायु आनन्द जिससे चाण्डाल घर को आ गया था, आकर बेदी के पास बैठ गया। एकान्त में बैठे हुए पुनः दीर्घायु आनन्द रोया, आँसुओं को पौंछता हुआ इस प्रकार कहने लगा — मैं पतन को प्राप्त हो चुका हूँ। न मुझे भगवान् मुक्त ही करते हैं। इसके बाद आनन्द को बुद्ध ने मुक्त किया। मुक्त करके अपने सम्बद्ध मन्त्रों द्वारा चाण्डाल के मन्त्रों को तिरस्कृत किया।

इसके बाद दीर्घायु आनन्द ने चण्डाल के मन्त्र बन्धन से छूटकर अपने विहार के पास घूमना शुरू कर दिया।

मूल पाठ :–

(4)

अद्राक्षीत् प्रकृति र्मातङ्गदारिका। आनन्दमायुष्मन्तं प्रतिगच्छन्तं दृष्ट्वा चतुनः स्वां जननीमिदमवोचत्। असौ मातः श्रमणः आनन्दः प्रतिगच्छति। तामाह माता। नो चितं पुत्रि श्रमणेन गौतमेन समन्वाहृतो भविष्यति। न मम मन्त्राः प्रतिहता भविष्यन्ति। प्रकृतिराह — किं पुनरम्ब बलबत्तरा श्रमणस्य गौतमस्य मन्त्रा नास्माकम्। ये पुत्रि मन्त्राः सर्वलोकस्य प्रभवन्ति न तान् मन्त्रान् श्रमणो गौतम आकङक्षमाणः प्रतिहन्ति। न पुनर्लोकः प्रभवति श्रमणस्य गौतमस्य मन्त्रान् प्रतिहन्तुम। एवं बलबत्तराः श्रमणस्य गौतमस्य मन्त्राः।

अथायुष्माननन्दः पूर्वाङ्गे निवास्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं पिण्डाय प्राविक्षत्। ददर्श प्रकृतिर्मातङ्गदारिकायुष्मन्तमानन्दम्। दूरत एव दृष्ट्वा च पुनरायुष्यमन्तामानन्दं पृष्ठतः पृष्ठतः समनुद्रुद्धा गच्छन्तमनुगच्छति तिष्ठन्तमनुतिष्ठति। यद् यदेव कुलं पिण्डाय प्रविशति तस्य तस्यैव द्वारे तूष्णीभूता तिष्ठति आयुष्मनतमानन्दमामन्त्रयमाणा।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

प्रतिगच्छन्तम्	—	लौटते हुए को
भविष्यति	—	निश्चित रूप से भिक्षु गौतम द्वारा आकर्षित कर दिया गया
तेन	—	गौतम द्वारा
मम	—	मेरे
प्रतिहताः भविष्यति	—	तिरस्कृत हो जाएँगे
बलबत्तरा	—	अधिक बलवान्
सर्वलोकस्य प्रभवन्ति	—	सारे संसार को प्रभावित करते हैं
न पुनः लोकः प्रभवति	—	संसार समर्थ नहीं है
एवं बलबत्तराः	—	इतने बलवान् हैं
पूर्वाह्ने	—	दोपहर से पहले
निवास्य	—	धूनी देकर
पात्रं	—	भिक्षा का बर्तन
चीवरं	—	भिक्षु के कपड़े
आदाय	—	लेकर
श्रावस्तीम्	—	श्रावस्ती नामक नगरी में
पिण्डाय	—	भोजन
प्राविक्षत्	—	प्रविष्ट हुआ

व्याख्या :–

प्रकृति मातङ्गदारिका ने देखा कि दीर्घायु आनन्द जा रहे हैं। जाते हुए आनन्द को देखकर माता ने इस प्रकार कहा। पुत्री, चिंता मत करो। इसको गौतम बुद्ध ने बुलाया होगा। मेरे मन्त्र तिरस्कृत नहीं हो सकते हैं। प्रकृति ने कहा :

माता, क्या गौतम बुद्ध के मन्त्र तुम्हारे मन्त्रों से बलवान् हैं? पुत्री मन्त्र सब लोगों को प्रभावित करते हैं। परन्तु गौतम बुद्ध चाहकर भी नहीं कर सकते।

संसार में इतना सामर्थ्य किसी के पास भी नहीं है कि जो गौतम बुद्ध के मन्त्रों को तिरस्कृत कर सके। इस प्रकार गौतम बुद्ध के मन्त्र अत्यधिक बलवान् हैं। दीर्घायु आनन्द दोपहर से पहले धूनी देकर भिक्षु का बर्तन, भिक्षु के कपड़े लेकर श्रावस्ती नामक नगरी में भोजन करने के लिये प्रविष्ट हो गये। दीर्घायु आनन्द के पीछे–पीछे प्रकृति छाया सी लग गई। जब वह चलता था तो वह चलती थी। जब वह बैठता था तो वह बैठती थी। जिस–जिस कुल में भिक्षा के लिये जाता था उस–उस के द्वार पर चुपचप बैठती थी। दीर्घायु आनन्द को बुलाती हुई।

मूल पाठ :–

(5)

ददर्शायुष्मानान्दः प्रकृतिं मातङ्गदारिकां पृष्ठतः पृष्ठतः समनुबद्धां दृष्ट्वाच पुनर्जेह्रीयमानरूपोऽप्रगल्भायमानरूपो दुःखी दुर्मनाः शीघ्रं शीघ्रं श्रावस्त्या विनिर्गम्य येन जेतवनं तेनोपसङ्क्रान्तः। उपसङ्क्रम्य भगवता पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्तेऽस्थाद्। एकान्तस्थित आयुष्मानानन्दो भगवन्तमिदमवोचत् इयं मे भगवन् प्रकृतिर्मातङ्गदारिका पृष्ठतः पृष्ठतः समनुबद्धा गच्छन्तमनुगच्छति तिष्ठन्तमनुतिष्ठति। यद् यदेव कुलं पिण्डाय प्रविशामि तस्य तस्यैव द्वारे तूष्णीभूता तिष्ठति। त्राहि मे भगवन् त्राहि मे सुगत।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तमानन्दमिदमवोचत्। मा भै मा भैरिति। अथ भगवान् प्रकृतिं मातङ्गदारिकामिदमवोचत्। किं ते प्रकृते मातङ्गदारिके आनन्देन भिक्षुणा। प्रकृतिराह। स्वामिनं भदन्तमानन्दमिच्छामि।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

ददर्श	—	देखा
पृष्ठतः	—	पीछे–पीछे
समनुबद्धा	—	साथ बंधी हुई
गच्छन्तम्	—	जाते हुए को
अनुगच्छति	—	पीछे जाती
यद् यद्	—	जिस जिस
कुलम्	—	घर में
द्वारे	—	दरवाज़े
तूष्णीभूता	—	चुप होकर
तिष्ठति	—	बैठती

एवमुक्ते	—	ऐसा कहने पर
शिरसा	—	शीश पर
सुगत	—	भगवान् बुद्ध का नाम
भदन्तः	—	आदरसूचक शब्द
स्वामिनं इच्छामि	—	पति बनाना चाहती हूँ

व्याख्या :–

इस प्रकार दीर्घायु आनन्द ने मातङ्गदारिका को पीछे–पीछे छाया की तरह आती हुई देखा, देखकर फिर से लज्जित होता हुआ असाहसी किये जाते हुए रूप वाला दुःखी–दुःखी बुरे मन से जल्दी–जल्दी श्रावस्ती से निकल कर जेतवन के पास पहुँचे। पहुँचकर भगवान् के चरणों में सिर को रखा। प्रणाम करके एकान्त में बैठ गया। एकान्त में बैठे हुए दीर्घायु आनन्द ने भगवान् को कहा — मेरे भगवान्, यह प्रकृति मातङ्गदारिका पीछे–पीछे आ रही है। मैं चलता हूँ तो वह चलती है। जब मैं बैठता हूँ तो वह भी बैठती है। जब–जब मैं भिक्षा के लिये नगर में प्रवेश करता हूँ उसके द्वार पर चुप होकर बैठती है। मेरी रक्षा करो भगवान्।

इस प्रकार कहने पर भगवान् ने दीर्घायु को यह कहा मत डरो, मत डरो। इसके बाद भगवान् ने मातङ्गदारिका प्रकृति से पूछा, तुम आनन्द से क्या चाहती हो? प्रकृति ने कहा — मैं भदन्त आनन्द को पति रूप में प्राप्त करना चाहती हूँ।

मूल पाठ :

अथ भगवान प्रकृतेर्मातङ्गदारिकाया मातापितराविद मवोचत्। अनुज्ञाता युवाश्यां प्रकृति र्मातङ्गदारिकानन्दायेति, तावाहतुः। अनुज्ञाता भगवन्नुज्ञाता सुगतः। भगवानाह। तेन हि यूयं प्रकृतिमपहाय गच्छत स्वगृहम्।

अथ प्रकृतेर्मातङ्गदारिकाया माता पिता भगवतःपादौशिरसा वन्दित्वा भगवन्तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य भगवतोन्निकात् प्रक्रान्तौ।

अथ भगवान प्रकृतिं मोतङ्गदारिकामिदम वोचत। एहि त्वं भिक्षुणि चर ब्रह्मचर्यम्। एवमुक्ते प्रकृतिर्मातङ्गदारिका भगवता मुण्डा काषायप्रावृता।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

मातापितराविदम्	—	माता–पिता को यह
अवोचत	—	कहा
अनुज्ञाता	—	आज्ञा दे दी गई है

आनन्दाय इति	—	आनन्द के लिए
अपहाय	—	छोड़कर
गच्छत	—	जाओ
पादौ	—	पैरों में
वन्दित्वा	—	प्रणाम करके
त्रिः प्रदक्षिणी कृत्वा	—	तीन परिक्रमा करके
चर	—	पालन करो
मुण्डिता	—	मूण्ड दी गई
काषाय प्रावृत्ता	—	गेरुए रंग से

व्याख्या

इसके बाद भगवान् ने प्रकृति मातङ्गदारिका के माता–पिता को यह कहा, 'आज्ञा दो कि तुम दोनों के द्वारा आनन्द के लिए प्रकृति मातङ्गदारिका है। उन दोनों ने कहा — हे भगवान् हमने आज्ञा दी है। भगवान् ने कहा — तुम दोनों प्रकृति को यहां छोड़कर अपने घर चले जाओ।

इसके बाद चण्डाल कन्या प्रकृति के माता–पिता भगवान् के चरणों में सिर नवाकर भगवान् की तीन प्रदक्षिणा करके भगवान् के पास से चले गये। इसके बाद भगवान् ने मातङ्गदारिका प्रकृति को कहा — तुम भिक्षुणी बन जाओ, ब्रह्मचर्य की कल्पना करो।

इस प्रकार कहने पर चण्डाल कन्या प्रकृति ने अपना सिर मुण्डवा लिया और गेरुए वस्त्रों को धारण कर लिया।

अभ्यास कार्य

निम्नलिखित की सप्रसंग व्याख्या करें :–

1. एकास्मिन् समये भगवान् ..... दोह पास्यामि।
2. माते पुत्रि ..... प्रज्ञापय
3. अथ भगवान् ..... स्वगृहम्।

ग ग ग ग ग ग

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit
GDC, Samba.

वसन्त–वर्णनम्

(सुबन्धुविरचितवासवदत्ता)

मूल पाठ :–

अथैकदा तु विजृम्भमाणसहकारकोरकनिकुरुम्बनिपतित – मधुकरमालामदहुङ्कार– जनितपथिकसंज्वरः, कोमलमलयमारुतोद्भूतचूत प्रसवसरसास्वादकषायकण्ठ– कुहरितभरितसकलदिङ्मुखः, विकचकमलखण्डलीयमानमत्त कलहंस कुल–कोलाहलमुखरित कमल सरोवरः, परभृतनखकोटिपाटित – पाटलकुण्ड्मलविवरविनिर्गतमधु धारासार शीकरकणनिकरसमा रब्धदक्षिणसमीरबाणदुर्व्रणितपथिकवधूहृदयः, मधुमदमुदितकामिनी गण्डूषसीधुसेकपुलकितबकुलः, मदनरसपरवशविकासिनीतुलाकोटिविकटचटुल चरणाविन्दामन्दप्रहारहृष्टकङ्केलिशतः, प्रतिदिशमश्लीलप्रायगीयमान श्रवणोत्सुकषिङ्जनप्राय प्रारब्धचर्चरीगीताकर्णनमुह्यदनेकपथिकशतः, दुर्जन इव सतामरसः, दुष्कुल इव जातिहीनः, रावण इवापीतलोहितपलाश–शतसेवितः, महाश्रृङ्गारीव सुगन्धवहः, सुराजेव समृद्ध कुवलयः, वास्तविक इव वर्धितसुखाशः, सत्कवि काव्यबन्ध इवावद्धतु हीनः, सत्पुरुष इव दोषानुबन्धरहितः, कैवर्त इव बद्धराजीवोत्पलमालः, समृद्धका सारशकुनिसार्थ इव निन्दितमरुवकः, शक्र इवेन्द्राणीरुचितः, महावीर इवाधरीकृतदमनकः, पिङ्ग इवाम्लान सुभगो वसन्तकाल आजगाम।

कठिन शब्दों के अर्थ :–

दुष्कुलः	—	नीच कुल में पैदा होने वाला।
तामरसैः युक्त	—	लाल कमल।
सुराजा	—	अच्छा राजा
वास्तुकः	—	चतुर, नागरिक

शक्रः	—	देवताओं का राजा इन्द्र
महावीरः	—	महान पराक्रमी
षिङ्ग	—	व्यभिचारी
महाश्रृंगारी	—	खूब सजने वाली
सतामरसः	—	वसन्त पक्ष में
सुगन्धवहः	—	वसन्त पक्ष में
समृद्धकुवलयः	—	पूर्ण विकसित नील कमलों वाला
विवर्धितसुखाशः	—	(बर्फ आदि के हटने से) सुख की इच्छा को बढ़ाने वाला।
निन्दितमरुवकः	—	दौनामरुआ नामक शिशिर ऋतु में होने वाली सुगन्धित औषधि का तिरस्कार करने वाला।
इन्द्राणीरूचिरः	—	इन्द्र
अधरीकृतदमनकः	—	शिशिर ऋतु में उत्पन्न दमन लता
अम्लानसुभगः	—	मेहंदी की झाड़ियों से सुन्दर।

हिन्दी अनुवाद अर्थात् सप्रसंग व्याख्या :–

"वसन्तवर्णनम्" प्रस्तुत गद्यांश सुबन्धु द्वारा रचित "वासवदत्ता" नामक गद्य काव्य से लिया गया है।

प्रस्तुत पद्यांश में महामहिम सुबन्धु ने वसन्त ऋतु का अति मनोहर रूप से वर्णन किया है। इसके गद्यांश की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें श्लेषांकार में उपमालंकार का समायोजन बहुत ही सुन्दरता से किया गया है। वसन्त समय में आने वाली आम की मञ्जरियों का वर्णन और इन सब वसन्तऋतोपकर्षक वालों का मनुष्य के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन सब का वर्णन प्रस्तुत "वसन्त वर्णनम्" पाठ में किया गया है।

विकसित होते हुए आमों की मञ्जरियों के समूहों में गिरते हुए भौरों के समूह की, मद के कारण मधुर और अव्यक्त झन–झन की आवाज़ को झरने की डांटने से जिन परदेशी आदमियों को सन्ताप उत्पन्न किया जा रहा है। कोमल मलयाचल से आई दक्षिण पवन के द्वारा हिलाये हुए आम के बौरों के रस को चखने से मधुर, गले से युक्त कोयलों की कू–कू की आवाज़ से भरी हुई सभी दिशाओं वाला, खिले हुए कमलों के समूहों के छिपते हुए मस्त राजहंसों के झुण्डों के शोर से कोलाहलयुक्त, समस्त सरोवरों वाला, कोयलों के तेज़ नाखूनों और चोंचों के अग्रभागों से फाड़े हुए पादर के फूलों की कलियों के छेदों से बाहर निकलती हुई मीठे मरकन्द की धाराओं की वृष्टियों के कण–समूहों से

लिपटे हुए दक्षिण पवन रूपी कामदेव के हाथों से घायल वियोगिनी नारियों के दिलरूपी तार वाला, मदिरा के नशे से प्रसन्न नारियों के मुख रूपी कमलों से भरी हुई चुल्लियों की शराब के सिंचन से रोमांचित (पुष्पित) मौलसिरी के वृक्षों से युक्त, कामवासना के आनन्द से विवश सुन्दर नारियों के नुपुरों से सुन्दर एवं चंचल पैर रूपी कमलों के कोमल प्रहारों से पुष्पित सैंकड़ों अशोक वृक्षों से युक्त प्रत्येक दिशा में अत्यधिक भद्दी बातों को बोलने वाले, असभ्य मसखरों द्वारा गाए जाते हुए गीतों को सुनने के लिए उत्सुक कामी जनों द्वारा आरम्भ की गई हाथों से बजाई गई, तालियों के साथ गाए जाते हुए, गीतों की ताल ध्वनि को सुनने से अनेक विरहीजन मुर्च्छित हो रहे हैं।

दुर्जन की तरह लाल कमलों से युक्त या विहीन चमेली के फूलों से रहित राजा रावण के समान हल्के पीले और लाल रंग के सैंकड़ों नए पत्तों से भरा हुआ खूब सजने वाला छैला सुन्दर मलय पवन से युक्त अच्छे राजा के समान पूर्ण विकसित नील कमलों वाला नागरिक, चतुर, सभ्य, बर्फ आदि के हटने से फैले हुए सुन्दर आकाश और दिशाओं से युक्त अथवा सुख की इच्छा को बढ़ाने वाला, उत्कृष्ट कवि की काव्य रचना की तरह कमल नील, कमल तथा सात के फूलों को प्राप्त करने वाला तालपूर्ण तालाब में विद्यमान पक्षियों का समूह दौना, मरुआ नामक शिशिर ऋतु में होने वाली सुगन्धित औषधि का तिरस्कार करने वाला, इन्द्र के समान इन्द्रायन नामक वृक्ष के फलों से सुन्दर महापराक्रमी की तरह शिशिर ऋतु में उत्पन्न दमनलता अथवा दमन पुरुष का तिरस्कार करने वाला व्यभिचारी कामुक पुरुष मेहंदी की झाड़ियों से सुन्दर वसन्त का समय आ गया है।

प्रस्तुत गद्यांश में "दुर्जन इव सतामारसः" से लेकर "वसन्तकालः आजगाम" तक श्लेषानुप्राणित उपमालंकार के माध्यम से वसन्तकाल का वर्णन किया गया है। जहां अनेकार्थक पदों के प्रयोग से दो या अधिक अर्थ बताए जाते हैं वहां श्लेषालंकार होता है। जहां उपमेय, उपमान, वाचक शब्द और सामान्य धर्म ये चार तत्त्व होते हैं, वहां पूर्णोपमालंकार होता है। यदि यह उपमा श्लेष से उत्पन्न अथवा अनुप्राणित होती है तो यह श्लेषानुप्राणित उपमा कहलाती है।

ग ग ग ग ग ग

Dr. Pratiba
Department of Sanskrit
University of Jammu.

संस्कृत गद्यशैली की विशेषताएँ

संस्कृत गद्यवाङ्मय वैदिकाल से ही प्राप्त होता है। उसके आदि, मध्य और अवम तीनों रूप हमारे सामने हैं। अथर्ववेद और तैत्तिरीय संहिता में प्राचीनतम गद्य उपलब्ध है, कृष्ण यजुर्वेद ब्राह्मणों तथा आरण्यकों में गद्य का मध्यरूप प्राप्त होता है। गद्य विधान में परिष्करण और परिपक्वता के फलस्वरूप उपनिषदों और सूत्रों की रचना हुई है जिनकी विशिष्टता सूक्ष्म और संक्षिप्त गद्य शैली लेकर है। उनमें वैदिक गद्य का अन्तिम रूप निखरा है।

वैदिकाल के गद्य की विशेषताएँ

वैदिकाल में ही ऋग्वेद की भारती पद्य का आहार्य प्रसाधन सजा कर सामने आती है और गद्य का विकास याजुष मन्त्रों से सर्वप्रथम दिखलाई पड़ता है। सूत्रकाल से होती हुई संस्कृत गद्य की वैचारिक धारा पतंजलि के महाभाष्य और शबर के मीमांसा भाष्य में बहती दिखाई पड़ती है और इसका चरम परिपाक शङ्कर के शारीरिक भाष्य में मिलता है। शङ्कर के बाद संस्कृत का दार्शनिक गद्य अत्यधिक कृत्रिम शैली का आश्रय लेने लगा था, जिसका एक रूप वास्पतिमिश्र, श्रीहर्ष और चित्सुखाचार्य आदि के वेदान्त प्रबन्धों में और जगदीश और मथुरानाथ के नव्य नैयायिक शैली के बाद ग्रन्थों में मिलता है। साहित्यिक के लिए भी हम दो तरह की शैलियां पाते हैं। एक गद्य की **नैसर्गिक सरल शैली** दूसरी **कृत्रिम अलङ्कृत शैली**। नैसर्गिक सरल शैली का रूप सर्वप्रथम हमें पंचतन्त्र में मिलता है और बाद में इस प्रकार के नीतिवादी कथा साहित्य का मार्ग बना रहा है। पंचतन्त्र की शैली ही हमें शुकसप्तति सिंहासनद्वात्रिशत्पुत्तलिका, बेतालपंचविंशतिका, भोजप्रबन्ध, पुरुष परीक्षा में दिखाई पड़ती है। अलङ्कृत गद्यशैली का रूप हमें सुबन्धु दण्डी और बाण में और बाद के गद्यकाव्यों तथा चम्पूकाव्यों में उपलब्ध होता है।

लोककथाओं का आरम्भ हम ऋग्वेद और ब्राह्मणों आरव्यानों में ही ढूंढ सकते है। ऋग्वेद के यमयमी संवाद, उर्वशी पुरूरवा संवाद आदि आरव्यानों के ही संवादात्मक रूप है। शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ऐसे कई आरव्यान मिल सकते है। लोककथाओं का संग्रह हमें महाभारत में मिलता हैं जिसे अनेक उपारव्यानें का सुन्दर वन कहा गया है। मानव का सच्चा रूप हमें इनसे कहीं अधिक मिलता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों के गद्य की विशेषताएँ

ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिकमन्त्रों की व्याख्या एवं यज्ञ क्रिया सम्बन्धी अनेक क्लिष्ट और अस्पष्ट शब्दों की व्युत्पत्तियां

भी दी गई हैं। इसके अतिरिक्त प्रसंगवश ही अनेक परम्परा प्राप्त प्राचीन आख्यानों का वर्णन है। यह सभी कार्य गद्य में उपलब्ध होता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में एक विशेष प्रकार की गद्यशैली के दर्शन होते है। अनेक स्थानों पर इनके वाक्य उपवाक्यों से बिना सम्बन्धवाचक शब्दों के जुड़े होने के कारण उबा देने वाले होते हैं किन्तु प्रायः भाषा सीधी सादी और अकृत्रिम है। आख्यानों में वक्ता में वक्तव्य को प्रायः उसी के शब्दों में रखा गया हैं। अतः वर्णनों में संवादों का सा आनन्द उपलब्ध होता है। भाषा बोलचाल जैसी ही है अतः 'ह' 'वाव' 'वै' 'खलु' आदि अव्ययों का बहुत अधिक प्रयोग है। सामान्यतः अलङ्करण का पूर्ण अभाव भी नहीं है। कभी कभी 'ह' 'वै' 'नु' '3' जैसे अव्यय केवल अलङ्कार स्वरूप प्रयुक्त हुए है। यज्ञ क्रियाओं के स्पष्टीकरण के लिए उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का भी सहारा लिया गया है। वाक्य प्रायः छोटे छोटे हैं और समास रहित हैं।

ब्राह्मणों में भी कालक्रम की दृष्टि से भाषा और शैली के पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती रूप उपलब्ध होते हैं। जहाँ पूर्ववर्ती ब्राह्मणों में छोटे छोटे वाक्य उपलब्ध होते हैं वहाँ उत्तरवर्ती ब्राह्मणों में लम्बे लम्बे वाक्य और अनुरूप सम्बन्ध वाचक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

उपनिषदों की गद्य की विशेषताएँ

उपनिषदों के गद्य में यद्यपि ब्राह्मणों के गद्य जैसी सरलता है किन्तु उतना रूखापन नहीं है। इसकी अपेक्षा यह अधिक मनोरम और जीवन्त है। इसका कारण सम्भवतः इसका प्रतिपाद्य विषय है जिसमें ऋषियों के कुतूहल को साकार रूप प्राप्त हुआ है। सामान्यरूप से देखने पर इसमें लम्बे समासों का अभाव है, क्रियापदों का प्रचुर प्रयोग है और पदों की आकर्षक पुनरूक्ति है।

लौकिक संस्कृत का सम्पूर्ण गद्य वाङ्मय दो भागों में विभक्त किया जा सकता है – 1. अनलङ्कृत गद्य जिसका प्रयोग व्याकरण वैद्यक, नीतिशास्त्र और दर्शन आदि शास्त्रीय विषयों के विवेचन के लिए हुआ है। 2. अलङ्कृत गद्य जिसका प्रयोग नाटक चम्पू एवं गद्य काव्यों में हुआ है।

अनलङ्कृत गद्य की विशेषताएँ

अनलङ्कृत गद्य का प्राचीनतम रूप हमें पतंजलि के महाभाष्य में दृष्टिगोचर होता है। पतंजलि ने व्याकरण जैसे नीरस विषय को भी उक्ति प्रत्युक्ति की शैली द्वारा सरस और आकर्षक बना दिया है। पतंजलि की भाषा उस काल के शिष्टजनों की भाषा थी। उसमें आडम्बर और अलङ्करण का तनिक भी प्रयास नहीं है। न उसमें पाणिनि जैसा संक्षेपीकरण है न समासबहुलता। सीधी सादी भाषा में भावों की सरल अभिव्यक्ति है। षड्दर्शनों के सूत्रग्रन्थों पर लिखे गये टीका ग्रन्थों में गम्भीरता के साथ साथ स्पष्टता है। शैली विवेचनात्मक और तर्कप्रवण है। वाक्य सार गर्भित और प्रौढ़ है। दार्शनिक क्षेत्र में भी गद्य का आरम्भ यद्यपि सरलता और स्पष्टता से हुआ, इसका विकास क्लिष्टता और समासबहुलता में हुआ। 12वीं शताब्दी में गङ्गश द्वारा प्रवृत्त नव्य न्याय ने दार्शनिक क्लिष्ट और समास बहुलशैली को चरम सीमा पर पहुॅचा दिया जहॉ पाठक शब्दजाल मे फंस कर मूलअभिप्राय से दूर हो जाता है।

अलङ्कृत गद्य की विशेषताएँ

इस प्रकार के गद्य की विशेषता समास बहुलता और आरव्यातों का अत्यल्प प्रयोग है। विष्णु पुराण का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

ततः सकलजगनाहाततरूमूलभूतो भूतातीतभविष्यादिसकलसुरासुरमुतिमनुजमनसामप्यगोचरोब्जभवनप्रमुरवैरनलप्रमुखैश्च – –। 15/14

संस्कृतगद्य का विकसितरूप दण्डी सुबन्धु तथा बाण के काव्यों में प्राप्त होता है।

अलङ्कृत गद्य की पहली महत्वपूर्ण प्रशस्ति महाक्षत्रप रुद्रदामन् के गिरनार के शिलालेख में उपलब्ध होती है। इसके गद्यांशों की शैली बाण और सुबन्धु की शैली से बहुत कुछ मिलती है। दण्डी ने कहा था – 'ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्' काव्यादर्श। यही लक्षण इस लेख में पूर्णतः घटित होता है। अनुप्रास तथा अन्य अलङ्कारों का भी इसमें प्रचुर प्रयोग है। सुबन्धु और बाण की भान्ति क्रियापदों का प्रयोग हुआ है। अन्य शिलालेखों में भी प्रायः यही विशेषताएँ हैं।

शिलालेखों के पश्चात् गद्य काव्य का विकास दण्डी, बाण तथा सुबन्धु की कृतियों में देखा जा सकता है।

सुबन्धु के गद्यकाव्य की विशेषताएँ

गद्य काव्यों के लेखकों में सुबन्धु का स्थान सर्वप्रथम है। इनका ग्रन्थ वासवदत्ता अलङ्कृति शैली में निबद्ध गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। वासवदत्ता उन गद्य काव्यों का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें कथानक नितान्त स्वल्प रहता हैं तथा वर्णन प्रचुर मात्रा में रहता है। स्वल्प कथावृत्त को कवि ने अपने कलाकौशल से खूब अलङ्कृत और चमत्कृत बनाया है। सुजनैकबन्धु सुबन्धु ने सरस्वती की कृपा से वर प्राप्त किया था और तभी वे प्रत्यक्षर श्लेषमय प्रपंच विन्यास वैदग्ध निधिप्रबन्ध के बनाने में समर्थ हुए थे। उनकी इस प्रतिज्ञा के अनुसार उनका काव्य सचमुच प्रत्यक्षर में श्लेषमण्डित है। यहाँ सभङ्ग और अभङ्ग उभय प्रकार के श्लेषों की मानों बाढ़ सी आ गई है। विरोधाभास, उपमा, तथा उत्प्रेक्षा की कमी नहीं है पर श्लोक का विन्यास ही सुबन्धु की निजी विशिष्टता है। महाराज चिन्तामणि का यह वर्णन बड़ा सुचारू तथा रूचिर है –

''नन्दगोप इव यशोदयान्वितः, जरासन्ध इव घटित सन्धिविग्रहः, भार्गव इव सदा नभोगः दशरथ इव सुमित्रोपेतः सुमन्त्राधिष्ठितश्च, दिलीप इव सुदक्षिणयान्वितः रक्षितगुश्च राम इव कुशलववयोरूपोच्छ्रायः।''

सुबन्धु की यह प्रसन्नमयी वाणी आलोचकों के लिए नितान्त आह्लादजनक है –

विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वान्सः।

यदयं नकुलद्वेषी स कुलद्वेषी पुनः पिशुनः।।

विद्वानों का कथन झूठा नहीं है कि खल विषधर सर्प से भी अत्यन्त विषम होता है। देखिए, विषधर तो केवल 'नकुलद्वेषी'

ही होता है अर्थात् वह (नकुल) से ही द्वेष करता है (परन्तु न + कुलद्वेषी) वह अपने वह तो अपने कुल से भी द्वेष तथा विरोध करता है। इस पद्य का प्राण है– नकुलद्वेषी पद जो सुभग सभङ्ग के कारण नितान्त सरस तथा सरल है।

वस्तुतः सुबन्धु के काव्य में कलापक्ष का ही साम्राज्य है उनकी यह वासवदत्ता उस विशाल सुसज्जित प्रासाद के समान है जिसका प्रत्येक कक्ष चित्रों से भूषित है तथा अलङ्कारों के प्राचुर्य से जो दर्शकों की आँखों को हमेशा चकाचौंधँ किया करता है।

सुबन्धु का श्लेषप्रेम मात्रा को पार कर गया है। अनेक स्थलों पर श्लेष की प्रसन्नता तिरोहित हो गई है। श्लेष सरल तथा अक्लिष्ट होना चाहिए परन्तु दुर्भाग्यवश श्लेषानुरक्ति ने कवि को इस आदर्श से वचिंत कर दिया है। सुबन्धु के श्लेष कहीं कहीं बहुत अधिक जटिल तथा दुर्बोध हो गये हैं। रसास्वादन कठिन हो गया है। सुबन्धु में दण्डी के हास और वैचित्र्य तथा बाण की कल्पना शक्ति दोनों का अभाव है। चित्रकाव्य की रचना मे वे रमणीयता को भूल गये हैं। कहीं कहीं अवश्य छोटे छोटे वाक्य का प्रयोग हुआ है। विशेषकर संवादों में। ऐसे स्थलप्रसादगुण युक्त हैं। अनुप्रास बहुलता के कारण उनकी भाषा में स्वरमाधुर्य और संगीत है।

बाण ने सुबन्धु की इस प्रकार प्रशंसा की है –

प्रतिकविभेदनवाणः कवितातरूगहनविहरणमयूरः।

सहृदयलोकबन्धुर्जयति श्रीमद्बाणकविराजः।।

बाणभट्ट के गद्य शैली की विशेषताएँ

बाण की गद्य शैली तीन प्रकार की है– एक दीर्घ समास वाली दूसरी अल्प समास युक्त, तीसरी समास रहित। बाण ने एक चतुर शिल्पी की भान्ति इन शैलियों को अदल बदल कर अपने काव्य में सजाया है। जिससे उनके वर्णन बोझिल बनकर पाठक के मन को आक्रान्त न कर दे। उनकी रीति है कि समास बहुल शैली के बाद फिर ढील छोड़ देते हैं। प्रचण्ड निदाघकाल, उसमें चलने वाली गरम लू और वनों को जलाती हुई दावाग्नि के वर्णन में इस शैली की अच्छी झाँकी मिलती है। कभी कभी एक ही वर्णन में शब्दाडम्बर पूर्ण शैली से प्रारम्भ करके समासरहित शैली को आदर्शमाना है। उसमें पदों की सुन्दर रचना थी और उसकी शैली या रीति भी मनोहर थी।

बाण के गद्य मे सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति चमत्कृत वर्णन प्रणाली अक्षय शब्दराशि तथा कल्पना प्रसूत मौलिक अर्थोंकी उद्भावना विशेषरूप से पाई जाती है। उनके गद्य में इतना प्रभाव तथा प्रवाह है कि अनुकरण करने वाले कवियों के लाख प्रयत्न करने पर भी उनके गद्य में इतना चमत्कार उत्पन्न नहीं हो पाता। बाण की शैली पांचाली का प्राण है– वर्ण्यविषय के अनुरूप पदों का विन्यास जैसा अर्थ वैसा शब्द। यदि 'वर्ण्य विषय घनघोर अरण्यानी है तो कवि की वाणी उत्कट पदावली से मण्डित है। यदि कामिनी के रूपलावण्य का चित्रण है तो कवि का पदविन्यास नितान्त ललित तथा कमनीय है। शब्द के ऊपर अखण्ड साम्राज्य बाण की अन्यतम विशिष्टता है। जो वस्तु एक बार कह दी गई या पद प्रयोग हो गया सो हो गया । फिर उसके पुनः दोहराने की कहीं आवश्यकता ही नहीं। वस्तुतः बाणभट्ट के वर्णन में स्निग्धता है, रूचिरता है, सुगढ़ चिक्कणता है। कादम्बरी तो उस बगीचे के समान है जिसका प्रत्येक अवयव प्रत्येक वस्तु कवि

के द्वारा खूब सजाई गई है, जिसके सुन्दर गुलदस्तों की बहार अपने रंग से तथा अपनी महक से पाठकों का हृदय अपनी ओर बलात् खींच लेती है।

बाण का शब्द भण्डार अपार है। एक ही अर्थ को व्यक्त करने वाले अनेक शब्दों का प्रयोग वे करते है किन्तु शब्दों से व्यक्त होने वाली ध्वनि के सूक्ष्म अन्तर को वे पहचानते हैं और इस प्रकार उनका प्रयोग करते है कि वे अपने अर्थ परिवेश के अनुरूप हों। उन्होंने मणिरचित मेखलाओं के शब्द के लिए 'झङ्कार' शब्द का, कलहंसी के शब्द के लिए 'कोलाहल' शब्द का, काँसे के घिसने के लिए क्रेंकार शब्द का, भ्रमरों की ध्वनि के लिए हुँकृत शब्द का और बाजूबन्दों के किनारों से टकराने पर मणिरचित स्तम्भों के बजने के लिए 'रणित' शब्द का प्रयोग किया है।

संक्षेप में बाण ने भावों के क्षेत्र में हृदय का हर कोना छान डाला है, कल्पना के क्षेत्र में विश्व का हर छोर प्रतिबिम्बित कर दिया हैं और भाषा के क्षेत्र में शब्दकोष के हर शब्द का सूक्ष्म ध्वन्यात्मक विवेक के साथ उन्होंने क्रीडा की है तो उसकी गहराइयों में भी प्रवेश किया है। उनमें एक ओर सच्चा काव्य है तो दूसरी ओर पूरी साज सज्जा के साथ काव्यकला भी है। हर दृष्टि से उनका काव्य पूर्ण है।

दण्डी के गद्य शैली की विशेषताएँ

दण्डी सुभग एवं मनोरम वैदर्भी गद्य शैली के आचार्य हैं। उनकी वर्णन प्रणाली सरल और प्रासादिक है। संस्कृत गद्य के परिष्कृत प्रयोग में महाकवि दण्डी सिद्धहस्त हैं। शब्दाडम्बर एवं अलङ्कार बहुलता की कृत्रिमता से बच कर दण्डी ने सरल प्रभावपूर्ण, प्रांजल, मुहावरेदार, सरल किन्तु ललित भाषा का प्रयोग करके अत्यन्त सुन्दर एवं व्यावहारिक संस्कृत का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसलिए अधिकांश आलोचकों ने दण्डी को अत्यन्त मनोरम एवं ललित वैदर्भी रीति का आचार्य माना है। गद्यकाव्य के इतिहास में शैली की दृष्टि से आचार्य दण्डी का अपना निजी मार्ग है। सुबन्धु की शैली 'प्रत्यक्षरश्लेषमय' थी बाण ने समास बहुल पांचाली रीति का आश्रय लिया किन्तु दण्डी की वैदर्भी रीति इन दोनों कवियों से भिन्न है जिसमें स्पष्ट अर्थवक्ता, सुन्दर रसाभिव्यक्ति, दैनन्दिन प्रयोग क्षमता एवं पदों का सुन्दर विन्यास अनिर्वचनीय है। अपने वर्ण्य विषय एवं कथ्य के अनुरूप दण्डी की शैली का स्तर भी परिवर्तित होता चलता है।

शैली की सरलता के सदृश ही दण्डी को भाषा पर भी अद्भुत अधिकार था। कथा के वर्णन में वे सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग करते हैं और पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन में भी 'भाषा की जटिलता और विस्तार के दोष को सावधानी से दूर रखते हैं। दण्डी की सरल भाषा एवं हृद्य शैली के एकाधिक उदाहरण अनुपयुक्त न होगें। षष्ठ उच्छ्वास की धूमिनी कथा में भयङ्कर अकाल का एक दृश्य द्रष्टव्य है –

क्षीणसारं सस्यम्, ओषधयो वन्ध्याः, न फलवन्तो वनस्पतयः, क्लीबा मेघाः, भिन्नस्रोतसः स्रवन्त्यः, पंकशेषाणि पल्वलानि, निर्नि– स्यन्दान्युत्समण्डलानि, विरलीभूतं कन्दमूलफलम् ————।

दण्डी ने अपने गद्यकाव्य को अलङ्कारों से सायास नहीं सजाया है, वे तो स्वतः ही भाषा शैली के प्रवाह में यथास्थान सन्निवेशित हो गये है। यमक अलङ्कार की यह सुन्दर छटा दर्शनीय एवं अभिराम है –

'कुमारा मारामिरामा रामाद्यपौरूषा रूषा भस्मीकृतारयो' रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः।

इसी प्रकार राजा राजहंस का वर्ण ह्रद्य अनुप्रास अलङ्कार का सुन्दर उदाहरण है।

दशकुमारचरित के कथानक की नूतनसृष्टि चरित्र चित्रण की सहजता तथा शैली की भावप्रवणता एवं माधुर्य से महाकवि दण्डी का विविध ज्ञान, पाण्डित्य एवं बहुपक्षीय लोकानुभव स्वतः ही प्रकट हो जाता है। विविध घटनाओं के विन्यास एवं वर्णन से प्रगट होता हुआ दण्डी का राजनीति पाण्डित्य, कामशास्त्र के गूढ़ तथ्यों का अनुशीलन तथा चौरशास्त्र का अद्भुतज्ञान पाठक को चमत्कृत कर देता है।

अम्बिकादत्तव्यास के गद्य की विशेषताएँ

अम्बिकादत्तव्यास का प्रमुखग्रन्थ शिवराजविजय नामक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस शिवराजविजय में भाषा उत्तमोत्तम ओजस्विनी, अर्थपूर्ण, सुबोध्य यथास्थान यथावसर उद्दाम तथा कोमल भी है। नवों रस भी इसमें दक्षता के साथ स्थापित हैं। वीररस जिसका अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में प्रायः अभाव ही है, वह इस ग्रन्थ में प्रधान हैं, श्रृंगार भी है तो सर्वथा सात्विक, सुश्लील, कोमल, प्रीतिरूप, कहीं भी अश्लीलता आने नहीं पाई है। युद्धों के प्रसङ्ग में रौद्र, भयानक, बीभत्स, और वीर रस का प्रयोग बड़ी सुन्दरता के साथ हुआ है। राजनीति, चारचातुर्य और रणकौशल का भी निरूपण बहुत सुन्दर है।

अम्बिकादत्तव्यास की लेखनी से प्रस्फुटित शब्दचित्रों का अङ्कन अत्यन्त श्लाघ्य है। पढ़ते पढ़ते ही नेत्रों के समक्ष तत्रालिखित दृश्य का चित्र उपस्थित हो जाता है, यथा –

"धीरसमीरस्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनी —— सुधाधारमिव वर्षति गगने।"

इस प्रकार निष्कर्षतः गद्यकाव्य का मूल प्रायः लोककथाएँ हैं। इन लोककथाओं के सरल और प्रवाहयुक्त आख्यानों पर कल्पना और पाण्डित्य का गहरा रंग चढाया गया है। कथा भाग गौण हो गया है और अलङ्कृत वर्णन शैली ही प्रधान हो गई है। गद्यकाव्यों के व्यापक प्रभाव के कारण संस्कृत में व्यावहारिक गद्यशैली का विकास बहुत कम देख पड़ता है।

संस्कृत के गद्य काव्य यह सिद्ध करते है कि कविता के लिए छन्द अनिवार्य नहीं है, छन्दोबद्धता तो उसका केवल एक बाह्य परिच्छेद है। गद्य और पद्य दोनों में समानरूप से कविता की रचना हो सकती है। यही कारण है कि संस्कृत गद्यकाव्य सहृदयों के हृदय में वास्तविक काव्यानन्द का संचार करते हैं। वास्तव में यदि भाषासौष्ठव वर्णननैपुण्य, कल्पनावैचित्र्य, रसास्वाद, पदलालित्य, श्लेषचातुर्य और अलंकार वैभव इन समस्त काव्यात्मक गुणों का एकत्र अवलोकन करना हो तो संस्कृत के गद्यकाव्य ही अनुशीलन करने योग्य हैं। ऐसी अलङ्कृत, उदात्त एवं परिष्कृत गद्य शैली का विकास शायद ही किसी अन्य भाषा के साहित्य में हुआ हो।।

******

Dr. Pratiba
Department of Sanskrit
University of Jammu.

संस्कृत गद्यकाव्य तथा शैली का आरम्भ तथा विकास

पद्य की अपेक्षा गद्य काव्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि मनुष्य स्वाभाविकरूप से गद्यात्मक भाषा में ही विचार और व्यवहार करता है उसमें छन्द, गण, मात्रा आदि की गणना का कोई बन्धन या दिखावट नहीं होती इसलिए निश्चितरूप से गद्य काव्य तथा शैली का आरम्भ सर्वप्रथम हुआ। 'गद्य' शब्द 'गद्–व्यक्तायां वाचि' धातु से यत् प्रत्यय लगकर बना जिसका अर्थ है– मानव की अभिव्यक्ति की मौलिक प्रक्रिया।

बहुत समय तक संस्कृत गद्य अपने मौलिक और विकासात्मक रूप में प्रचलित रहा किन्तु ईस्वी सन् के आरम्भ में इसका एक काव्यात्मक रूप भी प्रकट हुआ जिसमें पद्यकाव्य की प्रमुख विशिष्टताएँ आ गई जैसे अलङ्कार, भाषा की सजावट, लम्बे समासों का प्रयोग, भाव और रस का चमत्कार आदि। इसे सामान्य गद्य नहीं अपितु गद्यकाव्य कहा गया। दण्डी ने काव्यादर्श में 'गद्यकाव्य' की परिभाषा देकर इसे आख्यायिका और कथा के रूप में विभाजित किया –

अपादः पदसन्तानो गद्यमारव्यायिका कथा –(1/23) यह गद्यकाव्य इतना कठिन और विरल हो गया कि आठवीं शताब्दी ई० में एक उक्ति चल पड़ी– गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति अर्थात् गद्यकाव्य लिखना कवियों की कड़ी परीक्षा हैं क्योंकि पद्य में अल्प चमत्कार होने पर भी पद्य में सौन्दर्य का बोध होता है जब कि गद्य में सौन्दर्य लाने के लिए कठिन श्रम करना पड़ता है। संस्कृत गद्य के अलङ्कृत रूप ने सभी भाषाओं के गद्य के रूपों को पीछे छोड़ दिया किन्तु यह अलङ्कृत रूप अचानक ही नहीं आया। इसमें काफी समय लग गया।

वैदिक संहिताओं में हमें गद्य के प्रथम दर्शन मिलते हैं। कृष्णयजुर्वेद, ब्राह्मण, तथा उपनिषद् आदि वैदिक साहित्य में हमें गद्य की परम्परा प्राप्त होती है। जिसका सम्वर्धन तथा विकास महाभारतकाल में भी होता रहा। यजुर्वेद की परिभाषा ही दी गई थी– अनियताक्षरावसानं यजुः तथा गद्यात्मकं यजुः अर्थात् वाक्य में आने वाले शब्दों की सीमा जहाँ न हो वे वैदिक मन्त्र यजुष् कहे जाते थे। ऋक् तथा साम पद्यात्मक हैं किन्तु यजुर्वेद विपुलांश में गद्यात्मक है। अथर्ववेद में भी गद्य का प्रचुर प्रयोग है। यजुर्वेद के लम्बे गद्यमन्त्रों मे वाक्य को ढूढ़ँने के लिए जैमिनि को वाक्य की परिभाषा देनी पड़ी थी। अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकांक्ष चेद् विभागे स्यात् (मीमांसासू० 2/1/46) अर्थात् जिन पदों का सामूहिक रूप से एकात्मक अर्थ हो और विभाजित रूप में जो साकांक्ष पद हों उनमें एकवाक्यता होती है। इस प्रकार गद्य की व्यवस्था की गई थी। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, कठ और मैत्रायणी संहिताएँ अधिकांशत गद्यात्मक हैं। शुक्ल यजुर्वेद के भी कुछ

अध्याय 24,39 पूर्णतः गद्य में है। अन्य अध्यायों में भी बहुत से महामन्त्र हैं। अथर्ववेद के कई सूक्त जैसे 4/39, 5/6, 9,10,16,24,6/46 काण्ड 15 तथा 16 इत्यादि गद्यात्मक हैं। मन्त्रात्मक गद्य में वाक्यों का लाघव, भाव की स्पष्टता तथा वाक्यालंकाररूप निपातों का अभाव विशेषरूप से ध्यातव्य है। जैसे –

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिगृहे वसति।।
ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्धे।।2।।
तद् यस्यैव विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति।।3।।
येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनाव रुन्धे।। 4

अथर्व० 15/13/1–4

संहितेतर वैदिक गद्य में भाषा तेा यथापूर्व सरल थी किन्तु वाक्यालंकार के रूप में नु, ह, वै, 3 इत्यादि निपातों का प्रचुर प्रयोग होने लगा। ब्राह्मण तथा आरण्यक इस विशिष्टता से युक्त है। उपनिषदों के गद्य में भी लालित्य का समावेश हुआ जो साहित्य गद्य के विकास में गणनीय बना। यहां ऐतरेय ब्राह्मण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान का गद्य का उदाहरण दिया जा रहा है जिसमें निपातों का प्रचुर प्रयोग है किन्तु भाषा बड़ी सहज तथा प्रांजल है।

तस्य ह दन्ताः पुनर्जज्ञिरे। तं होवाच– अज्ञत वा अस्य पुनर्दन्ता यजस्व माऽनेनेति। सहोवाच–यदा वै क्षत्रियः सांनाहु को भवत्यथ स मेध्यो भवति। संनाह नु प्राप्नोत्वथ त्वा यजा इति। ऐoब्राo33/2

उपनिषद् वाक्यों की प्रांजलता तथा प्रवाह का उदाहरण भी द्रष्टव्य है–

'भृगुर्वै वारूणिः वरूणं पितरमुपससार– अधीहि भगवों ब्रह्मेति। तस्मा एतत् प्रोवाच– अत्र प्राणं चक्षुः श्रोत्र मनो वाचमिति तं होवाच यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति। तैoउo 3/1

इसमें ब्रह्म जैसे गम्भीर विषय का उपस्थापनं वरूण अपने पुत्र मृगु के समक्ष सरलतम भाषा में करते हैं। इस उपनिषद् के शान्तिपाठ में भी वाक्य विन्यास की सरलता तथा भाव गाम्भीर्य अनुपम है। इस शैली को ही आगे चलकर मुक्तक गद्य नाम दिया गया है। और भी ––––

नमो ब्राह्मणे, नमस्ते वायो

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि।

ऋृतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि

तन्मावतु, तद्वक्तारभवतु

अवतु माम् अवतु वक्तारम्। प्रथम अनुवाक

सत्यान्न प्रमदितव्यम्, धर्मान्न प्रमदितव्यम्

कुशलान्न प्रमदितव्यम्, भूत्यै न प्रमदितव्यम्

स्वाध्यायवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् (तै० उ० दशम अनुवाक)

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव। तै०उ० दशम अनुवाक

छान्दोग्य उपनिषद् में–

यत्र नान्यत–पश्यति नान्यत्शृणोति नान्यद् विजानाति तद् भूमा। अभयत्रान्त्पश्यति अनयत्शृणोति अन्यद् विजानाति तदल्पं यो वै भूमातदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्। छा०उ० 7/24

वेदाङ्ग साहित्य में भी गद्य के प्रयोग का सुन्दर दृष्टान्त मिलता है। सूत्र ग्रन्थों में छोटे वाक्यों में प्रमेय बहुल गद्य तथा निरूक्त में प्रवाहपूर्ण शास्त्रीय गद्य का प्रयोग हुआ है। सूत्रों में कल्पसूत्र और व्याकरण के सूत्र है जिन्हें प्रकरण के द्वारा समझा जाता है। निरूक्त में विषयवस्तु का स्पष्टीकरण कहीं सूत्रशैली में है तो कही भाष्यशैली में। तद्यथा सूत्रशैली में – 'भावप्रधानमाख्यातं सत्वप्रधानानिं नामानि नि० 1/1 उदाहरण द्रष्टव्य है।

तथा भाष्य शैली वार्तालापकी भाषा में है– जैसे नरकं न्यरकम् नीचैर्गमनम्। नास्मिन् रमणं स्थानमल्पमप्यस्तीति वा निरूक्त (1/11)

प्रायः 200ई० पू० में पौराणिक, शास्त्रीय तथा साहित्यिक ये तीन प्रकार के गद्य प्रचार में थे। पौराणिक गद्य का प्रयोग प्राचीन आख्यानों सृष्टिविषयक वृत्तान्तों तथा अन्य पौराणिक विषयों के निरूपणार्थ किया गया था। आगे चलकर यही गद्य महाभारत, भागवतपुराण, विष्णुपुराण आदि में संकलित हुआ। वैदिक गद्य के समान इसमें एक ओर लघुबन्धा का एवं आर्षरूपों का प्रयोग था तो दूसरी ओर संस्कृत के साहित्यिक गद्य की प्रसादमयी अलङ्कृत शैली भी इसमें विद्यमान थी। यहाँ भी महाभारत के गद्य की अपेक्षा पुराणों में अलङ्करण की प्रवृत्ति अधिक है।

महाभारत के शान्तिपर्व (अ० 342) का एक गद्यवाक्य है – तस्येदानीं तमसः सम्भवस्य पुरुषस्य ब्रह्मयोनेर्ब्रह्मणः प्रादुर्भवि स पुरुषः प्रजाः सिसृक्षमाणो नेत्राभ्यामग्नीषोमौ ससर्ज।

दूसरी ओर विष्णुपुराण की प्रसादिकता द्रष्टव्य है–

''यथैव व्योम्नि वन्हि पिराडोपमं त्वामहपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्ष्यामीत्युक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्य एकान्तेन्यस्तम्।''

शास्त्रीय गद्य की आधारशिला एक प्रकार से निरूक्त में रखी जा चुकी थी। इसका संबन्ध गम्भीर चिन्तन और विषय विश्लेषण से था। दर्शनशास्त्रों के सूत्र इसी गद्य प्रकार में विकसित हुए। पंतजलि का महाभाष्य, शबरस्वामी

का शाबर भाष्य (मीमांसा दर्शन पर) शकंराचार्य का शारीरिक भाष्य ब्रह्मसूत्र पर इत्यादि उत्कृष्ट शास्त्रीय गद्य के रूप हैं। इन भाष्यों में वाक्यरचना का उतरोत्तर विकास होता गया। पतंजलिके महाभाष्य में गद्य की रमणीयता कथनोपकथन शैली से अभिव्यक्त हुई है। तद्यथा–

ये पुनः कार्याभावा निवृतौ तावत् तेषां यत्नः क्रियते। तद् यथा घटेन कार्य करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह–

कुरू घटं कार्यमनेन करिष्यामीति।।

लघुकायवाक्यों के कारण भी महाभाष्य की संवादशैली प्रसिद्ध हुई–

किं पुनराकृतिः पदार्थ आहोस्विद् द्रव्यम्। उभयमित्याह। कथंज्ञायते। उभयथा ह्याचार्येण सूत्राणि पठितानि(पस्पशाह्निक) शाबरभाष्य में भी भाषा की भाषा की प्रांजलता एवं पदविन्यास कीछटा दर्शनीय है–

लोके येष्वर्थेषु प्रसिद्धानि पदानि, तानि सन्ति सम्भवे तदथन्यिेव सूत्रेष्वित्यवगन्तव्यम्–––––––एवं वेदवाक्यान्येवैभि व्याख्यायन्ते, इतरथा वेदवाक्यानि व्याख्येयानि स्वपदार्थाश्च व्याख्येयाः इति प्रयत्न गौरवं प्रसज्येत। मीॉ० भा० 1/1/1

प्रौढ़ मीमांसक शबरस्वामी ने अपने भाष्य में सीधी सादी व्यासशैली का प्रयोग किया है तो शंकराचार्य ने अपने भाष्यों में प्रौढ़ एवं प्रांजल गद्य का प्रयोग किया है। शङ्कराचार्य का गद्य माधुर्य तथा प्रसादगुण सम्पन्न है अतः उसमें साहित्यिकता के दर्शन होते हैं। यथा –

'नहि पद्भ्यां पलायितुं पारयमाणो जानुभ्यां रंहितुमर्हति।।'

अर्थात् पैसे से भागने में समर्थ को घुटनों से रेंगना उचित नहीं। यत्र तत्र सुन्दर लोकोक्तियों एवं तर्कपूर्ण प्रतिपादन से शङ्कराचार्य का गद्य शास्त्रीय गद्य का सुन्दर निदर्शन बन गया है। यथा –

नन्विहापि तदेवोपन्यस्तं जन्मादिसूत्रे, न वेदान्तवाक्य कुसुमग्रथनार्थत्वात् सूत्राणाम्। वेदान्तवाक्यानि हि सूत्रैरूदाहृत्य विचार्यन्ते। वाक्यार्थविचारणाध्यवसान निवर्श्ता ब्रह्मावगतिः, नानुमानादि प्रमाणान्तरनिर्वृत्ता (1/1/2)

किन्तु परवर्ती दर्शनग्रन्थों विशेषतया नव्यन्यायशास्त्र ग्रन्थों का शास्त्रीय गद्य कृत्रिम और दुरूह हो गया। इन दर्शनग्रन्थों के अतिरिक्त वैद्यक ग्रन्थों के कुछ अंशों, अलङ्कारशास्त्र और कौटिल्य के अर्थशास्त्रों में भी शास्त्रीय गद्य का सुन्दर रूप प्राप्त होता है। शास्त्रीय गद्य के अन्य उदाहरण आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक, अभिनवगुप्त की टीकाओं और सायणाचार्य की वेद भाष्यभूमिकाओं में देखे जा सकते है। आधुनिक युग में शास्त्रीय विषयों पर रचे गये निबन्धों में भी यही गद्य रूप हैं।

साहित्यिक गद्य के प्रयोग का अनुमान कात्यायन और पतंजलि के द्वारा दी गई सूचनाओं से होता है। दोनों वैयाकरणों ने ऐतिहासिक गद्यकाव्य के रूप में आख्यायिकाओं के अस्तित्व की सूचना दी है। पतंजलि ने तो तीन आख्यायिकाओं के नाम भी दिए हैं – वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमर थी। यथा –

(महा० भo 4/3/87) आख्यायिकाभ्यः बहुल लुग् वक्तव्यः। इस गद्य में समासों की बहुलता, ललितपदो का

निवेश, अलङ्कारों का प्रयोग रीतियों तथा गुणों का अवसरानुकूल समावेश, इत्यादि मुख्य रूप से पाये जाते थे। सौन्दर्य की दृष्टि से यह गद्य पद्यकाव्य से कहीं भी न्यूनतर नहीं होता था। उपर्युक्त आख्यायिकाओं के अतिरिक्त साहित्यिक गद्य के अस्तित्व के अन्य प्रमाण भी मिलते हैं। इनमें मनोवती (अवन्तिसन्दरीकथा में उल्लिखित), तरङ्गवती (तिलकमंजरी में निर्दिष्ट) आश्चर्यमंजरी (सूक्तिमुक्तावली 4/86 में चर्चित) आदि कथाएँ गद्यात्मक थी

जल्हण ने वररूचि की और रामिल सोमिल की शूद्रक कथा की बड़ी प्रशंसा की है –

तौ शूद्रककथाकारौ वन्द्यौ रामिलसोमिलौ।

काव्यं ययोर्द्वयोरासीदर्धनारीश्वरोपमम्।

श्रीपालिकृत तरङ्गावती की महिमा का गान धनपाल (ई०1000) ने किया है, धुण्या पुणाति गङ्गेव तां तरङ्गवती कथा। बाणभट्ट (ई०600) ने भी अपने पूर्ववर्त्ती आरव्यायिकाकारों को वन्दनीय कहा है जनकी सरस्वती कभी अम्लान न थी। वहीं हर्षचरित की प्रस्तावना में उन्होंने गद्यकार हरिश्चन्द्र के ललित और जीवित गद्य की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है–

उच्छ्वासान्तेऽप्यखिन्नास्ते येषां वक्त्रे सरस्वती।

कथामारव्यायिकाकाराः न ते वन्द्या कवीश्वराः।। 10

वहीं –

पदवन्धोज्जवलो हारी कृतवर्णक्रमस्थितिः।

मट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते।।12।।

गद्यकार हरिचन्द्र का स्मरण वप्पैराया के 'गउडोवहो' प्राकृत काव्य में भी बड़े आदर के साथ हुआ है। पता नहीं किस दुर्भाग्य के कारण उनके ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं कुछ विद्वान् हरिचन्द्र के गद्यबन्ध का नाम मालती मानते हैं किन्तु बाण से पूर्ववर्ती इस गद्यलेखक का न तो स्थितिकाल स्पष्ट है और न ही कोई ग्रन्थ है। सम्भव है उनके विलयन में परवर्ती गद्यकारों की प्रचलित शैली भी कारण हो। काव्य शास्त्री दण्डी ने काव्यादर्श में अलङ्कृत दीर्घसमास बहुल पदविन्यास को गद्य का प्राण माना – ओज समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्। जिससे प्रासादिक शैली में लिखे ग्रन्थ लुप्त हो गये। उस समय के साहित्य पण्डितों की परितृप्ति सरस पदावलि से न होती थी। फलस्वरूप संस्कृत गद्यसाहित्य की सहज और प्रवाहपूर्ण गद्य रचनाएँ अनाहत होकर विनष्ट हो गई। साथ ही अलङ्कृत गद्य की परम्परा बहुत पहले से चली आ रही थी। यद्यपि शिलालेख गद्यकाव्य नहीं कहे जा सकते तथापि शिलालेखों का गद्य वस्तुतः ही गद्यकाव्य का आनन्द दे जाता है। इस दृष्टि से रुद्रदामन् का गिरिनार अभिलेख (150ई०) तथा हारिषेणकृत समुद्रगुप्त प्रशस्ति (प्रयाग स्तम्भलेख 360 ई०) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं यद्यपि इनमें परवर्ती गद्यकाव्य के भेदों (कथा अख्यायिका) का समावेश नहीं है किन्तु शैली की दृष्टि से ये दोनों अभिलेख गद्यकाव्य के उत्कृष्ट रूप है। गिरिनार (जूनागढ़, गुजरात) का शिलालेख न केवल उत्कृष्ट समासयुक्त लम्बे वाक्य में रचित गद्य का आदर्श है अपितु कतिपय काव्यशास्त्रीय शब्दों के निर्देश के कारण काव्य रचना शैली का भी बोधक है। इस शिलालेख का रचयिता 'स्फुटलघु–मधुर–चित्रकान्त शब्द समयोदारालङ्कृत

गद्यपद्यप्रवीणेन' विशेषण से विभूषित किया गया है। समुद्रगुप्त की विजय प्रशस्ति का लेखक हरिषेण था। गद्यपद्यवाक्य में उसने अपनी क्षमता का परिचय दिया है। कुछ विशेषणों का प्रयोग दर्शनीय है जैसे तस्य विविधसमरशतावतरणदक्षस्य ––––––––– पृथिव्यामप्रतिरथस्य ––––––– समिद्धस्य विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य धनदवरूणेन्द्रान्तकसमस्य –––––– । इन सन्दभों से प्रकट होता है कि संस्कृत के उपलब्ध गद्य ग्रन्थों से बहुत पहले ही साहित्यिक गद्य का लेखन आरम्भ हो चुका था।

वस्तुतः संस्कृत गद्यकाव्य का उद्‌भव पतंजलि के आधार पर ई० पू० तीसरी शताब्दी में माना जा सकता है किन्तु प्रारम्भिक आरव्यायिकाओं के उपलब्ध न होने से इसके स्वरूप का पूर्णतः विवेचन नहीं किया जा सकता। किन्तु पद्य शैली के समानान्तर ही गद्य शैली भी निश्चितरूप से चलती रही। स्मरण शक्ति पर बोझ न डालने के लिए धार्मिक कृत्यादि के लिए पद्य शैली का प्रयोग किया जाता रहा और शास्त्रीय दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विषयों के लिए सूत्रात्मक गद्य शैली को प्रधानता दी गई। लेखन सामग्री की सुविधा के साथ इन शैलियों में वर्णन–प्रधानता और कलात्मक विस्तार बढ़ता गया।

गद्यकाव्य शैली का इतिहास इतना प्राचीन होने पर भी सातंवी शती ईस्वी के सुबन्धु बाण दण्डी आदि की रचनाओं से पूर्व रचे गये गद्यकाव्यों में एक भी प्राप्त नहीं होता इसका कारण यह भी सम्भव है कि दण्डी आदि में संस्कृत के साहित्यिक गद्य का जो अत्यन्त परिष्कृत और प्रांजल रूप प्राप्त होता है। इसके पीछे अनेक सदियों की सतत साधना और अभ्यास की पृष्ठभूमि अवश्य थी किन्तु दण्डी बाण आदि के गद्य ने जनमानस को इनता चमत्कृत एवं मुग्ध कर दिया कि पूर्ववर्ती गद्यलेखक विस्मृत ही कर दिए और उनके ग्रन्थ पठन पाठन न होने के कारण विस्मृति के अन्धेरों में सर्वथा गुम हो गये।

******

Prof. B.B. Sharma
HOD, Sanskrit
G.C.W. Parade, Jammu.

संकलित पाठों :–
'आचार्यानुशासनम्', "आलोन्नत्यै जपः"
तथा
'आदर्शगृहिणी' के सार तथा विशेषताएँ

1. "आचार्यानुशासनम्" का सार :–

''संस्कृतगद्यसंकलनम्'' में 'आचार्यानुशानम्' शीर्षक के उद्धृत पाठ ''तैत्तिरीयोपनिषत्'' की 'शिक्षावल्ली' से लिया गया है। तैत्तिरीयोपनिषत् की भृगुवल्ली के उल्लेख के अनुसार इस उपनिषत् की वरूण ने भृगु को शिक्षा दी है।

"आचार्यानुशासनम्" का सार इस प्रकार है – ''वेदाध्ययन की समाप्ति के पश्चात् शिष्य से कहता है कि– सत्य बोलो धर्माचरण करो, स्वाध्याय में आलस्य मत करो। आचार्य को गुरूदक्षिणा देकर और गृहस्थ आश्रम में जाकर सन्तान उत्पन्न करो। सत्य, धर्म, कुशल, ऐश्वर्य, स्वाध्याय, प्रवचन, देव कार्य, पितृकार्य– इनमें प्रमाद न करो। माता, पिता, आचार्य और अतिथि को देवता के समान मान– उनका सत्कार करो। जो पवित्र आचार हैं – उनका पालन करो दुराचार का कभी अनुकरण नहीं करना चाहिए। दान देना चाहिए। जब क्या आचरण करूं, क्या आचरण न करूं इस प्रकार का सन्देह हो तो, वहां पर जो श्रेष्ठ, विद्वान् हो, वे जैसा आचरण करते हैं, वैसा आचरण करते रहो। यही आदेश और उपदेश है। यही रहस्य ज्ञान है।''

विशेषता :–

''आचार्यानुशासनम्'' के कुछ महत्वपूर्ण पक्ष इस प्रकार हैं –

(क) व्यक्तिगत आचार :

इसमें सत्य का आचरण, धर्म का आचरण, प्रवचन, अध्ययन, सत्कर्म का आचरण, अपनी उन्नति के लिए सदा प्रयत्न, दान, माता–पिता तथा पितृ–कार्य आते हैं।

(ख) सामाजिक व्यवहार :

इसके अन्तर्गत अतिथि एवं गुरुजनों की सेवा–सत्कार, श्रेष्ठ ब्राह्मणों एवं विद्वानों का आदर, निजी आचरण या किसी प्रकार के सामाजिक कार्यों में सन्देह होने पर श्रेष्ठ विद्वानों की सलाह लेना तथा उनके आचरणों का यथाशक्ति अनुसरण करना आदि बातें आती हैं।

तैत्तिरीय–उपनिषद् से उद्धृत आचार्यानुशानम् से प्राचीन भारत में प्रचलित गुरू–शिष्य परम्परा तथा अध्ययन–अध्यापन की पद्धतियों की जानकारी मिलती है कि प्राचीन भारत में अध्ययन–अध्यापन की दो पद्धतियां प्रचलित थीं।

(**1**) छात्र गुरु–कुलों में रह कर अध्ययन करते थे।

(**2**) दो–तीन छात्र अथवा अधिक गुरु के घर में ही रह कर गुरु की सेवा करते हुए अध्ययन करते थे। इस प्रकार के छात्रों को– 'अन्तेवासी कहते थे। ऐसे छात्र विद्या ग्रहण कर लेने के पश्चात् जब अपने घर जाने के लिए तत्पर होते थे उन्हें उनके आचार्य जो उपदेश दिया करते थे उसे – ''आचार्यानुशासनम्'' कहा जाता था। गुरुकुलों या विद्यापीठों से विद्याध्ययन समाप्त कर घर जाने वाले छात्रों को भी इसी प्रकार का उपदेश दिया जाता था।

इस सन्दर्भ में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि 'तैत्तिरीय–उपनिषद्' का 'आचार्यानुशासनम्' नामक उपदेश, जो विद्याध्ययन समाप्त करने के पश्चात् घर जाने वाले स्नातकों को दिया गया है, आजकल के किसी भी विश्वविद्यालय के 'दीक्षांत भाषण' की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम तथा सारगर्भित है। इस उपदेश में कही गई सभी बातें मानव–जीवन के लिए बड़ी उपयोगी हैं।

इस पाठ के द्वारा हमें उपनिषद् काल में प्रचलित सरल तथा बोधगम्य 'गद्य' के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है तथा अध्ययन–अध्यापन की प्राचीन पद्धति का परिचय भी प्राप्त होता है।

2. "आत्मोन्नत्यै जपः"

वृहदारण्यकोपनिषद् से उद्धृत् किये गये तीन प्रेरणादायक वाक्य जिन्हें हृदयंगम करना प्रत्येक भारतीय विशेषतः छात्रों का कर्तव्य है।

''असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्येतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।''

सार :

हे ईश्वर मुझे असत् (असत्य) से सत् की ओर ले चलो, अन्धकार से (अज्ञान) मुझे प्रकाश (ज्ञान) की ओर ले चलो तथा मृत्यु से मुझे अमृत की ओर ले चलो।

3. "आदर्श गृहिणी" : सार तथा विशेषता

''संस्कृतगद्यसङ्कलनम्'' में ''आदर्शगृहिणी'' इस शीर्षक से सङ्कलित पाठ आचार्य दण्डी के ''दशकुमारचरितम्''

से उद्धृत किया गया है। इसमें लेखक ने एक छोटी–सी कथा के माध्यम से एक आदर्श गृहिणी का वर्णन किया है। कथा का संक्षिप्त सार निम्न है।

सार :

द्रविड़ नामक देश की 'काञ्ची' नामक राजधानी में एक करोड़पति सेठ का ''शक्ति कुमार'' नामक लगभग 18 वर्ष का जवान बेटा था। एक दिन वह सोचने लगा कि – ''जिनकी पत्नी नहीं है, अथवा जिनकी पत्नी है भी लेकिन अनुकूल गुणों वाली नहीं है, तो वैसे लोगों को जीवन में सुख नहीं मिलता। मैं कैसे गुणवती कन्या से विवाह करूं।'' दूसरों के द्वारा बताई हुई कन्याओं में स्वेच्छित गुणों को न पाकर एक दिन–ज्योतिषी का वेष धारण कर, कपड़े में लगभग एक प्रस्थ (3.5 किलोग्राम), धान बांध कन्या की खोज में घूमने निकल गया। वह जहां भी जाता उसे शुभ लक्षणों का ज्ञाता ज्योतिषी समझ कर कन्या वाले अपनी कन्याओं को दिखाने लगे। उसी क्रम में जहां उसे शुभ लक्षणों वाली सवर्ण कन्या दिखती थी, वह उसी से कहता था कि – ''हे प्रिये क्या इस एक प्रस्थ (लगभग 3.5 किलोग्राम) भर धान से स्वादिष्ट भोजन तैयार कर खिला सकती हो ?'' ऐसे ही न जाने कितने दरवाजों से उपहास एवं तिरस्कार का पात्र बन कर घूमता फिरा।

घूमता–घूमता वह शिवि नामक देश के कावेरी नदी के तट में बसे नगर में पहुंचा। वहां अपने माता–पिता एवं दाई के साथ बैठी किसी कारणवश घर की सारी सम्पति नष्ट होने से निर्धन बनी, विरले आभूषणों वाली एक कन्या को उसने देखा। उसने कन्या को ध्यान से देखा तो पाया कि इस कन्या के सारे अंग न तो अधिक मोटे हैं, न अधिक पतले, न अधिक छोटे हैं, न अति लम्बे हैं, न भद्दे ही हैं। इसके एक–एक अंग सुन्दर एवं शुभ लक्षणों वाले हैं जैसे –

इसके हाथ की अंगुलियां और हथेली लाल–लाल है और इसमें कमल–कलश आदि अनेक पुण्य सूचक रेखाएं हैं। नाभिमण्डल भी कुछ निम्न और गम्भीर है, पेट तीन बलियों से सुशोभित है – इसी प्रकार इसके नख, अंगुलियां, भुजायें, कन्धे, अधरोष्ठ, चिवुक, भौहें, नासिका, बड़ी–बड़ी आंखें, ललाट, केशपंक्तियां मुखाकृति सभी चित्ताकर्षक शुभलक्षणों से पूर्ण है। ऐसी सुन्दर एवं शुभ आकृति, शील के विपरीत आचरण नहीं करती। तो सोच–विचार कर क्यों न इसी से विवाह करूं ? यह सोचकर उससे भी वही वाक्य दोहराया कि – ''हे कल्याणी ! क्या प्रस्थ भर इस धान से मुझे स्वादिष्ट भोजन करा सकोगी ?''

उस कन्या ने उस प्रस्थ भर धान को लेकर सुखा कर ओखली में कूटा, फिर उस धान के भूस को दासी को देकर कहा कि इन्हें स्वर्णकारों को बेच कर उन पैसों से कुछ लकड़ी, एक पतीली, दो कसोरे लाओ। दाईं के इन चीजों के ले आने पर कन्या ने चावलों को अच्छी प्रकार धोकर पतीली को दाईं को देकर कहा–इन्हें बेच कर तुम थोड़ा साग, घी, दही, तेल, आंवला, आदि ले आना। दाईं के ऐसा करने पर कन्या ने दो–तीन सब्जियां बनाकर, चावल के मांड को ठंडा कर, नमक डालकर अंगार के धूप का छोंका लगाकर आंवले को भी पीस कर सुगंधित बना कर स्नान कर शुद्ध हुए उस युवक को पीने के लिए दिया, वह पीकर अपनी थकान मिटाकर युवक ने भर पेट उत्तम भोजन ग्रहण कर कुछ आराम किया। फिर विधिपूर्वक विवाह कर कन्या को लेकर वह अपने घर गया। कुछ दिनों बाद अपनी पत्नी से विमुख होकर उसने किसी वेश्या को अपने अन्तःपुर में लाया। वह कन्या तब भी अपनी सेवा–शुश्रूषा

से पति को तुष्ट करती रही, उसे देवता तुल्य मानती रही, वेश्या से भी प्यारी–सहेली जैसा व्यवहार करती। अपने गृह कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक करते हुए सेवकजनों को अपनी उदारता से वश में कर लिया। अन्त में पति भी उसके गुणों का वशी होकर सारे परिवार को उसके अधीन कर, अपने जीवन एवं शरीर को भी उसी के आश्रित कर धर्म, अर्थ एवं काम (त्रिवर्ग) का सेवन करने लगा।

महत्त्व :

इस कथा के माध्यम से कवि ने एक आदर्श भारतीय गृहिणी का चरित्र चित्रण किया है। आदर्श पत्नी वही है – जो सर्वाङ्गों से सुन्दरी, गृह कार्य कुशल, थोड़े से उपलब्ध धन के द्वारा सुस्वाद, पौष्टिक भोजन बनाने में निपुण, परिजनों के प्रति उदार, पति की सेवा करने वाली, पति की भावना का ध्यान रखने वाली, पति के प्रतिकूल आचरण करने पर भी क्रोधित न होने वाली, पति को प्रिय व्यक्ति से सद्व्यवहार करने वाली हो।

इस कथा से अपने अहं के कारण बिना किसी कारण पति, परिवार से झगड़ने वाली आधुनिक युवतियों को इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि भारतीय दृष्टि से वही नारी आदर्श है – जो अपने महत्त्व, समान स्तर आदि के अधिकार को लड़ कर मांगने की अपेक्षा सेवा भाव से पति, परिवार का मन जीत कर अपने कौशल से सब पर शासन करे।

g g g g g g

Prof. B.B. Sharma
HOD, Sanskrit
G.C.W. Parade, Jammu.

शुकनासोपदेश

1. शुकनासोपदेश का सार :–

''शुकनासोपदेश'' महाकवि बाण द्वारा रचित प्रसिद्ध गद्यकाव्य ''कादम्बरी'' का अंश है। इस अंश में कवि ने शुकनास और चन्द्रापीड के माध्यम से अभिनवयौवन एवं ऐश्वर्यमद से होने वाले उच्छृङखलता, निरंकुशता एवं शास्त्र और लोकमर्यादाओं का उल्लंघन आदि स्वाभाविक दोषों का यथार्थ चित्रण कर वस्तुतः एक सार्वभौम तथ्य का प्रतिपादन किया है। इस पाठ का सार इस प्रकार है :

सार :

जीवनयापन के लिए धन का महत्त्व अवश्य है, परन्तु यह धन जब आवश्यकता से अधिक आ जाये तो मानव में कई विकृतियों का कारण बनता है। धन, जिसे लक्ष्मी भी कहते है, यह विविध दोषों का कारण है, यह लक्ष्मी भ्रमरी के समान चंचल है, मोह का कारण है। इसमें कालकूट विष की संमोहन शक्ति है, मदिरा का मद है, कौस्तुभमणि की निष्ठुरता है, पहले तो इसे पाना मुश्किल है, किसी तरह मिल भी जाये तो इसकी रक्षा करना मुश्किल है। लक्ष्मी के गर्व में मनुष्य परिचितों को भूल जाता है, बन्धुओं का मान त्याग देता है। यह लक्ष्मी न व्यक्ति के रूप को देखती है, न कुल का अनुसरण करती है, न शील को देखती है, न चतुरता की परवाह करती है, न ज्ञान को सुनती है, न धर्म–अधर्म का ख्याल करती है। यह लक्ष्मी ज्यों–ज्यों बढ़ती है, त्यों–त्यों दीपशिखा की भांति काले कर्म को ही बढ़ाती है।

राजा लोग भी लक्ष्मी के दर्प से विविध विकारों से ग्रस्त हो जाते हैं। बड़े मुश्किल से जब राजाओं को यह लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है, तो सभी प्रकार की उद्दण्डता तो उनमें आ जाती है। ज्यादा क्या कहें राज्याभिषेक के समय ही जब मङ्गल कलशों के जल को जब इन पर डाला जाता है तो तभी इनकी दायलुता धो दी जाती है। मानो हवन के धुएं से इनका मन कलुषित हो जाता है। पुरोहितों के सम्मार्जन से मानों इनसे क्षमा दूर हो जाती है, पगड़ी मुकुट आदि के बन्धन से मानो इन्हें जरा–मरण की स्मृति नहीं रहती। छत्र ओढ़ाने से मानो इन्हें परलोक का दर्शन ही नहीं होता।

लक्ष्मी के गर्व से चूर राजा लोगों को कई प्रकार के स्वार्थी चाटुकार घेरे रहते हैं, जो उन्हें यह शिक्षा देते है, कि जुआ खेलना मनोरंजन करना है, परस्त्री गमन चतुरता है, अपनी स्त्री का त्याग करना अव्यसन है, गुरुओं

के वचनों पर ध्यान न देना दूसरों पर आश्रित न होना है, मनमानी करना प्रभुता है, इत्यादि। ऐसी बातों से राजा को मूर्ख बना कर अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं – और राजा को सभी लोगों के उपहास का पात्र बना डालते हैं – राजाओं को देवता के तुल्य बना कर स्वयं अपना स्वार्थ भी सिद्ध करते हैं, मन ही मन उस राजा की खिल्ली भी उड़ाते रहते हैं।

लक्ष्मी के आ जाने पर अहंकारी, चापलूसों से घिरे ऐसे राजा लोग प्रजाजनों को दर्शन भी उन पर मेहरबानी करना समझते हैं, उन पर नज़र भर डाल देने को बहुत बड़ा उपकार समझते हैं, अपनी आज्ञा को वरदान समझते हैं, छूना उन्हें पवित्र कर देना समझते हैं। चापलूसों की स्तुति से फूले ये राजा लोग देवताओं को प्रणाम नहीं करते, द्विजों का आदर नहीं करते, मान्यजनों को नहीं मानते, पूज्यों की पूजा नहीं करते, अभिवादन योग्य जनों का अभिवादन नहीं करते, गुरुओं का सत्कार नहीं करते। ये धनगर्वी राजा लोग वृद्धों के उपदेशों को बूढ़ों का बकवास समझते हैं, मन्त्रियों की सलाह को अपनी बुद्धि का तिरस्कार समझते हैं। हितकारक बात बताने वालों पर क्रोधित होते हैं। बल्कि हमेशा उन्हीं लोगों को अपने आसपास नज़दीक रखते हैं, उन्हीं को मानते हैं, उन्हीं से बातें करते हैं, उन्हीं से मित्रता रखते हैं, उन्हीं की बातें सुनते हैं, उन्हीं पर अपनी कृपा की वर्षा करते हैं, उन्हीं की बातों को आप्त–वाक्य समझते हैं – जो सदा रात–दिन अपने कर्तव्य को छोड़ कर हाथ जोड़े हुए इनकी देवता के समान स्मृति करते हैं, या इनके महात्म्य का वर्णन करते रहते हैं।

शुकनास, चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए आगे कहते हैं कि इस प्रकार के राजतन्त्र में और महामोहोत्पादक इस यौवनकाल में ऐसा प्रयास करना कि जिससे लोग आपका उपहास न करें, साधुजन निन्दा न करें, मित्रगण उलाहना न दें, विद्वान् लोग चिन्ता न करें, लम्पटों के द्वारा प्रकट न किये जाओ, सेवक रूपी भेड़ियों से नष्ट न किये जाओ, धूर्तों के द्वारा ठगे न जाओ, सुन्दरियां प्रलोभन न दे सकें, काम के द्वारा उन्मत्त न किये जाओ, विषयों से आकर्षित न किये जाओ।

यह ठीक है कि आप स्वाभाव से ही धीर हो और पिता ने संस्कार भी दिए हैं लेकिन आपके गुण ही मुझे कहने में विवश कर रहे हैं कि मैं आपको बार–बार समझा रहा हूँ कि – लक्ष्मी धीर, गुणी व्यक्ति को भी दुष्ट बना डालती है। अब आप राजतिलक ग्रहण करें और शत्रुओं के शिर को झुकायें, बन्धुजनों को उन्नत बनायें, राज्याभिषेक के पश्चात् दिशाओं को जीतें, यही समय अपना प्रताप बढ़ाने का है। प्रतापवान राजा की आज्ञा उसी प्रकार सफल होती है, जिस प्रकार त्रैलोक्यदर्शी सिद्धपुरूष की वाणी सिद्ध हुआ करती है।

शुकनासोपदेश की विशेषता :

उज्जयिनी के महाराजा तारापीड का चन्द्रापीड नाम का एकमात्र पुत्र था। पुत्र की जब विद्या समाप्ति हुई तो महाराज ने उन्हें युवराज बनाने का विचार किया। इस अवसर पर महाराज ने उपयोगी शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने बेटे चन्द्रापीड को अपने अत्यन्त बुद्धिमान्, दूरदर्शी और शासन करने में निपुण मन्त्री के पास भेजा। उस समय शुकनास ने चन्द्रापीड को जो उपदेश दिया वह प्रत्येक राजनैतिकों, नव धनाढ्यों के बेटों के लिए अत्यन्त शिक्षाप्रद है। वस्तुतः 'शुकनासोपदेश' कादम्बरी का अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग है। इस अंश वाली उच्छृङ्खलता, उद्दण्डता, निरंकुशता, व्यभिचार

एवं लोक मर्यादाओं और शास्त्र का उल्लंघन आदि स्वाभाविक दोषों का यथार्थ चित्रण किया है, जो सभी देश और काल के नवयुवकों, धनाढ्यों के लिए अत्यन्त शिक्षाप्रद है। कवि ने राजकुमारों, धनिकों, सामर्थ्य वालों, विशेषतः नवयुवकों को धन के दोषों के बंधन में न फंस कर श्रेष्ठ गुरुओं द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर जीवन सार्थक बनाने की प्रेरणा दी है। उन्होंने निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर जीवन सार्थक बनाने की प्रेरणा दी है। उन्होंने राजाओं एवं धन सम्पन्न लोगों को उन धूर्तों के चंगुल से बचने की चेतावनी दी है, जो उल्टी–सीधी वञ्चनाओं द्वारा सदा अपना उल्लू सीधा करने में लगे रहते हैं। विषय–वासना से इन्द्रियों को रोकने की आवश्यकता वृद्ध मन्त्री ने बड़े अधिकारपूर्ण शैली में जोर देकर समझाई है। युवावस्था में, जबकि मनुष्य को विस्तृत संसार में प्रवेश करना होता है, शुकनास के गम्भीर उपदेश का मनन करना अत्यन्त लाभप्रद हो सकता है। वस्तुतः 'शुकनास' का यह उपदेश सैद्धान्तिक ज्ञान अर्जित करने के पश्चात् व्यावहारिक जगत् रूपी महार्णव में पदार्पण करने को तत्पर प्रत्येक युवक के लिए दीक्षान्त भाषण के सदृश है।

2. शिववीरस्य राष्ट्रचिन्तनम्

''संस्कृतगद्यसंकलनम्'' में ''शिववीरस्य राष्ट्रचिन्तनम्'' शीर्षक पाठ आधुनिक संस्कृत गद्य काव्य ''शिवराजविजयः'' से उद्धृत है। इसके लेखक 'अम्बिकादत्तव्यास' हैं।

मराठा वीर शिवाजी के चरित्र को आधार बनाकर लिखा गया यह संस्कृत उपन्यास बड़ा रोचक एवं प्रेरक है। इसमें वीर शिवाजी के अप्रतिम राष्ट्रप्रेम, अदम्य उत्साह, अनतिक्रम्य वीरता की जो झलक मिलती है, वह मनोहारी है। इन्हीं की विशेषताओं का वर्णन लेखक ने अपने उपन्यास ''शिवराजविजयः'' में कर उस वीर राजा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

प्रस्तुत पाठ का सार–संक्षेप इस प्रकार है –

मराठा वीर शिवाजी जब मुगल सम्राट् औरंगजेब के शिविर में कैद कर लिए गए तो उन्हें रात–दिन यही चिन्ता लगी रहती थी कि मैं क्या करूं, कहां जाऊं, अपनी पुण्य मातृभूमि में कैसे जा पाऊंगा, प्रताप दुर्ग की चोटी में चढ़कर कैसे मैं हरे–भरे खेतों वाली महाराष्ट्र भूमि को देख पाऊंगा ? तोरण दुर्ग में स्थित हनुमान जी की मूर्ति को कैसे प्रणाम कर पाऊंगा ? कैसे पुनः अपने राजसिंहासन पर बैठ सकूंगा, कैसे मैं अपने बन्धु वीरेन्द्र सिंह को ढाढस बंधवाऊंगा। यह निश्चय ही निर्दोष रघुवीर को निकालने का ही पाप–फल है, जो खुद ही आकर शत्रुओं के चंगुल में फंस गया हूं। मेरी थोड़ी सी सेना नगर के बाहर खड़ी है पांच–छः अपने लोग और कुछ सेवक ही मेरे साथ यहां हैं। यहां का जलवायु मेरे अनुकूल नहीं बैठ रहा है, अतः मुझे महाराष्ट्र जाने दिया जाए, इस आशय का आवेदन दिल्लीश्वर औंरगजेब को भेजा तो था पर, उसने इस विषय में कोई भी उल्लेख नहीं किया। बिना आज्ञा जाता हूं, तो इन यवनों के हाथ मेरी मृत्यु निश्चित है, मेरा दुर्भाग्य है कि – संन्यासी राघवाचार्य के वचन को भी मैने नहीं माना। शिवाजी इस प्रकार का विचार कर रहे थे कि क्रीडोद्यान के वृक्षों के बीच में उन्हें किसी पुरुष की धुंधली–सी आकृति दीख पड़ी।

यह चोर है, यह लुटेरा है, यह शत्रु है, यह सोचकर नंगी छुरी हाथ में लेकर उठे ही थे कि वह कोई अन्य नहीं अपितु यवनभिक्षु के वेष में राघवाचार्य थे। वे शिवाजी को औरंगजेब के कैद से गुप्त रूप से छुड़ाने के उद्देश्य से यवन के वेष में आये थे।

तब शिवाजी ने सबसे पहले अपने देश महाराष्ट्र की कुशलता के विषय में पूछा, फिर अपनी माता एवं प्रजा और अपने पुत्र का कुशल क्षेम पूछा। राघवाचार्य ने बताया कि उनकी माता बेटे की कुशलता के लिए व्रत करती हुई कृश–शरीरा हो गई है, चबूतरे पर सोती हैं, व्रतादि में भक्ष्य सात्विक आहार लेती है। यह सुनकर शिवाजी हे माँ ! कह कर कुछ आंसू बहाते हैं।

कुशल क्षेम के पश्चात् राघवाचार्य ने कहा – महाराज ! मैं आप को छुड़ाने आया हूं, आप यहां से निकलें, कहां, कैसे निकलना है – कहां किसी की सहायता लेनी है सारी व्यवस्था मैं कर आया हूं। शीघ्र ही अब यहां से भाग चलिए।

''तब शिवाजी ने कहा कि राघवाचार्य यदि मैं यहा से भाग निकलता हूं तो यहां शिविर में स्थित मेरे अनुयायियों, दिल्ली में इधर–उधर विखरे पड़े अपने प्रियजनों का क्या होगा ? इस पर राघवाचार्य ने कहा कि जब आप यहां से भाग निकलोगे तो दिल्ली सम्राट औरंगजेब उन्हें ऐसे ही छोड़ देगा, इस पर शिवाजी बोले –''

'ऐसी कोई सम्भावना क्रूर औरंगजेब के विषय में सोचना बेकार है, जिस ने भाईयों को मार डाला अपने पिता को जेल में डाल दिया, उससे यह आशा करना कि मेरी प्रजा को वैसे ही छोड़ देगा मूर्खता है। इस पर राघवाचार्य कहते हैं कि कुछ भी हो यदि आज आप यहां से नहीं भाग निकलते तो कल से आपके इस घर से भी बाहर निकलना निषिद्ध हो जाएगा।

इस पर शिवाजी बोले – आप जैसे शुभचिन्तकों के रहते मुझे कुछ नहीं होगा, लेकिन अपने पर आश्रितों को मौत के मुंह में छोड़ कर मैं कभी नहीं जीना चाहूंगा और यदि मैं यहां से भाग निकलूं वीर मराठों की शान के विपरीत है। 'अरे शेर दिल हम मराठों का ये गीदड़ यवन कुछ नहीं बिगाड़ पायेंगे। अतः कृपया अब जाएं और हमारे पुजारियों, रसोइयों, लिपिकों, पाठकों को सूचित कर दें कि वे शीघ्र माहराष्ट्र की और प्रस्थान करें। यह सुनकर राघवाचार्य ने कहा – महाराज आप धन्य हैं – जो अपने प्राणों की परवाह न कर दया पूर्वक अपने लोगों, प्रजाओं की चिन्ता कर रहे हैं। अपने स्वामी पर मिटने वाले सेवकों की कृतज्ञता न भूलना ही राजा का पहला धर्म है – राजधर्म के पराधीन, दयालु आप धन्य हैं।''

वैशिष्ट्य

प्रस्तुत पाठ में विद्वान लेखक ने महाराजा शिवाजी के प्रजावत्सल, राष्ट्रप्रेमी एवं साहसी चरित्र को चित्रित किया है। शिवाजी का यह आदर्श देश–प्रजा प्रेम हमारे वर्तमान शासकों के लिए अमूल्य प्रेरणा–प्रद हैं। यदि हमारे शासक वीर शिवाजी के चरित्र से थोड़ी भी शिक्षा प्राप्त कर अपने आचरण में ढालें तो उनके चरित्र में एक ऐसा क्रांतिकारी गुण आएगा जिसके बल पर वे एक स्वच्छ, उन्नत, भ्रष्टाचार रहित भारत का निर्माण कर जनता के प्रेम के सदापात्र बनते रहेंगे।

वासन्ती

आधुनिक गद्य लेखकों में सर्वश्रेष्ठ श्रीबटुकनाथ शास्त्री खिस्ते वासन्ती नामक कहानी के लेखक हैं। इस कहानी

में एक पारिवारिक वातावरण को बहुत ही अच्छी प्रकार से संजोया हुआ है।

''दीनानाथ शर्मा की दो सन्तानें थीं, एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम वसन्त था और पुत्री का नाम वासन्ती। वासन्ती बहुत ही बुद्धिमान, सदाचारी एवं दयालु युवती थी। अपने माता–पिता की सेवा वह हर प्रकार से करती थी।''

इसके विपरीत वासन्ती का भाई बसन्त कुसंगती में फंस कर रह गया था। वह माता पिता का निरादर करता था और सदैव घर से दूर ही रहा करता था। दीनानाथ शर्मा को सदा ही अपने पुत्र की चिन्ता सताती थी और अपने गृहस्थ जीवन को सदा दुखी देखते थे। वासन्ती का विवाह माधवनाथ से हुआ। माधवनाथ सुशील, धनवान और रूप गुण से सम्पन्न था। कालान्तर के विवाह के दो वर्ष के उपरान्त वासन्ती का पति माधवनाथ बुरी संगत में फंस गया और शराब आदि पीने लगा। वासन्ती दुखी रहने लगी।

इन बुरी आदतों के कारण माधवनाथ बीमार पड़ गया और एक दिन उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद वासन्ती ने अपना घर छोड़ दिया और कहीं अन्यत्र चली गई। तीर्थयात्रा पर गये हुए वसन्त को एक दिन हरिद्वार में योगनी के वेष में अपनी बहन वासन्ती के दर्शन होते हैं।

विशेषता :

इस कथा की विशेषता यह है कि नारी अपनी सेवा से पत्थर को भी पिघलाने में समर्थ है। कष्ट के समय अपना धैर्य न खोकर साहस पूर्व उसका सामना करती है।

इस प्रकार की शिक्षाप्रदकथा का गुम्फन श्री बटुक नाथ शास्त्री ने अपनी पुस्तक में अच्छी प्रकार से किया है।

मातंगदारिकापरिव्राजनम्

'मातंगदारिकापरिव्राजनम्' नामक पाठ 'दिव्यावदानम्' के 'शर्दूलकर्णावदानम्' से उद्धृत पाठ का संक्षिप्त रूप है। इसमें 'प्रकृति' नाम की एक चण्डाल पुत्री का महात्मा बुद्ध के शिष्य आनन्द के प्रति आसक्ति और अन्ततः महात्मा बुद्ध के प्रभाव में आकर संन्यास ग्रहण करने की कथा वर्णित है।

पाठ का सार

कभी किसी समय भगवान बुद्ध अपने शिष्य आनन्द के साथ श्रावस्ती में भ्रमण कर रहे थे। वहीं के जलाशय में प्रकृति नाम की चण्डाल कन्या जलाशय से पानी निकाल कर अपना घड़ा भर रही थी। बुद्ध के शिष्य ने प्रकृति से कहा हे बहन ! मुझे पीने के लिए पानी दे दो। यह सुनकर चण्डाल पुत्री प्रकृति बोली – मैं चण्डाल पुत्री हूं। इतने पर आनन्द ने कहा – हे बहन मैं तुम्हारी जाति या कुल के विषय में प्रश्न नहीं कर रहा हूं। बस पीने के लिए पानी दे दो।

तब प्रकृति ने उसे पानी पिलाया और वह वहां से चला गया। परन्तु चण्डाल के स्वभाववश प्रकृति 'आनन्द' के सुन्दर, शरीर आकृति और मधुर स्वर से प्रभावित हो उस पर आसक्त हो गई और आनन्द को पति के रूप में पाने का निश्चय करने लगी और उसने घर जाकर अपनी माँ से कहा माँ यदि आप मुझे आनन्द को पति के रूप में न दिला सकी तो मैं आत्म हत्या कर लूँगी। पुत्री के हठ को देखकर प्रकृति ने भी आनन्द को अपनी शय्या में ले जाकर उससे

अपनी इच्छा पूरी की। लेकिन जब मन्त्रों का प्रभाव थोड़ा कम हुआ तो आनन्द यह सोचकर रोने लगा कि अब मैं पतित हो गया हूं, गुरु बुद्ध अब उसे इस जाल से मुक्त कर अपने पास नहीं बुलाऐंगे, पर दयालु बुद्ध ने अपने दैवीय मन्त्रों के प्रभाव से चण्डाली की विद्या के प्रभाव से मुक्त कर शिष्य को अपने पास बुला लिया, आनन्द के चले जाने पर प्रकृति पुनः विलाप करने लगी, तब उसकी माँ ने उसे समझाया कि पुत्रि ! आनन्द को अवश्य ही बुद्ध ने अपने मन्त्र प्रभाव से अपने पास बुला लिया होगा – क्योंकि हमारे मन्त्र सारे संसार में कामयाब हो सकते हैं, परन्तु बुद्ध के मन्त्र के आगे हमारे मन्त्र शक्तिहीन हो जाते हैं।

एक दिन प्रकृति आनन्द को ढूंढती–ढूंढती श्रावस्ती में पहुंच गई, वहीं उसने आनन्द को घरों में भिक्षाटन करते पाया। तब वह भी जहां–जहां आनन्द जाता वहां–वहां जाने लगी और उसी का अनुगमन करने लगी। सहमा हुआ आनन्द अपने गुरु बुद्ध की शरण में गया और बोला कि यह चण्डाल कन्या मैं जिसके भी दरवाजे भिक्षा मांगने जाता हूँ, वहीं पहुंच रही है, सर्वत्र मेरा पीछा कर रही है, आप मुझे इससे बचाएं।

तब बुद्ध ने प्रकृति की माता–पिता को बुला उनकी सम्मति जान अपने उपदेश से प्रकृति के अज्ञान को दूर कर बौद्ध भिक्षुणी बना दिया।

g g g g g g

Prof. B.B. Sharma
HOD, Sanskrit
G.C.W. Parade, Jammu.

दण्डी

गद्यकार दण्डी का जीवन परिचय :–

संस्कृत गद्य के रचनाकारों में दण्डी का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है जैसा कि इसने काव्यादर्श में ओज और समास बाहुल्य को गद्य का विशेष गुण माना है, उसी प्रकार की शैली इसके गद्यकाव्य "दशकुमारचरितम्" में दिखाई देती है । दण्डी का 'पदलालित्यम् आलोचकों में प्रसिद्ध रहा है । इसलिए 'दण्डिनः पदलालित्यम्' उक्ति प्रचलित है । दण्डि के गद्य में सुललित पदावली के विन्यास के द्वारा उसका पदलालित्य स्पष्ट दिखाई देता है । उसका एक उदाहरण निम्नलिखित है :– तदनु मणिमयमण्डन मण्डलभण्डिता सकललोकललनाकुललालभूता कन्यका काचन मणिमेकमुज्ज्वलाकारमुपायनीकृत्य मन्दमन्दमुरञ्जलिरभाषत ।

दण्डी के किसी प्रशंसक ने यहां तक कह दिया कि दण्डी ही कवि है, दण्डी ही कवि है, दण्डी ही कवि है इसमें कोई सन्देह नहीं, कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः । शाङ्र्गधन पद्धति में राजशेखर का निम्नलिखित श्लोक उदृत है :–

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः ।

त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।।

इससे एक ओर तो यह सिद्ध होता है कि दण्डी का काल राजशेखर से पूर्ववर्ती होना चाहिए और दूसरी ओर इसमे दण्डी की तीन कृतियां उल्लिखित है । दण्डी काल निश्चित नहीं है । काले ने दण्डी का काल आचार्य वामन से पहले बताया है, तदनुसार ये आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से पहले ठहरते हैं । राजा प्रवरसेन द्वारा रचित पांचवीं शताब्दी ईस्वी के ग्रन्थ सेतुबन्ध का उल्लेख दण्डी के काव्यादर्श में मिलता है । इससे यह भी सिद्ध है कि दण्डी का काल पांचवी शताब्दी ई0 से पूर्व नहीं होना चाहिए । दण्डि ने बाण जैसे उद्भट्ट गद्यकार का उल्लेख कहीं भी नहीं किया, इससे यह स्पष्ट है कि दण्डी का काल बाण से पूर्व अर्थात् षष्ठ शताब्दी ईस्वी के उत्तरार्द्ध में होना चाहिए । दशकुमारचरितम् के भौगोलिक वर्णनों और राजनीतिक चित्रण से भी इसका स्थितिकाल राजा हर्षवर्धन से पूर्व ही होना चाहिए । प्रसिद्ध विद्वान् पाण्डुरङ्ग वामन काणे ने भी दण्डी को षष्ठ शताब्दी ईस्वी में निश्चित किया है ।

शाङ्र्गधर पद्धति में किसी कवयित्री विज्जका के नाम से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है :–

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता ।

वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ।।

इस श्लोक में दण्डी को उद्धृत करते हुए विज्जुका ने कहा है कि नीलकमल की पंखुड़ी के सदृश श्याम वर्ण वाली मुझे न जानते हुए ही दण्डी ने व्यर्थ में सरस्वती को शुक्लवर्ण बता दिया । अभिप्राय यह है कि विज्जुका स्वयं अपने आपको सरस्वती मानती है । यह विज्जका शाङ्र्गधर पद्धति के अनुसार ही यदि विजयांका है तो इसे पुलकेशी द्वितीय के पुत्र चन्द्रादित्य की रानी विजयभट्टारिका या विजयाङ्का माना जा सकता है । तदनुसार उसका काल छः सौ साठ ईस्वी के निकट ठहरता है । इस आधार पर भी दण्डी का काल षष्ठ शताब्दी ईस्वी में ही मानना होगा ।

दण्डी का जीवन :–

यद्यपि दण्डी के जीवन के विषय में निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता, अवन्तिसुन्दरी नामक ग्रन्थ में बताया गया है कि दण्डी श्रेष्ठ विद्वान् दामोदर का प्रपौत्र था । दामोदर का पुत्र मनोरथ था । उसके पुत्र वीरदत्त दार्शनिक से, गौरी नाम की विदुषी पत्नी का पुत्र दण्डी था । दण्डी के माता–पिता का देहान्त इसकी बाल्यावस्था में ही हो गया था और यह दण्डधारी हो गया । इसीलिए इसका नाम दण्डी प्रसिद्ध हो गया । यह ब्रह्मचारी दण्डी जब किसी नगर में आया तो वहां के नगराधिपति ने अपनी कन्या को पढ़ाने के लिए इसे शिक्षक नियुक्त किया । अपनी कन्या के मुख से दण्डी की रसिकता के विषय में सुनकर राजा को उसकी निष्ठा में सदेह हो गया और दण्डी ने भी राजा को दरिद्रता का वर्णन करने का अनुरोध किया । उसके अनुरोध से जब राजा दारिद्र्याष्टक विरचित कर दण्डी को सौंपता है तभी दण्डी के स्मिति युक्त मुख को देखकर राजा ने सोचा कि यदि दरिद्रता का अनुभव किए बिना भी मैने दरिद्रता का उत्कृष्ट वर्णन किया है उसी प्रकार दण्डी की रसिकता स्वाभाविक नहीं अपितु कृत्रिम है। यह सोचकर राजा ने दण्डी का उचित सम्मान किया ।

दण्डी का कृतित्व :–

दण्डी के दो ग्रन्थ काव्यादर्श तथा दशकुमार चरितम् तो सर्वमान्य हैं ही परन्तु तीसरे ग्रन्थ के विषय में विद्वानों में मतभेद है । बहुत समय पहले तक यह अनुमान लगाया जाता था कि दण्डी का तीसरा ग्रन्थ काव्यादर्श में उल्लिखित छन्दोविचिति अथवा कलापरिच्छेद हो सकता है किन्तु ये दोनों ही नाम और ग्रन्थों के अंश या अध्याय प्रतीत होते है । कुछ विद्वान् लिम्पतीव तमोऽङ्गानि इत्यादि पद्य को काव्यादर्श और मृच्छकटिकम् दोनों मे देखकर तथा दोनों कृतियों के सामाजिक चित्रण की समानता देखकर तीसरी कृति मृच्छकटिक को मानने लगे, परन्तु यह किसी भी प्रकार मान्य नहीं हो सकता । उन्नीस सौ चौबीस (1924) में एम. आर. कवि नामक विद्वान् ने सर्वप्रथम अवन्तिसुन्दरी का प्रकाशन किया और इसे दण्डी की प्रामाणिक रचना सिद्व किया । वर्तमान समय में अधिकांश विद्वानों के अनुसार अवन्तिसुन्दरी ही दण्डी की तीसरी कृति है ।

दशकुमारचरितम् :

दशकुमारचरितम् दण्डी का सुप्रसिद्ध गद्य काव्य है । परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि दण्डी ने दशकुमार चरितम् की रचना पहले कर ली थी और फिर काव्यादर्श में गद्यशैली की विशेषता 'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' यह कहकर बताई । यह निष्कर्ष इसलिए भी स्वाभाविक है कि काव्यादर्श में जिस ओजोमयी समास बहुला शैली का उल्लेख किया गया है वह न तो दश कुमारचरितम् के मूलभाग में दिखाई देती है और न ही अवन्तिसुन्दरी में । दशकुमार–चरितम् की कतिपय निम्नलिखित उक्तियां उसकी शैली का निदर्शन प्रस्तुत करती हैं – "असत्येनास्य नास्यं संसृज्यते, अनेकस्यानेक आतङ्कश्चिरं चिकित्सकैरसंहार्यः संहृतः 'स्वदेशो देशान्तरमिति नेयं गणना विदग्धपुरषस्य,' आत्मानमात्मनाऽनवसाद्यैवोद्धरन्ति सन्तः, न ह्यलमतिनिपुणोऽपि पुरूषो नियतिलिखितां लेखामतिक्रमितुम्, जीवितं हि नाम जन्मवतां चतुः पंचाप्यहानि' ।

इसी प्रकार पदलालित्य से युक्त अवन्तिसुन्दरी का – 'आर्य, कदर्थस्यास्य कदर्थनान्न कदाचिन्निद्रायाति नेत्रे, । सखे सैषा सज्जनाचरिता सरणिः सदजीयसि कारणेऽनणीयानादरः सदृश्यते । न तस्य शक्यं शक्तेरियत्तज्ञानम् । इह जगति हि न निरीहं देहिन श्रियः संश्रयन्ते । श्रेयांसि च सकलान्यनलसानां हस्ते सन्निहितानि । कष्ठा चेयं निः सङ्गता या निरागसं दासजनं त्याजयति । न च निषेधनीया गरीयसां गिरः ।

दशकुमारचरितम् के तीन भाग –

इस समय जो दशकुमार चरितम् हमें उपलब्ध है, उसके तीन प्रमुख भाग हैं – पूर्वपीठिका, मुख्य भाग और उत्तरपीठिका अथवा विश्रुतचरितम् । परन्तु इनमें से मूल भाग केवल मुख्य भाग ही माना जाता है । पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका, दोनों ही प्रक्षिप्तांश कहे जाते हैं । इस धारणा का आधार यह है कि मुख्य भाग और इन दोनों की शैली में पर्याप्त अन्तर है । जहां उपर्युद्धत मूल भाग के प्रसाद गुण युक्त वाक्य हैं वहां पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका दोनों में सप्रयास अनुप्रास युक्त लम्बे–लम्बे समास हैं । पूर्वपीठिका का गद्य कुछ इस प्रकार का है :– "तत्र वीरभटपटलोत्तरंगतुरङ्गकुञ्जरमकरभीषण रिपुगणजलनिधिमथनमन्दरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्डः ।" यह केवल एक शब्द है, पूरा वाक्य नहीं । पूर्वपीठिका में पांच उच्छवास हैं । उत्तरपीठिका का उच्छ्वासों में विभाजन नहीं है । वह इसी रूप में पूर्ण है । ऐसा प्रतीत होता है कि मूल भाग के आठ उच्छ्वासों के केवल आठ राजकुमारों का वर्णन देखकर दशकुमारचरितम् नाम की सार्थकता सिद्व करने के लिए किसी ने पूर्वपीठिका का अंश जोड़ दिया और उसमें प्रक्षेपक ने दो राजकुमारों की कथा अपनी ओर से लिख दी । इसी प्रकार अन्त में उत्तर पीठिका जोड़कर किसी अन्य लेखक के द्वारा इसे पूर्णता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है ।

दशकुमारचरितम् की कथा पुष्पपुरी के राजा राजहंस के पुत्र और उसके मन्त्रियों के पुत्रों की कथा है । एक बार मालव नरेश मानसार राजहंस के राज्य पर आक्रमण कर देता है तो पराजित होकर राजहंस वन की शरण में चला जाता है । वहीं उसके पुत्र राजवाहन का जन्म होता है और नौ मन्त्रियों के भी अलग–लअग पुत्र होते हैं । बड़े होने पर ये सभी देशभ्रमण के लिए निकलते हैं और किन्हीं अनिवार्य परिस्थितियों में एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं । जब ये लौट कर एक–एक करके मिलते हें तो सब अपनी अपनी

आपबीती सुनाते हैं । ये आपबीती की कथाएं ही दशकुमारचरितम् है । सभी राज कुमार अलग होकर विचित्र संकटों में अपने दिन काटते हैं और अनेक प्रकार के कटु अनुभव प्राप्त करके उनसे उभरकर वहीं जा पहुचते हैं जहां से वे अलग हुए थे । उनके अनुभवों में छलकपटपूर्ण कृत्यों, चामत्कारिक एवं अलौकिक घटनाओं की भरमार है । इन वर्णनों में चोरी ठगी मारकाट का भी सजीव वर्णन मिलता है । स्थान स्थान पर व्यंग्य और विनोदपूर्ण वर्णन तत्कालीन समाज की अधोगति का प्रतिबिम्ब है । हम इन वर्णनों में कपटी ब्राह्मण, दम्भी तपस्वियों, व्यभिचारी स्त्रियों और हृदयहीन वेश्याओं का चरित्र देखते हैं ।

इसमें केवल दो सम्भावनाएं हैं, एक तो यह कि दण्डी ने अपने समकालीन समाज का ही वर्णन किया है । दूसरी यह कि ये निकृष्ट वर्णन कवि ने काव्य में रोचकता उत्पन्न करने के लिए अपनी कल्पना से डाले हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि दशकुमारचरितम् आकर्षक मनोरंजक विविध कथाओं का पिटारा है । अनुप्रासमयी प्रसादगुण युक्त प्रवाहपूर्ण भाषा के कारण दशकुमारचरितम् पदलालित्य का अनुपम उदाहरण है । इसी कारण दण्डिनः पदलालित्यम् यह उक्ति प्रसिद्ध है ।

ggggggg

Prof. B.B. Sharma
HOD, Sanskrit
G.C.W. Parade, Jammu.

सुबन्धु

सुबन्धु का परिचय :– "वासवदत्ता" नामक गद्य–काव्य के रचयिता सुबन्धु का स्थितिकाल अनिश्चित है । कुछ विद्वानों की धारणा है कि सुबन्धु बाण के परवर्ती थे । सुबन्धु कई पदों तथा घटनाओं के लिए बाण के ऋणी हैं । 'वासवदत्ता' में 'इन्द्रायुध' शब्द का प्रयोग चन्द्रापीड़ के उसी नाम के घोड़े की ओर संकेत करता है । महाश्वेता और कादम्बरी अपने–अपने प्रेमियों की मृत्यु पर प्राण दे देने का संकल्प करती हैं, किन्तु आकाशवाणी उन्हें ऐसा करने से रोकती है । 'वासवदत्ता' में भी अपनी प्रेमिका के खो जाने पर कन्दर्पकेतु की ऐसी ही स्थिति दिखाई पड़ती है । साथ ही बाण ने 'हर्षचरित' में उस 'वासवदत्ता' का संकेत दिया है, जिसका उल्लेख पतंजलि के ग्रन्थ में है । इन आधारों पर कुछ विद्वान् सुबन्धु का स्थितिकाल बाण के बाद मानते हैं ।

उक्त मत के समर्थन में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है । टीकाकार भानुचन्द्र (1600 ई0) के अनुसार बाण ने अपनी 'कादम्बरी' को अद्वितीय कथा' कहकर 'वासवदत्ता' और 'बृहत्कथा की ओर संकेत किया है । म0 म0 काणे महोदय ने सप्रमाण दिखाया है कि बाण सुबन्धु के परवर्ती थे तथा उन्होंने 'हर्षचरित' में सुबन्धुकृत' वासवदत्ता' का ही उल्लेख किया है । वामन (800 ई0) ने अपनी 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में सुबन्धु की 'वासवदत्ता' और बाण की 'कादम्बरी' से उदाहरण दिये हैं । अतः यह दोनों 750 ई0 के पूर्व हुए होंगे । कविराज (1200 ई0) ने 'राघवपाण्डवीय' में सुबन्धु, बाणभट्ट और स्वयं को वक्रोक्ति में कुशल बताया है । ऐसा जान पड़ता है कि कविराज ने इन तीनों नामों को स्थितिकाल के अनुसार यथाक्रम उल्लेख किया है । वाक्यपतिराज के प्राकृतकाव्य 'गौडवहो' (736 ई0) में सुबन्धु की रचना का उल्लेख हुआ है, पर बाण का नहीं । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वाक्पतिराज के समय में सुबन्धु और बाण की एक साथ प्रशंसा की गई है । 1168 ई0 के एक कन्नड़ी शिलालेख में सुबन्धु के काव्य–कला–कौशल की प्रशंसा है ।

सुबन्धु–कृत 'वासवदत्ता' के वर्णन में तथा भवभूति–कृत मालती के वर्णन में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है । जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, भवभूति ने कालिदास के ग्रन्थों से अनेक शब्द तथा भाव लिये हैं । सम्भव है कि मालती के वर्णन में वे सुबन्धु से प्रभावित हुए हों । इस अनुमान के आधार पर सुबन्धु भवभूति (700 ई0) के पहले माने जा सकते हैं ।

सुबन्धु ने अपनी कृति में एक रमणी का इस प्रकार वर्णन किया है – 'न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपां, बौद्धसंगतिमिवालंकारभूषिताम्' । स्वर्गीय कीथ महोदय के मतानुसार सुबन्धु इस स्थल पर श्लेष द्वारा नैयायिक उद्योतकर तथा बौद्ध धर्म–कीर्ति के 'बौद्धसंगत अलंकार' नामक ग्रंथ की ओर संकेत करते हैं । इन लेखकों का समय 7 वीं शताब्दीं का आरम्भ था । अतिरिक्त जिनभद्र–क्षमा–श्रमण–कृत 'विशेषावश्यक–भाष्य' (608 ई0) में वासवदत्ता और 'तरंगवती' का उल्लेख हुआ है । अतएव सुबन्धु का समय 600 ई0 या इससे कुछ पूर्व माना जा सकता है ।

वासवदत्ता : कवि सुबन्धु की एक 'वासवदत्ता' नामक कृति ही उपलब्ध होती है । सुबन्धु की यह कृति संस्कृत गद्य–काव्य के उस रूप का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें कथानक अतिलघु रहता है, वर्णन विस्तार का प्राधान्य होता है तथा पांडित्य, कल्पना का स्थान ले लेता है । राजकुमार कन्दर्पकेतु स्वप्न में अपनी भावी प्रियतमा के दर्शन करता है और स्मर–पीड़ित हो उसकी खोज में निकल पड़ता है । अति संक्षेप में 'वासवदत्ता' का यही कथानक है, किन्तु इस कथा की प्रमुख विशेषता कथानक में नहीं वरन्, नायक–नायिका के रूप सौन्दर्य के सूक्ष्म वर्णन में, उनकी गुणावली के गान में, उनकी तीव्र विरहातुरता, मिलनाकांक्षा तथा संयोग–दशा के चित्रण में निहित है । सुबन्धु के विषय में श्री आनन्दवर्धन का यह कथन पूर्णतया चरितार्थ होता है कि कविगण बहुधा कथा–वस्तु के प्रवाह और रस की अभिव्यक्ति का ध्यान नहीं रखते तथा अपना शब्द–कौशल दिखाने में ही मग्न रहते हैं– "दृश्यन्ते न कव्योऽलंकारनिबन्धनैकसा अनपेक्षितरसाः प्रबन्धेषु ।" सुबन्धु की कृति में विषयान्तरों का बाहुल्य है । उनके द्वारा वे अपने अलङ्कार–कौशल दिखाने में ही मग्न रहते हैं– 'दृश्यन्ते च कवयोऽलंकारनिबन्धनैकसा अनपेक्षितरसाः प्रबन्धेषु ।' सुबन्धु की कृति में विषयान्तरों का बाहुल्य है । उनके द्वारा वे अपने अलङ्कार–कौशल एवं पांडित्य का प्रदर्शन करते हैं । 120 पंक्तियों के एक वाक्य में 'वासवदत्ता' के विलास–विश्राम का अतिरंजित चित्रण किया गया है । सुबन्धु की रचना में जहां उनके वर्णन विस्तार तथा शब्द भण्डार का परिचय स्थल–स्थल पर मिलता है, वहां कल्पना तथा चरित्र चित्रण का अभाव खटकता है ।

सुबन्धु की शैली :– सुबन्धु की गद्य–शैली अतिश्योक्ति, अनुप्रास तथा समासप्रधान गौड़ी शैली का उदाहरण है । उनकी यह गर्वोक्ति सत्य है कि मैनें एक ऐसे विलक्षण काव्य की रचना की है, जिसके प्रत्येक अक्षर में श्लेष है । उनकी रचना श्लेष तथा विरोधाभास का ऐसा दुर्गम महाकान्तार है कि उसमें वास्तविक काव्य सौन्दर्य को ढूंढ निकालना संकेतों के प्रयोग में वे औचित्य की सीमा का अतिक्रमण कर बैठते हैं तथा इस कारण रस का आस्वादन दुर्लभ हो जाता है । दण्डी में वीरता, विचित्रता और श्रृङ्गारिकता का स्निग्ध के फेर में पड़कर इन रम्य भावों का सफल अङ्कन नहीं कर सके । स्थान–स्थान पर नये रङ्गों को भरकर उन्होंने प्रत्येक चित्र को अतीव विचित्र बना डाला है । उनमें न तो दण्डी का हास, ओज और वैचित्र्य है और न बाण की–सी कल्पना शक्ति और वर्णन प्रतिभा ही । उनकी समास–प्रचुर भाषा में सौष्ठव, प्रसाद और माधुर्य कम है, आडम्बर, कृत्रिमता और असंगति अधिक है ।

सुबन्धु की चित्रोपम एवं अलंकृत गद्य–शैली की आलोचना करते समय यह स्मरण रखना होगा कि कथानक के लिए सरस और अलङ्कार–रहित शैली अनुपयुक्त सिद्ध होती है । श्रृंगारिक वैभव के चित्रण में तीव्र मनोराग की अभिव्यक्ति में एवं प्रभावोत्पादक वर्णन में 'पंचतन्त्र' की सी सरल शैली सर्वथा अप्रासंगिक होती है । यह दूसरी बात है कि सुबन्धु अलंकारो का यात्रातीत प्रयोग कर अपनी शैली के लालित्यमय प्रवाह की रक्षा नहीं कर सके । एक ही क्रिया पर आश्रित विपुलकाय वाक्य की रचना करने में सुबन्धु अद्वितीय हैं । साथ ही वे आवश्यकता होने पर

छोटे–छोटे वाक्यों का भी विशेषकर संवादों में प्रयोग कर सके हैं । उनके समासों में एक प्रकार का स्वर–माधुर्य है तथा उनके अनुप्रासों में संगीत है । वामनभट्ट बाण ने सुबन्धु की इस प्रकार प्रशंसा की है :–

प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरूगहनविहरणमयूरः ।

सह्यदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीभट्टबाणकविराजः ।।

ġ ġ ġ ġ ġ ġ

Prof. B.B. Sharma
HOD, Sanskrit
G.C.W. Parade, Jammu.

बाण

बाणभट्ट का जीवन परिचय :– बाणभट्ट सम्राट हर्षवर्द्धन के आश्रित राजकवि थे । अतः दूसरे शब्दों में बाण हर्षवर्धन के समकालीन थे । महाराज हर्षवर्धन का राज्याभिषेक 606 ई0 में और उनकी मृत्यु 648 ई0 में हुई थी । चीनी यात्री टवान च्वांग (ह्वेन त्सांग) के वर्णनों से भी बाण के इस काल की पुष्टि होती है । इस प्रकार बाण का काल सप्तम शताब्दी ईस्वी का पूर्वार्द्ध रहा होगा । बाण ने हर्षचरितम् में अपने जीवनवृत्त के विषय में लिखा है । बाण के पूर्वज सोन नदी के तट पर प्रीतिकूट नामक गांव में रहते थे । वे वात्स्यायन गोत्रीय थे । यह विद्वानों का कुल था । इनके घर पर निरन्तर वेदाभ्यास चलता रहता था । बाण के पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था परन्तु बाल्यावस्था में ही इनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी । इनकी देखरेख करने वाला घर पर कोई न होने के कारण ये अपने मित्रों के साथ बहुत घूमते रहे और इन्होंने संसार का व्यापक अनुभव प्राप्त किया । जब बाण के पिता की मृत्यु हुई तो ये चौदह वर्ष के थे और उपनयन संस्कार के पश्चात् व्याकरणादि शास्त्रों का अध्ययन कर रहे थे । बहुत घूमने के पश्चात् जब बाण अपने प्रीतिकूट नामक गांव में लौटा तो इसके पारिवारिक बन्धुओं और मित्रों ने समारोह पूर्वक इसका स्वागत किया । इसी क्रम में महाराज हर्षवर्धन के छोटे भाई कृष्ण का संदेश बाण को प्राप्त हुआ कि तुम्हारी विद्वता से ईर्ष्या करने वाले किसी ने राजा हर्ष के मन में तुम्हारे लिए विषवमन किया है । इसलिए तुम बिना देर किए राजा के सम्मुख उपस्थित होकर उन सभी अवास्तविक दोषों का निराकरण कर दो । इस संदेश से विचलित हुआ बाण उस समय सैन्य शिविर में विद्यमान राजा हर्ष से मिलने तुरन्त उसके पास गया जैसे ही वह उसके सम्मुख पहुंचा तो श्री हर्ष ने उसको देखकर अपने पास बैठे हुए मालवाधिपति माधवगुप्त को कहा कि यह तो महान् भुजङ्ग है । तब बाण ने कहा कि महाराज आप मुझे अन्यथा न समझिए । मेरा जन्म सोमपायी वात्स्यायन वंश में हुआ है समयानुसार मेरे उपनयन आदि संस्कार हुए हैं और मैंने षडङ्ग सहित वेद पढ़े हैं तथा शास्त्रों का अध्ययन किया है । आप मुझे भुजङ्ग कैसे कहते हैं । कुछ समय के पश्चात् राजा इसके प्रति कृपावान हो गया और थोड़े दिनों में ही राजा ने इसे विश्वास के कारण बहुत प्रभावी बना दिया । इस प्रकार राजा से उस प्रकार का अतिशय आदर प्राप्त करके बाण ने उस राजा की प्रशस्ति में हर्षचरित नामक गद्यप्रबन्ध लिखा ।

बाण की कृतियाँ : यद्यपि बाण के नाम से चार कृतियां हर्षचरितम्, कादम्बरी, चण्डीशतक और पार्वतीपरिणय जानी

जाती हैं परन्तु अधिकांश विद्वान् चण्डीशतक और पार्वतीपरिणय को बाण की कृतियां स्वीकार नहीं करते । बाण की ख्याति के आधार स्तम्भ हर्षचरित और कादम्बरी दो गद्य काव्य हैं ।

हर्षचरितम् – हर्षचरितम् बाण का प्रथम गद्यप्रबन्ध माना जाता है । हर्षचरितम् काव्यादर्श के मानदण्डो के अनुसार आख्यायिका ही कहा है –

'तथापि नृपतेर्भक्त्या भीतो निर्वहणाकुलः ।

करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्माप्लवनचापलम् ।।'

संस्कृत के इतिहास परक काव्यों में इसका प्रथम स्थान है । हर्षचरितम् में कुल आठ उच्छ्वास हैं । प्रथम तीन उच्छ्वासों में बाण का अपना जीवनवृत्त हैं, तीसरे उच्छ्वास के अन्तिम अंशों और शेष सभी उच्छ्वासों में सम्राट् हर्षवर्द्धन का जीवन चरित ललित प्रवाहमयी भाषा में वर्णित है । इसके साथ–साथ हर्षचरितम् में ही राजा के आदि वंशज पुष्पभूति, प्रभाकरवर्द्धन का जीवन, हर्ष के बड़े भाई राज्यवर्द्धन और उसकी छोटी बहन राज्यश्री की जीवनकथा भी हर्षचरित में सम्मिलित है । राज्यश्री का विवाह मौखरि राजा ग्रहवर्मा के साथ हुआ था, परन्तु हर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन का स्वर्गवास होने के पश्चात् मालव नरेश ने ग्रहवर्मा का वध कर दिया । इसके प्रतिकार के लिए राज्यवर्द्धन ने मालवनरेश पर आक्रमण कर उसका वध कर दिया परन्तु लौटते समय मार्ग में ही गौडेश्वर शशांक के द्वारा वह भी कपट से मारा गया जैसे ही हर्ष को राज्यवर्द्धन की हत्या का समाचार मिला वैसे ही वह गौडेश्वर शशांक से प्रतिकार की भीषम प्रतिज्ञा करता है । इसके पश्चात् हर्ष के दिग्विजय की कथा है । हर्ष मालव नरेश को पराजित करके मालवराज की सेना तथा कोश पर अधिकार करता है । फिर वह अपनी बहन राज्यश्री की खोज करता है । राज्यश्री को एक बौद्ध सन्यासी की देखरेख में छोड़कर वह गौडेश्वर की ओर प्रस्थान करता है परन्तु आगे की कथा न होने से यहीं पर सूत्र विच्छिन्न हो जाता है ।

कादम्बरी : बाणभट्ट का द्वितीय गद्यकाव्य विश्वप्रसिद्ध कादम्बरी है । यह कथा अपनी शैली और कथा के गुम्फन के कारण समस्त साहित्य में अद्वितीय है । कादम्बरी के पूर्वभाग और उत्तरभाग दो खण्ड हैं । पूर्वभाग ही बाण की मूल कृति है । उत्तरभाग बाण की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र भूषण भट्ट या पुलिन्द भट्ट के द्वारा कथा को पूर्ण करने के लिए लिखा गया । पुलिन्द का कथन है कि मदिरा के समान इस 'कादम्बरी के रास में उन्मत्त होकर मनुष्य और कुछ भी नहीं सोच पाता–कादम्बरीरसभरेण समस्त एष, मतो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्' । इसी प्रकार की उक्ति बाण के एक अन्य प्रशंसक ने की है । तदनुसार मदिरातुल्य कादम्बरी के इस से अभिभूत व्यक्तियों को भोजन भी अच्छा नहीं लगता ।' कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते ।'

कादम्बरी की कथा तीन जन्मों की कथा है । कादम्बरी कथामुख में एक चाण्डालकन्या पिंजरे में तोते को लेकर राजा शूद्रक के समक्ष उपस्थित होती है और वह तोता शूद्रक को देखकर अपने पूर्वजन्म की कथा को स्मरण करके कहता है कि यह चाण्डालकन्या मुझे जाबालि ऋषि के आश्रम से पकड़ कर लाई है । तोते ने स्वयं अपने पूर्व जन्म की कथा जाबालि ऋषि से सुनी है । तदनुसार उज्जयिनी के राजा तारापीड़ का पुत्र चन्द्रापीड़ अपने पिता के मन्त्री शुकनास के पुत्र और अपने अभिन्न मित्र वैशम्पायन के साथ दिग्विजय के लिए निकल पड़ता है । एक दिन

घूमते हुए अच्छोद नामक एक सरोवर के निकट तपस्विनी महाश्वेता से वैशम्पायन का परिचय होता है । महाश्वेता चन्द्रापीड को अपनी सखी कादम्बरी के पास ले जाती है और वे दोनों प्रथम दृष्टि में ही एक दूसरे के प्रणयपाश में बंध जाते हैं ।

परन्तु इस बीच चन्द्रापीड को उसके पिता का बुलावा आता है और वह उज्जयिनी लौट जाता है । इधर कादम्बरी चन्द्रापीड़ के वियोग में आत्महत्या करने को होती है परन्तु पत्रलेखा जिसे चन्द्रापीड वहां छोड़ गया था उसे रोक लेती है और चन्द्रापीड तक कादम्बरी के इस अतुल्य प्रेम का सन्देश पहुंचाती है । पूवार्द्ध में केवल यहीं तक की कथा है ।

बहुत समय बीत जाने पर भी वैशम्पायन के उज्जयिनी नहीं पहुंचने पर चन्द्रापीड उसे ढूंढता हुआ अच्छोद सरोवर पहुंचता है । वहां महाश्वेता से उसे पता चलता है कि वैशम्पायन ने उससे प्रेम प्रस्ताव किया था किन्तु महाश्वेता ने शाप देकर उसे तोता बना दिया । इस प्रकार अपने अभिन्न मित्र की दुर्गति का वृत्तान्त सुनकर चन्द्रापीड की मृत्यु हो जाती है और कादम्बरी अपने प्रिय चन्द्रापीड का शव देखकर पुनः आत्महत्या को उद्यत हो जाती है । इसी समय आकाश वाणी से उसे आश्वासन मिलता है कि महाश्वेता और कादम्बरी निकट भविष्य में अपने प्रेमी से मिलेंगी । आगे चलकर चाण्डालकन्या यह रहस्योद्घाटन करती है कि शूद्रक ही पूर्वजन्म में चन्द्रापीड थे और यह तोता उनका अभिन्न मित्र वैशम्पायन था । वैशम्पायन के रूप में जन्म से पहले भी पूर्व जन्म में वह महाश्वेता का प्रेमी पुण्डरीक था और चन्द्रापीड का नाम चन्द्रमा था । पुण्डरीक ने ही चन्द्रमा को बार बार जन्म लेने का शाप दिया था और चन्द्रमा ने भी पुण्डरीक को ऐसा ही शाप दिया था । इसके साथ ही शाप की अवधि पूर्ण हो जाती है तथा पुण्डरीक और महाश्वेता तथा चन्द्रापीड और कादम्बरी का मिलन होता है ।

यद्यपि बाण के काव्य में अतिदीर्घ समासों का प्रयोग हुआ है और उत्कलिका शैली में लम्बे–लम्बे वर्णन किए गए हैं तथापि उसके गद्य में छोटे–छोटे वाक्यों वाली चूर्णक शैली भी विद्यमान है तथा कहीं–कहीं गद्य में छन्दों की अनुभूति भी होती है यथा – 'मयूर–पिच्छ–चित्र–चाप धारिणम्' शब्दों में पंचचामर छन्द की गन्ध आती है ।

बाण ने अनेक प्रकार के वर्णन किए हैं यथा–चन्द्रोदय, सूर्योदय, तपोवन, नगर, प्रासाद, आश्रम, सरोवर, शबरसैन्य, वृक्षों, पशुपक्षियों, सुन्दरियों, आदि के अनेक वर्णन । बाण की विशेषता है कि किसी भी स्थिति, व्यक्ति, स्थान, अथवा पदार्थ का वर्णन करते हुए वह तब तक वर्णन करता चला जाता है जब तक कि उसके विषय में कुछ और कहने को शेष न रह जाए । उसके सूर्योदय के वर्णन को पढ़ते हुए साक्षात् यह अनुभूति होती है कि किस प्रकार उदय होते हुए सूर्य के समय आकाश के वर्ण बदलते जाते हैं । कभी तोते के पंखों के समान हरा, कभी कबूतर के पंजो के समान रक्ताभ, कभी मंजिष्ठा राग के समान लाल, कहीं किरणें इस प्रकार की आभा लिए हुए थीं जैसे सिंह की गर्दन के बाल हाथी के रक्त से रंगे हुए हों या तपाई हुई लाख की सलाईयों के समान श्वेत और पीली तथा अत्यन्त लम्बी हों । कथामुख में ही इसी प्रकार एक जीर्ण शबर के द्वारा शातमली वृक्ष पर चढ़कर शुकशावकों को मारने के वर्णन में कवि ने उन छोटे–छोटे शुक शावकों को चित्रित करते हुए अनेक रंगों का प्रयोग किया है यथा कुछ शुकशावक गर्भ की छवि लिए हुए आरक्त वर्ण के थे जो शातमली पुष्प जैसे प्रतीत होते थे, कुछ ऐसे थे मानो कमल की बत्ती बनी हुई हो क्योंकि उनके पंख अभी निकल रहे थे । कुछ आक के फल के समान दिखते थे, कुछ

की चोंच के किनारे लाल होने लगे थे और कुछ हल्की खुली पंखुड़ियों वाले गुलाब के समान लाल मुख वाले कमलों की कलियों जैसे लगते थे । कवि ने यहां पर एक सुन्दर उत्प्रेक्षा की है कि प्राकृतिक रूप से ही कांपते हुए सिर से प्रतिकार करने में असमर्थ मानों वे उस वृद्ध शबर को पकड़ने को मना कर रहें हों ।

इन वर्णनों की विविधता, उनमें अनेक वर्णों के प्रयोग तथा किसी दृश्य की सर्वाङ्गपूर्णता एवं सूक्ष्म चित्रण से महाकवि बाण एक कुशल चित्रकार सिद्ध होता है । उसके वर्णनों की व्यापकता और सूक्ष्मता से उसका प्रत्येक पाठक इतना प्रभावित होता है कि सहज उसके उद्‌गार इन शब्दों में अभिव्यक्त होते हैं – बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् । अभिप्राय यह है कि उसने अवर्णित कुछ भी नहीं छोड़ा । उसके काव्य में जहां शान्त आश्रमों के वर्णन हैं, वनों के जटिल वर्णन हैं वहीं सेना और आखेट के, युद्धों के उद्धत वर्णन भी हैं । सौन्दर्य वर्णन तो सौन्दर्य के कारण आर्कषक हो ही जाता है, परन्तु बाण ने कृष्णवर्णा चाण्डालकन्या का वर्णन भी इस प्रकार किया है कि वह भी उतनी ही आकर्षक प्रतीत होती है ।

इन दीर्घ और लम्बे समासों से युक्त जटिल वर्णनों के साथ–साथ बाण के गद्य में हमें चूर्णकशैली के भी दर्शन होते हैं । युवराज पद पर अभिषेक के समय चन्द्रापीड का गुरू शुकनास जब उसे भावी जीवन के लिए उपदेश देता है तो वहां हृदयग्राही छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग बाण को कुशल गद्यकार सिद्ध करता है । शुकनासोपदेश में जहां यौवन के दोषों के प्रति चन्द्रापीड को सचेत किया गया है वहीं श्लिष्टोपमाओं से युक्त लक्ष्मी के दुष्प्रभावों को भी दक्षता–पूर्वक निरूपित किया गया है ।

बाण की विशेषता है कि उसने वर्ण्य वस्तु के अनुरूप ही शब्दों का चयन करके उनका समावेश किया है । यदि विन्ध्याटवी के वर्णन में कठोर शब्दों का चयन है तो वसन्त वर्णन में उतने ही मृदुल शब्दों का सन्निवेश हुआ है । बाण के गद्य की तुलना एक नदी से की जा सकती है जो ऊबड़–खाबड़ पर्वतों को कूदती फांदती हुई घरघोर शब्द करती है, वहीं हिंस्र पशुओं के द्वारा मचाए गए कोलाहल से भयंकर वनों में प्रविष्ट होती है, घाटियों में जिसका प्रवाह कुछ संयमित हो जाता है और समतल भूमि में आकर नगरों ग्रामों के निकट शान्त होकर निकलती है और जो समुद्र में मिलते समय अनेक छोटी धाराओं में विभक्त होकर अन्ततोगत्वा महासमुद्र में विलीन हो जाती है । नारी सौन्दर्य के वर्णन के समय ऐसा प्रतीत होता है कि बाण की गद्यरूपी शान्त नदी में कोई सुन्दरी अपने रूप और यौवन को विखेरती हुई अवगाहन कर रही हो ।

ऐसा प्रतीत होता है कि आलोचकों ने बाण के गद्यसौन्दर्य को देखकर ही कहा होगा कि – गद्य ही काव्य की कसौटी है – 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' । यह सत्य भी है क्योंकि जहां पद्यों में छन्दों की गेयता से लेयात्मकता का चमत्कार उत्पन्न होता है वहां छन्दों के अभाव में गद्य में भी लय को ला देने वाला कवि निःसन्देह प्रशंसनीय है ।

ग ग ग ग ग ग

Prof. B.B. Sharma
HOD, Sanskrit
G.C.W. Parade, Jammu.

अम्बिकादत्त व्यास

अम्बिकादत्त व्यास और उनका शिवराजविजय :– अम्बिकादत्त व्यास (1859 से 1909 ई0) जयपुर के निवासी थे । इनके द्वारा रचित शिवराजविजय गद्यकाव्य नवीनता से मण्डित है । व्यास जी प्रतिभा के धनी, सनातनी भावना से स्निग्ध तथा कल्पना से मण्डित संस्कृत के एक अलौकिक कवि, प्रगल्भ वक्ता तथा शतावधानी विद्वान् हैं, इनका कार्य क्षेत्र बिहार था । आप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा समादृत सुकवि थे ।

शिवराजविजय एक कलात्मक उपन्यास :– संस्कृत बाङ्मय में प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास का सौभाग्य 'शिवराजविजय' को प्राप्त है, जो अनुपम वाक्यविन्यास, अलंकार, एव शब्द–श्लेष की दृष्टि से कादम्बरी से प्रभावित, रूपशिल्प की दृष्टि से बंगला उपन्यासों के निकट है । इसका कथानक उलझी हुई लतिका की भांति है ।

'शिवराजविजय' का रूप–शिल्प पाश्चात्य उपन्यासों जैसा है । लेखक वातावरण बनाकर पाठकों को तन्मय कर उन्हें अपने चरित्रों के बीच में बैठा देता है, जहां वे तटस्थ की भांति अनेक क्रिया–कलाप देखते हैं ।

चरित्र–चित्रण – उपन्यास में चरित्र–चित्रण की प्रधानता रहती है क्योंकि उसकी प्रभावात्मकता चरित्र पर ही निर्भर है । पात्र चरित्र की स्वाभाविकता कथानक को सजीव बना देती है । पात्र की भाषा–वेष–भूषा, खान–पान, रहन–सहन, आदि की कालिक स्वाभाविकता अपेक्षणीय है । व्यास जी पात्र सजीवता के लिए कुशलहस्त हैं । उन्होंने ऐतिहासिक इतिवृत्त को लेकर शिवाजी इनके कथानायक हैं, वे वीर हैं, व्रती हैं, आर्यधर्म के पालक एवं रक्षक हैं, राजनीति में निपुण हैं, धर्मरक्षा के लिए वे अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं ।

भाषा एवं अर्थगौरव :– भाषा काव्य का शरीर है, भाषा की दृष्टि से 'शिवराजविजय' अत्यन्त आकर्षक है – उत्तमोत्तम शब्दावली ओजस्विनी गतिमयता, अर्थपूर्ण वाक्य–विन्यास, अत्यन्त सुबोध विषय और स्थान के अनुसार अवसर की मांग पर उद्दाम और कोमल है ।

संवाद योजना :– अत्यन्त स्वाभाविक एवं सरल भाषा में संवाद विधान औपन्यासिक कथानक का प्राण होता है । 'शिवराजविजय' में संवादों की हृदयग्रहिता का यही रहस्य है । उदाहरण –

दौवारिक – आम् । अग्रे कथ्यताम् ।

संन्यासी – वयं च संन्यासिनोवनेषु गिरिकन्दरेषु च विचरामः ।

दौवारिक – स्यादेवं अग्रे अग्रे ।

रस–योजना : बाह्य सौन्दर्य में सहृदय हृदय अधिक काल तक नहीं रमता है । वह तो आत्मसौन्दर्य का उपासक होता है । काव्य की आत्मा रस है । यह महामहिम कृति नवरसरूचिरा है । अर्थात् व्यास जी ने भी अपनी रचना शिवराजविजय में सभी रसों का प्रयोग किया है । परन्तु प्रधान रस वीर को ही रखा है ।

कथावस्तु संघटना : 'शिवराजविजय' में दो स्वतन्त्र कथाधाराएं समानान्तर होती हैं । एक का नेता है रामसिंह और दूसरे का शिवाजी, किन्तु ये दोनों कथाधाराएं एक दूसरे की अपेक्षा नहीं रखती है – ऐसी बात नहीं है । ये दोनों एक दूसरे की पूरक हैं ।

अम्बिकादत्त व्यास ने कल्पना और इतिहास, आदर्श तथा यथार्थ दोनों का निर्वाह किया है । उनके सफल चरित हैं – शिवाजी, गौरसिंह, अफजलखां, यशवन्तसिंह, शाइस्ता खां, ब्रह्मचारी आदि ।

समीक्षा : इस प्रकार हम पाते हैं कि पं0 अम्बिकादत्त व्यास जी का 'शिवराजविजय' काव्य गतवैशिष्ट्य की दृष्टि से सफल काव्य है । उसमें काव्यत्व के सभी गुण विद्यमान है । भाषा एवं भाव का अपूर्व सामंजस्य विद्यमान है । कवि की सुकुमार मनोहर स्वाभाविक कल्पना की कमनीयता पगे–पगे दृष्टव्य है । अनुभूति की गम्भीरता हृदय स्पर्शी है । भावों का सार्थक्य तथा भाषा की प्रवहणशीलता तथा कथानक की गतिशीलता मन को आकर्षित करने वाली है । समूचा उपन्यास विधात्मक गुणवत्ता को स्वान्तः संजोये हुए है ।

9 9 9 9 9 9

Prof. B.B. Sharma
HOD, Sanskrit
G.C.W. Parade, Jammu.

श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते

आधुनिक गद्यकारों में अग्रणीय श्री बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान हैं । श्री बटुकनाथ जी वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय के प्राध्यापक के रूप में कार्य कर चुके हैं । श्री खिस्ते की साहित्य क्षेत्र में अत्यधिक रूचि है । संस्कृतानुरागी श्री खिस्ते के आधुनिक भारत में संस्कृत प्रचार एवं प्रसार का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है ।

गद्य संग्रह में प्रस्तुत 'वासन्ती' के आधार पर इनके प्रकाण्ड पण्डित्य का वर्णन हमें देखने को मिलता है ।

श्री खिस्ते की शैली प्रवाहपूर्ण एवं सरलता से युक्त है। समास से विहीन माधुर्य गुण में निबद्ध भाषा का गुम्फन अतीव सुरेख है । यथावसर स्थानों में अलंकारों का गुम्फन भी अतीव सुन्दरता से किया गया है ।

g g g g g g

संस्कृत में अनुवाद

अनुवाद : किसी भाषा के शब्दार्थ को दूसरी भाषा के शब्दों में बदलने को अनुवाद कहते हैं।

अनुवाद करने की विधि :–

1. किसी एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने के लिए सबसे पहले जिस भाषा में अनुवाद करना हो उसके शब्दकोश की आवश्यकता होती है। हिन्दी के अधिकांश शब्द संस्कृत से ही निकले है, अतः हिन्दी भाषी व्यक्ति को संस्कृत में अनुवाद करने के लिए शब्दकोश की ज्यादा कठिनाई नहीं होती।

2. संस्कृत भाषा में विभक्तियां पदों के साथ रहती हैं। अतः छात्रों को सुबन्त और तिङन्त आदि पदों की जानकारी ले लेनी चाहिए।

3. कारकों की सामान्य जानकारी भी अनुवाद के लिए बहुत आवश्यकता है। यहां कारकों एवं विभक्तियों का संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है। छात्र उसे समझ लें।

कारक : (कर्त्ता, कर्म आदि)

कर्त्ता : ''रमेश पुस्तक पढ़ता है''। इस वाक्य में पढ़ने वाला 'रमेश' है। ''राम ने रावण को मारा।'' इस वाक्य में मारने वाला 'राम' है। 'पढ़ना' और 'मारना' ये दो क्रियाएं हैं। इन क्रियाओं को करने वाले 'रमेश' और 'राम' है। क्रिया के करने वाले को कर्त्ता कहते हैं। अतः इन दो वाक्यों में 'गोपाल' और 'राम' कर्त्ता हैं।

कर्म :

ऊपर प्रथम वाक्य में पढ़ने का विषय 'पुस्तक' है और द्वितीय में मारने का विषय 'रावण' है। 'पुस्तक' और 'रावण' के लिए ही कर्त्ताओं (रमेश और राम) ने क्रियाएं कीं, अतः मुख्यतः जिस चीज के लिए कर्त्ता क्रिया को करता है, उसको 'कर्म' कहते हैं।

करण, सम्प्रदान :

''राजा ने अपने हाथ से ब्राह्मण को दान दिया।'' इस वाक्य में दान क्रिया की पूर्ति 'हाथ' से हुई – हाथ के सहारे हुई, अतः 'हाथ' 'करण' हुआ। इसी वाक्य में दान की क्रिया 'ब्राह्मण' के लिए हुई, अतः 'आम' 'सम्बन्ध' हुआ।

ऊपर के चार वाक्यों में 'पढ़ना', 'मारना', 'देना' और 'गिरना' इन क्रियाओं के सम्पादन में जिन–कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान और अधिकरण आदि पदों का उपयोग हुआ है, उन्हें 'कारक' कहते हैं। ''कारक'' वह वस्तु है, जिसका उपयोग क्रिया की पूर्ति के लिए किया जाता है। 'सम्बन्ध' को कारक नहीं माना जाता है। कुछ वैयाकरणों ने 'सम्बन्ध' को भी 'कारक' माना है।

विभक्तियाँ :

वाक्य में कारकों को जोड़ने के लिए हिन्दी भाषा में 'ने', 'को', 'से', 'द्वारा', 'के लिए' 'में'पर', आदि चिन्ह काम में आते हैं। ये 'विभक्ति' (कारक चिन्ह) कहलाते है। संस्कृत में 'वाक्यस्थ' पदों को जोड़ने का काम सु, औ, जस् आदि सुप् प्रत्यय करते हैं। इन्हें ही संस्कृत में 'विभक्तियाँ' कहते हैं। संस्कृत भाषा में सात विभक्तियां और एक सम्बोधन होता है। नीचे संस्कृत की विभक्तियों, कारकों, और उनके अर्थ की सूची दी जा रही है।

विभक्तियाँ	प्रत्यय	कारक	अर्थ
(Case Signs)		(Case)	(Meaning)
प्रथमा	सु, औ, जस्	कर्त्ता (Nominative)	(वह वस्तु) ने
द्वितीया	अम् औट् शस्	कर्म (Accusative)	को
तृतीया	टा, भ्याम्, भिस्	करण (Instrumental)	से, के द्वारा
चतुर्थी	ङे, भ्याम्, भ्यस्	सम्प्रदान (Dative)	के लिए
पञ्चमी	ङसि, भ्याम्, भ्यस्	अपादान (Ablative)	से (पृथक्)
षष्ठी	ङस्, ओस, आम्	सम्बन्ध (Genitive)	का, के, की
सप्तमी	ङि, ओस्, सुप्	अधिकरण (Locative)	में, पर
सम्बोधन	सु, औ, जस्	सम्बोधन (Vocative)	हे, अरे, भो, अये

हिन्दी में कर्त्ता, कर्म आदि 'कारक' बताने के लिए 'ने', 'को', 'से' आदि शब्द संज्ञा या सर्वनाम के पीछे जोड़ दिये जाते हैं। (जैसे, राम ने, राम को, राम से), किन्तु संस्कृत भाषा में यह सम्बन्ध या कारक बताने के लिए जब सु, औ, जस् आदि विभक्ति प्रत्यय जुड़ते हैं तो संज्ञा या सर्वनाम का रूप ही बदल जाता है जैसे –

राम : = राम ने

रामम् = राम को

रामेण = राम के द्वारा (ने)

रामाय = राम के लिए

रामात् = राम से (अलग होने के अर्थ में)

रामस्य = राम का (की, के)

रामे = राम में, पर

राम ! = हे राम !

संस्कृत में अनुवाद के लिए छात्रों को संस्कृत कारकों को ठीक से समझ लेना चाहिए। साथ ही नाम या सुबन्त पदों के 'रूपों' को भी याद करना चाहिए। नाम पदों के सात (सम्बोधन सहित आठ) विभक्तियों के तीन वचनों में 21 प्रत्यय (सम्बोधन सहित 24) लगते हैं।

अभ्यास

संस्कृत में अनुवाद करने के लिए विद्यार्थी इन नियमों का सदा ध्यान रखें :

1. अनुवाद करते समय सदा कर्तृवाच्य क्रिया का ही प्रयोग करें – कर्मवाच्य की अपेक्षा यह सरल है।

2. कर्तृवाच्य में कर्ता में प्रथमा विभक्ति, कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। कर्ता जिस पुरुष, वचन में होगा क्रिया के पुरुष वचन भी वे ही होंगे, जैसे –

1. रामः ग्रन्थं पठति = राम ग्रन्थ पढ़ता है।

2. राम–सुरेशौ ग्रन्थं पठतः = राम और सुरेश ग्रन्थ पढ़ते हैं।

3. अहं ग्रन्थं पठामि = मैं ग्रन्थ पढ़ता हूँ।

4. वयं ग्रन्थं पठाम : = हम (सब) ग्रन्थ पढते है।

5. यूयम् ग्रन्थं पठथ = तुम सब ग्रन्थ पढ़ते हो।

यहां प्रथम वाक्य में कर्ता राम प्रथम पुरुष एक वचन है, अतः क्रिया भी लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन में है। ग्रन्थ कर्म है, उसमें द्वितीया विभक्ति है। राम कर्ता है अतः उसमें प्रथमा विभक्ति हुई है।

द्वितीय वाक्य में पढ़ने वाले (कर्ता) राम–सुरेशौ प्रथम पुरुष द्वि वचन में है, अतः क्रिया भी प्रथम पुरुष द्विवचन की है – पठतः।

तृतीय वाक्य का कर्त्ता उत्तम पुरुष एक वचन (अहम् = मैं) होने से उसकी क्रिया में भी उत्तमपुरुष एकवचन (पठामि) है। शेष दो वाक्यों में भी कर्ता के पुरुष, वचन के अनुसार क्रिया प्रयुक्त हुई है।

3. विशेषण में वे ही लिङ्ग वचन विभक्तियां होंगी, जो विशेष्य में होंगी –

जैसे –

(एकवचन)	(बहुवचन)
सुन्दरः बालकः	सुन्दराः बालकाः
सुन्दरी नारी	सुन्दर्यः नार्यः
सुन्दरं फलम्	सुन्दराणि फलानि।

संस्कृत अनुवाद की दृष्टि से उपयोगी एक उदाहरण प्रस्तुत है –

''दशरथ के पुत्र राम ने लंका में रावण को मारकर विभीषण को राज्य दिया''

इसका संस्कृत अनुवाद होगा :–

दशरथस्य[1] पुत्रः रामः[2] लङ्कायां[3] रावणं हत्वा[4] विभीषणाय[5] राज्यं अददात्[6]।

यहाँ 'रामः' कर्ता एकवचन है, अतः उसमें प्रथमा विभक्ति एक वचन का प्रयोग है। वह दशरथ का पुत्र अतः दशरथ में षष्ठी एकवचन विभक्ति है। सारी क्रियाओं का आधार लकां है, अतः उसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है। कर्ता राम ने राज्य दान किया, अतः राज्य कर्म होने से उसमें द्वितीया एकवचन (राज्यम्) है। राम विभीषण को दिया गया, अतः विभीषण सम्प्रदान कारक होने से उसमें चतुर्थी एकवचन विभक्ति का प्रयोग है।

विशेष्य के लिगं वचन और विशेषण के लिंग, वचन एक होते हैंः जैसे –

मधुर फलम् मधुरे फले, मधुराणि फलानि।

सुन्दर बालकः, सुन्दरौ बालकौ, सुन्दराः बालकाः आदि।

सारांश

इस प्रकार संस्कृत में अनुवाद करते समय

1. यदि कर्ता प्रथमान्त (क्रिया कर्तृवाच्य) हो तो क्रिया, यदि तिङन्त है, तो कर्ता के पुरुष, वचन का अनुसरण करती है। क्रिया यदि कृदन्त हो तो इसका लिंग भी कर्ता के लिंग के अनुसार ही होगा।

जैसे –

रामः गतवान्, रामाः गतवन्तः ।

सीता गतवती, सीताः गतवत्यः। आदि।

2. यदि क्रिया कर्मवाच्य में हो तो क्रिया के पुरुष, वचन कर्म का अनुगमन करते हैं –

रामेण फलं खादितम्।

रामेण फलानि खादितानि।

और कर्म में प्रथमा विभक्ति होगी और कर्ता में तृतीया विभक्ति होगी।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

क. संस्कृत शिक्षण की नवीन योजना

डॉ० धमेन्द्रनाथ शास्त्री साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ

ख. संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका

डॉ० बाबू राम सक्सेना, साहित्य संस्थान, इलाहाबाद–2

ग. बृहदनुवादचन्द्रिका

चक्रधर हंस नौटियाल, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली–7

घ. रुपचन्द्रिका, पं० रामचन्द्र झा

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी–1

q q q q q q

B.A. Semester IV	**Sanskrit**
Unit-IV	**Lesson No. 19**

Dr. Sandhya
Assistant Professor Sanskrit
GDC, Samba

"लघु सिद्धान्त कौमुदी"

शीर्षक – "विभक्त्यर्थ–प्रकरणम्"

सूत्र संख्या – 888 – 895

क) सामान्य उद्देश्य

ख) विशिष्ट उद्देश्य

क) सामान्य उद्देश्य :

1. छात्रों को व्याकरण से परिचित करवाना।
2. छात्रों की तर्कशक्ति एवं स्मरण शक्ति का विकास करना।
3. छात्रों को व्याकरण के विभक्त्यर्थ–प्रकरण से अवगत करवाना।

ख) विशिष्ट उद्देश्य :

1. छात्रों के शब्द भण्डार में वृद्धि करना।
2. प्राचीन समृद्ध संस्कृत व्याकरण में प्रतिपादित नियमों के आधार से संस्कृत का सरलतम व्याकरण सिखाना।
3. प्रकरण के आधार पर छात्रों को सरल शैली में व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करवाना।

पाठ–परिचय : इस प्रकरण में प्रथमा आदि विभक्तियों का अर्थ बताया जायेगा। किस अर्थ में किस विभक्ति का प्रयोग होता है, इसका निरुपण होगा। कर्ता आदि कारक – विभक्तियों के अर्थ है – उन कारकों के लक्षण भी इसी प्रकरण में बताये जायेंगे। कारक अर्थ में आनेवाली विभक्ति को कारक–विभक्ति कहते हैं। कारक से भिन्न या किसी पद के योग में आनेवाली विभक्ति उपपद–विभक्ति कही जाती है। इस प्रकार विभक्ति दो प्रकार की होती है। दोनों का निरुपण यहां होगा। प्रथमा आदि विभक्तियों का क्रम से निरुपण किया जाएगा। सबसे पहले प्रथमा विभक्ति दी

जाती है।

मूल–सूत्र : प्रातिपदिकार्थ लिगं–परिमाण–वचन मात्रे प्रथमा।

अर्थ – प्रातिपदिकार्थ मात्र में, लिगंमात्र के आधिक्य में परिमाण मात्र में और वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः।

प्रातिपदिकार्थमात्रे लिगंमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च

प्रथमा स्यात्। प्रातिपदिकार्थमात्रे – उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्। लिगंमात्रे – तटः। तटी। तटम्।

परिमाणमात्रे – द्रोणो ब्रीहिः।

वचनं – संख्या। एकः। द्वौ। बहवः।

नियतेति – प्रातिपदिक के उच्चारण करने पर जिस अर्थ की नियम उपस्थिति होती है, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं।

प्रातिपदिकार्थमात्र में – उच्चैः (ऊचाँ), नीचैः (नीचा) कृष्णः (वासुदेव) श्रीः (लक्ष्मी) और ज्ञानम् (ज्ञान) से प्रातिपदिकार्थ के उदाहरण हैं। यहाँ प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति हुई।

उच्चैः और नीचैः अव्यय है। इनसे विभक्ति आती है और उसका 'अव्ययादाप्सुपः' से लोप हो जाता है। कृष्णः, श्री, ज्ञानम् ये नियतलिंग शब्द हैं।

मात्रशब्दस्येति – 'मात्र' शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बंध होता है।

लिङ्गमात्राधिक्येइति :– वृत्ति में लिगंमात्र के साथ 'आधिक्य' का अन्वय किया गया है' क्योंकि केवल लिंग अर्थ की प्रतीति नहीं हो सकती, उसके पहले जाति और व्यक्ति की प्रतीति अवश्य होती है, इसलिये यह अर्थ हुआ कि जाति और व्यक्ति अर्थ से अधिक यदि किसी को प्रतीति हो तो लिगंमात्र का। लिगंमात्र के उदाहरण अनियत लिंग शब्द हैं।

जैसे तटः, तटी, तटम् – यहाँ जाति और द्रव्य से अधिक लिगंमात्र अर्थ की प्रतीति होती है, इसलिये प्रथमा हुई। तट शब्द अनियत लिंग है अर्थात् इसका लिंग एक नियत नहीं। कभी पुलिगं, कभी स्त्रीलिगं और कभी नपुंसक लिंग होता है।

परिमाणेति – परिमाण मात्र में – द्रोणो ब्रीहिः। यहां परिमाण अर्थ में द्रोण शब्द से प्रथमा विभक्ति हुई। द्रोण शब्द का अर्थ है द्रोण परिमाण और प्रथमा विभक्ति का अर्थ भी हुआ परिमाण, द्रोण विशेष परिमाण है और प्रथमा विभक्ति का अर्थ सामान्य परिमाण। द्रोण परिमाण विशेष है और व्रीहि द्रव्य। परिमाण और द्रव्य एक नहीं होते। इसलिये अभेदान्वय नहीं बन पाता। जब विभक्ति का अर्थ परिमाण होता है, तब पहले द्रोण परिमाण विशेषरूप प्रातिपदिकार्थ का प्रत्यार्थ सामान्य परिमाण के साथ अभेद–अन्वय होता है और प्रत्यार्थ परिमाण का व्रीहि रूप प्रातिपदिकार्थ के साथ परिच्छेद्य – परिच्छेदक भाव सम्बंध से अन्वय हो जाता है।

वचनमिति – वचन संख्या को कहते हैं। संख्यावाचक शब्दों से संख्या अर्थ में ही प्रथमा विभक्ति आती है। विभक्ति के द्वारा प्रातिपदिकार्थ संख्या का अनुवाद होता है। उनका परस्पर अभेदान्वय होता है। वचन से – एकः, द्वौ, बहवः – इन उदाहरणों में प्रथमा विभक्ति वचन अर्थात् – संख्या अर्थ में आई है।

सूत्र संख्या – 889

मूल–मात्रः – ''सम्बोधने च''।

प्रथमा स्यात्। हे राम!

अर्थः – संबोधन में प्रथमा विभक्ति होती है। संबोधन कहते हैं वक्ता का श्रोता को अपनी बात सुनने के लिये अपनी ओर आकृष्ट करना संबोधन शब्द का अर्थ है अच्छी तरह समझना, यह तभी हो सकता है जब श्रोता वक्ता की ओर पूर्ण सावधान हो और ऐसा तभी संभव है। जब जोर से पुकारा जाय। यही कारण है कि संबोधन पद को जोर से बोला जाता है।

जैसेः ' हे राम! – यहाँ संबोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति हुई।

सूत्र संख्या – 890

मूल सूत्रः – "कर्तुरीप्सित – तमं कर्म"।

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञंस्यात्।

अर्थः – कर्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिसे विशेषरुप से प्राप्त करना चाहे, उस कारक की कर्म संज्ञा होती है।

कारक क्रियाजनक होता है। कर्ता, कर्म और करण आदि कारक साक्षात् क्रिया को कहते हैं। अधिकरण आदि कर्ता और कर्म आदि के द्वारा परम्परया क्रिया को पैदा करते हैं। कारक क्रियान्वयी होता है अर्थात् जिसका क्रिया में अन्वय होता है, उसे कारक कहते हैं, कर्ता, कर्म और करण का क्रिया में साक्षात् अन्वय होता है तथा अधिकरण आदि का कर्ता आदि के द्वारा परम्परया।

कारक छः हैं – 1. कर्ता 2. कर्म 3. करण 4. संप्रदान 5. अपादान 6. अधिकरण

प्रकृत सूत्र से कर्म का लक्षण किया गया है। 'देवदत्त ओदनं पचति' देवदत्त चावल पकाता है, यहां कर्ता देवदत्त पाकक्रिया द्वारा ओदन को विशेष रूप से प्राप्त करना चाहता है। इसलिये इसकी कर्म संज्ञा होती है।

सूत्र संख्या – 891

मूलसूत्रः – ''कर्मणि द्वितीया''

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मादौ प्रथमा – हरिः सेव्यते। लक्ष्म्या सेवितः।

अर्थ :– अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। इस सूत्र में 'अनभिहिते' इस पूर्व सूत्र का अधिकार आता है। उसी

का अर्थ किया गया है। जिस अर्थ में प्रत्यय हो, वह उक्त होता है, उससे भिन्न अर्थ में अनभिहित – अनुक्त होता है। प्रकृत में जब कर्म में कर्म उक्त और कर्तृवाच्य में अनुक्त होता है। अतः कर्तृवाच्य में कर्मकारक में द्वितीया विभक्ति होती है।

जैसे :– हरिं भजति – इस वाक्य में कर्ता का ईप्सित–तम हरि है। इसलिये उसकी पूर्व सूत्र से कर्म संज्ञा हुई। 'भजति' कर्तृवाच्य की क्रिया है – इसलिये कर्म अनुक्त है अनुक्त कर्म होने से 'हरिम्' यहाँ द्वितीया विभक्ति हुई।

अभिहिते इति :– उक्त कर्म आदि में प्रथमा होती है अर्थात् द्वितीया कर्म अर्थ में होती है जब कर्म अर्थ में लकार आदि अन्य प्रत्ययों के द्वारा उक्त हो गया हो तो प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

हरिः सेव्यते :– यहाँ क्रिया कर्मवाच्य की है। इसलिये कर्म के उक्त हो जाने से 'हरिः' यहां प्रतिपदिकार्थमाणे में प्रथमा विभक्ति हुई।

लक्ष्म्या सेवितः :– यहाँ 'सेवितः' यह क्रियापद निष्ठान्त है। क्त प्रत्यय कर्म में हुआ है, उक्त कर्म होने से यहां भी 'हरि' आदि कर्म से प्रतिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति होगी।

सूत्र संख्या – 882

मूल सूत्र :– 'अकथितं च'।

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

दुह्–याच्–पच् दण्ड–रुधि–प्रच्छि–चि–ब्रू–शासु–जि–मथ्–मुषाम्।

कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यात् नी–ह्र–कृष्–वहाम्।

गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। तण्डुलानोदनं

पचति। गर्गान् शतं दण्डयति। व्रजम् अवरुणद्धि गाम। मानवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षम् अवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तं। सुधांक्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्रामम्अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा। अर्थ निबन्धनेयं संज्ञा–बलिं भिक्षते वसुधाम्। मानवकं धर्मं भाषते, अभिधत्ते वक्तीत्यादि।

अर्थ : अपादान आदि विशेष रूप से कारक जब अविवक्षित हो तब वह कर्मसंज्ञक हो जाता है।

कर्मसंज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति आती है। परन्तु जब अपादान आदि विशेष संज्ञा कारक ही विवक्षित हो तब उनसे पञ्चमी आदि विभक्तियाँ भी आ जाती है। कुछ विशेष धातुयें हैं। जिनके अपादान आदि कारकों की अविवक्षा की जाती है।

1. दुह्–दुहना 2. याच् (मांगना) 3. पच् (पकाना) 4. दण्ड् (सजा देना) 5. रुध् (रोकना) 6. प्रच्छ (पूछना) 7. चि (चुनना) 8. ब्रू (कहना) 9. शास् (शासन करना) 10. जि (जीतना) 11. मथ् (मथन) 12. कृष् (खीचना)

और 16 वह् (ले जाना) इन सोलह धातुओं के अपादान आदि कारक अविवक्षित होते हैं। इनकी ही कर्मसंज्ञा होती है।

उदाहरण : गां दोग्धि पयः (गौ से दूध दुहता है।) यहाँ सूत्र से कर्म संज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति हुई।

'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' से सूत्र से जिसकी कर्म संज्ञा है उसे प्रधान कर्म कहते हैं और जिसकी इस प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होती है उसे अकथितं कर्म अथवा गौण कर्म।

'गां दोग्धि पयः' (गौ से दूध दुहता है) इस वाक्य में पयः प्रधान कर्म है और 'गाम्' गौण कर्म। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी प्रधान और गौण कर्म को समझना चाहिये।

बलिं याचते वसुधाम् :– (बलि से पृथ्वी मांगता है) यहां बलि अपादान है, इसकी अविवक्षा करने पर कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई।

तण्डुलान् ओदनं पचति :– (चावलों से भात पकाता है) यहां तण्डुलान् करण है। अविवक्षा होने पर कर्मसंज्ञा हुई।

गर्गान् शतं दण्ड्यति :– (गर्गो को सौ रुपये जुर्माना करता है) – यहां गर्ग अपादान है, अविवक्षा होने पर कर्मसंज्ञा हुई।

वृक्षं अवचिनोति फलानि :– (वृक्षों से फलों को चुनता है) – यहाँ वृक्ष अपादान की अविवक्षा करने पर कर्मसंज्ञा हुई।

ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा :– (गांव में बकरी को ले जाता है, खींचता है, पहुंचाता है) – यहां ग्राम अधिकरण है, उसकी अविवक्षा होने पर कर्मसंज्ञा हुई।

'गां दोग्धि पयः' में ग्राम के समान इन वाक्यों में जिनकी अपादानादि विशेष संज्ञा को अविवक्षा करके कर्मसंज्ञा की गई है, इन्हें अकथित कर्म या गौण कर्म कहते हैं।

तथा पयः आदि के समान 'वसुधाम्' आदि प्रधान कर्म है।

सूत्र संख्या – ८९३

मूल सूत्र :– ''स्वतन्त्रः कर्ता''।

क्रियायां स्वातन्त्र्येन विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

अर्थ :– क्रिया में जिसे स्वतन्त्र कहा जाय उसे कर्ता कहते हैं। कर्ता के सम्बंध में पहले कई बार विवेचन किया जा चुका है।

सूत्र संख्या – ८९४

मूल सूत्र :– ''साधक–तमं–करणम्''।

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्।

अर्थ :– क्रिया की सिद्धि में जो सबसे प्रकृष्ट उपकारक अर्थात् सर्वाधिक सहायक कारक हो उसकी करण संज्ञा होती है।

प्रकृष्ट उपकारक का अर्थ सबसे अधिक सहायक अर्थात् जिसके व्यापार के अनन्तर क्रिया की सिद्धि होती है उसे प्रकृष्ट उपकारक कहते हैं।

जैसे :– **रामेण बाणेन हतो बाली** (राम ने बाण से बाली को मारा) यहाँ बाण के व्यापार के अनन्तर ही हनन क्रिया होती है, इसलिये यह प्रकृष्ट उपकारक है और इसलिये इसकी करण संज्ञा होती है।

सूत्र संख्या – 895

मूल सूत्र :– ''कर्तृ–करणयोस्तृतीया''।

अनभिहिते कर्त्तरि करणे च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो बाली।

अर्थ :– अनुक्त कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है।

जैसे :– रामेण बाणेन हतो बाली (राम ने बाण से बाली को मारा) यहाँ राम कर्ता है, बाण करण है और बाली कर्म। हतः यहाँ कर्म में प्रत्यय हुआ है। इसलिये यहाँ कर्ता अनुक्त है और करण भी। दोनों से तृतीया विभक्ति हुई। उक्त होने से कर्म में प्रथमा विभक्ति हुई।

g g g g g g

Dr. Sandhya
Assistant Profession Sanskrit
GDC, Samba

"लघु सिद्धान्त कौमुदी"

सूत्र संख्या – 893 – 903

सूत्र संख्या – 896

मूल सूत्र :– "कर्मणा यम् अभिप्रैति स सम्प्रदानम्"।

दानस्य कर्मणा यम् अभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्।

अर्थ :– कर्ता दान क्रिया के कर्म के द्वारा जिससे सम्बंध सूत्र का फलितार्थ यह है कि "क्रिया के उद्देश्य को सम्प्रदान कहा जाता है।

सूत्र संख्या – 897

मूल सूत्र :– "चतुर्थी सम्प्रदाने"।

विप्राय गां ददाति।

अर्थ :– सम्प्रदान में चतुर्थी होती है।

जैसे :– **विप्राय गां ददाति** (ब्राह्मण को गौ देता है) यहाँ कर्ता दान क्रिया के कर्म गौ के द्वारा विप्र के साथ सम्बंध करना चाहता है अर्थात् दान क्रिया का उद्देश्य विप्र है, अतः विप्र का सम्प्रदान संज्ञा हुई और उससे चतुर्थी हुई।

सूत्र संख्या – 898 (चतुर्थी विभक्तिसूत्रम्)

मूल सूत्र :– "नमः स्वस्ति–स्वाहा–स्वधाऽलं–वषड्योगाच्च"।

एभिर्योगे चतुर्थी। हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थग्रहणम् तेन – दैत्येभ्यो हरिरलं, प्रभु समर्थः, शक्त इत्यादि।

अर्थ :– नमस्, कल्याण, स्वाहा, स्वधा, समर्थ और वषट् – इन अव्यय शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है।

स्वाहा देवताओं को देने और स्वधा पितरों के देने में प्रयुक्त होते हैं।

हरये नम :– (विष्णु भगवान् के लिये नमस्कार), प्रजाभ्यः स्वस्ति (प्रजा के लिये कल्याण हो)

अग्नये स्वाहा :– (अग्नि के लिये देता हूँ)

पितृभ्यः स्वधा :– (पितरों के लिये देता हूँ)

इन वाक्यों में नमः आदि अव्ययपदों के योग में चतुर्थी विभक्ति हुई।

अलमितीति :– इस सूत्र में आये हुए 'अलम्' पद का यहाँ 'समर्थ' अर्थ ही ग्रहण किया जाता है अर्थात् समर्थ अर्थवाचक शब्दों के योग में चतुर्थी आती है न केवल 'अलम्' के योग में है।

तेनेति :– इसलिये दैत्येभ्यो हरिः अलम्, प्रभुः समर्थः शक्तः दैत्यों के लिये भगवान विष्णु समर्थ है। इस वाक्य में 'अलम्' के योग में चतुर्थी हुई है और अलम् के अर्थवाले 'समर्थः', शक्तः आदि के योग में भी

'वषट्' शब्द का प्रयोग वेद में देवताओं को देने के अर्थ में होता है।

सूत्र संख्या – 899

मूल सूत्र :– ''ध्रुवम् अपायेऽपादानम्''

अपायो विश्लेषः, तस्मिन् साध्ये यद् ध्रुवम् अवधिभूतं कारकं तद् अपादानं स्यात्।

अर्थ :– अपाय विश्लेष – अलग होने को कहते हैं। विश्लेष जब किया जा रहा हो, उसमें जो स्थिर अर्थात् अवधि – रूपकारक हो वह उपादान होता है।

सूत्र संख्या – 900

मूल सूत्र :– ''अपादाने पञ्चमी''।

ग्रामाद् आयाति। धावतोऽश्वात् पतति – इत्यादि।

अर्थ :– अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है।

जैसे :– **ग्रामाद् आयाति** :– (गाँव से आता है) यहाँ गांव से अलग होना सिद्ध हो रहा है, उसमें अवधि गाँव है, इसलिये उसकी अपादान संज्ञा हुई और तब पञ्चमी विभक्ति आई।

धावतोऽश्वात् पतति :– (दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है) यहां पतन क्रिया से अलग होना सिद्ध हो रहा है, उसमें अवधि है अश्व, इसलिये उसकी अपादान संज्ञा हुई और पञ्चमी विभक्ति आई।

सूत्र संख्या – 901

मूल सूत्र :– ''षष्ठी शेषे''।

कारक – प्रातिपदिकार्थ – व्यतिरिक्तः स्वस्वाभिभावाऽदिः संबंधः शेषः, तत्र षष्ठी। राज्ञः पुरुषः। कर्मादीनम् अपि संबंध – मात्रविवक्षायां षष्ठ्येव। सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुः स्मरति। एधोदकस्योपुस्कुरुते। भजे शंभोश्चरणयोः।

अर्थ :– कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्वस्वामिभाव आदि सम्बन्ध शेष हैं, उसमें षष्ठी आती है।

सूत्र में शेष पद है, उसका अर्थ है बाकी। बाकी अर्थों में षष्टी हों कर्ता आदि कारकों में तृतीया आदि विभक्ति कही गई है और प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा। इनसे बाकी बचा है संबंध रूप अर्थ, उसी में षष्ठी होती है।

संबंध अनेक हैं – स्वामी और भृत्य का संबंध स्वस्वामि–भाव, पुत्र और पिता का संबंध जन्यजनकभाव आदि। इन सभी सम्बंधों में षष्ठी विभक्ति होती है।

राज्ञः पुरुषः (राजा का आदमी, सरकारी आदमी) यहाँ राजा और पुरुष का स्वस्वामिभाव संबंध है, इसलिये 'राज्ञः' में षष्ठी हुई।

कर्मादीनामिति :– कर्म आदि कारकों को भी संबंधमात्र विवक्षा करने में षष्ठी विभक्ति होती है।

सतां गतम् :– (सत्यपुरुष–संबंधी गमन) – यहां कर्ता 'सत्' की संबंध मात्र की विवक्षा में षष्ठी हुई।

सर्पिषो जानीते :– (घी के द्वारा प्रवृत्त होता है) – यहां 'सर्पिष्' करण है, उसकी अविवक्षा कर सम्बंधमात्र में षष्ठी हुई।

सूत्र संख्या – 902

मूल सूत्र :– ''आधारोऽधिकरणम्''।

कर्तृ–कर्मद्वारा तन्निष्ठ–क्रियाया आधारः कारकम् अधिकरणं स्यात्।

अर्थ :– कर्ता और कर्म के द्वारा उसमें रहने वाली क्रियाओं का आधार कारक अधिकरण संज्ञक हो।

अधिकरण क्रिया का साक्षात् आधार नहीं होता। वह कर्ता और कर्म का आधार होता है और कर्ता कर्म क्रिया के – इस प्रकार परम्परा से अधिकरण क्रिया का आधार सिद्ध होता है।

तात्पर्य यह है कि कर्म आदि भी तो कारक का क्रिया के साथ संबंध विशेष ही होते हैं। यदि उनके कर्म आदि विशेष सूत्र की अविवक्षा हो तो सामान्य संबंध ही रह जाता है, तब षष्ठी ही आती है।

सूत्र संख्या – 903

मूल सूत्र :– ''सप्तम्यधिकरणे च''।

अधिक रणे सप्तमी स्यात्। चकाराद् दूराऽन्तिकाऽर्थेभ्यः। औपश्लेषिकः वैषयिकः, अभिव्यापकश्च इति आधारस्त्रिधा। कटे आस्ते। स्थाल्यां पचति। मोक्षे इच्छास्ति। सर्वस्मिन्नात्माऽस्ति। वनस्य दूरे अन्तिके वा।

अर्थ :– अधिकरण में सप्तमी विभक्ति होती है।

चकारादिति :– सूत्र में पढ़े हुए च पद से दूर और अन्तिम अर्थ के वाचक शब्दों से भी सप्तमी होती है।

औपश्लेषिक इति :– आधार तीन प्रकार का है –

1. औपश्लेषिक 2. वैषयिक 3. अभिव्यापक।

वैषयिक :, अभिव्यापक।

1. **औपश्लेषिक** – अपश्लेष से किया हुआ औपश्लेषिक अर्थात् जहाँ आधार कर्ता आदि से संयोग आदि संबंध होता है, वहाँ उसे औपश्लेषिक कहते हैं।

जैसे :– **कटे आस्ते** :– (चटाई पर है) – यहाँ आसन क्रिया के कर्ता का आधार कट के साथ संयोग संबंध है। इसलिये कट औपश्लेषिक आधार है।

वैषयिक :– उस आधार को कहते हैं जो विषय को लेकर होता है। जैसे :–

मोक्षे इच्छाऽस्ति : (मोक्ष के विषय में इच्छा है) यहाँ मोक्ष वैषयिक आधार है, क्योंकि यह इच्छा का विषय है।

अभिव्यापक :– उस आधार को कहते हैं जहाँ सम्पूर्ण अवयवों में व्याप्ति हो। जैसे :–

तिलेषु तैलम् :– (तिलों में तेल है) यहाँ तिल आधार है। उनके सभी अवयवों में तैल है। इसीलिये यह अभिव्यापक आधार है।

स्थाल्यां पचति :– (चावल पतीली, में पकाता है) – यहाँ स्थाली पाकक्रिया का आधार होने से अधिकरण है, अतः इससे सप्तमी हुई। यहाँ आधार का सम्बन्ध संयोग है, अतः यह औपश्लैषिक आधार है।

सर्वस्मिन्नात्मास्ति :– (सब में आत्मा है) – यहां आत्मकर्तृक सत्ता का आधार होने से 'सर्व' अधिकरण है। अतः इससे सप्तमी हुई। व्याप्ति के द्वारा होने से यह अभिव्यापक आधार है।

वनस्य दूरे अन्तिके वा :– (वन से दूर या निकट) यहाँ दूर और समीप अर्थ के वाचक दूर और अन्तिक शब्दों से सप्तमी हुई।

g g g g g g

Dr. Sandhya
Assistant Profession Sanskrit
GDC, Samba

कृदन्त प्रत्यय=क्त, क्तवतु, शतृ, शानच्, अनीयर्, क्त्वा, तुमुन्

पाठ परिचय :–

''धातु व शब्द के अन्त में जो शब्दांश जुड़ कर अर्थ को परिवर्तित कर देते हैं, उन्हें प्रत्यय कहते हैं।'' अर्थात् प्रत्यय एक शब्दांश है, जो किसी शब्द या धातु से जुड़कर उसके अर्थ को बदलने में स्मर्थ होता है। एक शब्द या धातु के साथ अनेक प्रत्यय जुड़कर उसको अनेक अर्थों में परिवर्तित कर देते हैं।

जैसे :– पठ् + त्वा = पठित्वा (पढ़कर)

पठ् + तुम् = पठितुम् (पढ़ने के लिए)

पठ + तव्य = पठितव्य (पढ़ना चाहिए)

पठ् + क्त = पठित् (पढ़ा) आदि।

संस्कृत में सुप् तथा तिङ् प्रत्ययों के अतिरिक्त प्रत्ययों को तीन भागों में बांटा जाता है।

1. कृदन्त प्रत्यय 2. तद्धित प्रत्यय 3. स्त्री प्रत्यय

शीर्षक : "कृदन्त प्रत्यय" (Verbal Suffix)

जो प्रत्यय धातु के साथ जुड़कर शब्दों का नव निर्माण करते हैं, उन्हें कृत् प्रत्यय कहते हैं। कृत् प्रत्ययों के योग से बनने वाले शब्द कृदन्त कहलाते हैं। कृत् प्रत्ययों के योग से संज्ञा, विशेषण व क्रिया विशेषण आदि शब्द भी बनते हैं। प्रमुख कृत् प्रत्यय निम्नांकित हैं :–

क्त – क्तवतु, शतृ–शानच्, तव्य–अनीयर्, क्त्वा, तुमुन् आदि।

क्त प्रत्यय :– क्त का 'त' शेष रहता है। क्त का प्रयोग प्रायः कर्म वाच्य व भाववाच्य में होता है। गया, खाया गया, बोला गया, रोया गया इत्यादि भूतकाल के भाव को प्रकट करने के लिए क्त का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रत्यय के साथ कर्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा विभक्ति हो जाती है। क्त प्रत्यय में कर्म के अनुसार पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग का प्रयोग होता है। जैसे :–

कर्मवाच्य :– क. रामेण पाठः पठितः। (पुल्लिंग)

ख. दीपकेन पुस्तकं पठितम्। (नपु०)

ग. मया विद्या पठिता। (स्त्री०)

भाववाच्य :– क. गोपालेन हसितम्।

ख. तेन हासितम्।

ग. कन्यया लज्जितम्।

क्त प्रत्ययान्त शब्द :– ''त'' शेष

धातु	+	क्त	=	मूलशब्द	अर्थ	पुल्लिगं	स्त्री०	नपु०
कृ	+	क्त	=	कृत	(किया)	कृतः	कृता	कृतम्
क्री	+	क्त	=	क्रीत	खरीदा	क्रीतः	क्रीता	क्रीतम्
नी	+	क्त	=	नीत	लिया	नीतः	नीता	नीतम्
श्रु	+	क्त	=	श्रुत	सुना	श्रुतः	श्रुता	श्रुतम्

भू	+	क्त	=	भूत	हुआ	भूतः	भूता	भूतम्
शक्	+	क्त	=	शक्त	सका	शक्तः	शक्ता	शक्तम्
दृश्	+	क्त	=	दृष्ट	देखा	दृष्टः	दृष्टा	दृष्टम्
गम्	+	क्त	=	गत	गया	गतः	गता	गतम्
पठ्	+	क्त	=	पठित	पढ़ा	पठितः	पठिता	पठितम्
सेव्	+	क्त	=	सेवित	सेवा की	सेवितः	सेविता	सेवितम्
पत्	+	क्त	=	पतित	गिरा	पतितः	पतिता	पतितम्
कथ्	+	क्त	=	कथित	कहा	कथितः	कथिता	कथितम्
पा	+	क्त	=	पीत	पिया	पीतः	पीता	पीतम्
स्था	+	क्त	=	स्थित	रूका	स्थितः	स्थिता	स्थितम्

क्तवतु प्रत्यय

क्तवतु प्रत्यय :– क्तवतु का 'तवत्' शेष रहता है। इस प्रत्यय का प्रयोग कर्तृवाच्य में होता है। यह भी भूतकालिक प्रत्यय है। इसके तीनों लिंगों व वचनों के पृथक्–2 रुप होते हैं। भूतकाल के प्रयोग के लिए यह सबसे सरल प्रत्यय है। जैसे :–

रामः पुस्तकं पठितवान्। (राम ने पुस्तक पढ़ी) पुं०

सीता पुस्तकं पठितवती। (सीता ने पुस्तक पढ़ी) स्त्री०

वृक्षात् फलं पतितवत्। (पेड़ से फल गिरा) नपु०

क्तवतु प्रत्यान्त शब्द :–

क्तवत :– ''तवत्'' शेष

धातु	+	तवत्	=	मूलशब्द	अर्थ	पुं०	स्त्री०	नपु० लिंग
पठ्	+	तवत्	=	पठितवत्	पढ़ा	पठितवान्	पठितवती	पठितवत्
दृश्	+	तवत्	=	दृष्टवत्	देखा	दृष्टवान्	दृष्टवती	दृष्टवत्
क्रीड्	+	तवत्	=	क्रीडितवत	खेला	क्रीडितवान्	क्रीडितवती	क्रीडितवत्
पा	+	तवत्	=	पीतवत्	पिया	पीतवान्	पीतवती	पीतवत्
कृ	+	तवत्	=	कृतवत्	किया	कृतवान्	कृतवती	कृतवत्

नम्	+	तवत्	=	नतवत्	नमस्कार किया	नतवान्	नतवती	नतवत्
गम्	+	तवत्	=	गतवत्	गया	गतवान्	गतवती	गतवत्

शतृ – शानच् प्रत्यय :–

ये दोनो प्रत्यय वर्तमान कालिक हैं। इनका अर्थ होता है पढ़ता हुआ, लिखता हुआ बोलता हुआ आदि।

शतृ प्रत्यय का 'अत्' शेष रहता है। इसका प्रयोग परस्मै पदी धातुओं के बाद होता है।

शानच् प्रत्यय में आन या मान शेष रहता है। इसका प्रयोग आत्मनेपदी धातुओं के बाद में होता है।

शतृ प्रत्ययान्त शब्द :– 'अत्' शेष

धातु	+	अत्	=	मूलशब्द	अर्थ	पुं०	स्त्री०	नपुं०
पठ्	+	अत्	=	पठत्	पढ़ता हुआ	पठन्	पठन्ती	पठत्
गम	+	अत्	=	गच्छत्	जाता हुआ	गच्छन्	गच्छन्ती	गच्छत्
लिख	+	अत्	=	लिखत्	लिखता हुआ	लिखन्	लिखन्ती	लिखत्
धाव	+	अत्	=	धावत्	दौड़ता हुआ	धावन्	धावन्ती	धावत्
चल	+	अत्	=	चलत्	चलता हुआ	चलन्	चलन्ती	चलत्

शानच प्रत्ययान्त शब्द :– 'मान' शेष

धातु	+	मान	=	मूलशब्द	अर्थ	पुं०	स्त्री०	नपुं०
सह्	+	मान	=	सहमान	सहता हुआ	सहमानः	सहमाना	सहमानम्
सेव्	+	मान	=	सेवमान	सेवा करता हुआ	सेवमानः	सेवमाना	सेवमानम्
लभ्	+	मान	=	लभमान	पाते हुए	लभमानः	लभमाना	लभमानम्
वृत्	+	मान	=	वर्तमान	होते हुए	वर्तमानः	वर्तमाना	वर्तमानम्
कृ	+	मान	=	कुर्वाण	करते हुए	कुर्वाणः	कुर्वाणा	कुर्वाणम्

等 ९ ९ ९ ९ ९ ९

क्त्वा प्रत्यय :– 'त्वा' शेष

इसमें 'क्' का लोप हो जाता है तथा 'त्वा' शेष रहता है।

जैसे :– **सः पठित्वा गच्छति** = वह पढ़कर जाता है।

त्वा का प्रयोग इस प्रकार होता है :–

कृ	+	त्वा	=	कृत्वा	=	करके।
दा	+	त्वा	=	दत्त्वा	=	देकर।
हस्	+	त्वा	=	हसित्वा	=	हंसकर।
लिख्	+	त्वा	=	लिखित्वा	=	लिखकर।
दृश्	+	त्वा	=	दृष्ट्वा	=	देखकर।
भू	+	त्वा	=	भूत्वा	=	होकर।
नम्	+	त्वा	=	नत्वा	=	नमस्कार कर।
गम	+	त्वा	=	गत्वा	=	जाकर।
पा	+	त्वा	=	पीत्वा	=	पीकर
नी	+	त्वा	=	नीत्वा	=	ले जाकर।

अनीयर् प्रत्यय :– इसमें कर्ता तृतीयान्त और कर्म प्रथमान्त होता है। इसका अर्थ चाहिए या योग्य होता है।

जैसे :– 1. त्वया पाठः स्मरणीयः – (तुम्हें पाठ याद करना चाहिए) पुं०

2. मया विद्या पठनीया – (मुझे विद्या पढ़नी चाहिए) स्त्री०

3. त्वया कार्य करणीयम् – (तुम्हें कार्य करना चाहिए) नपुं०

अनीयर् प्रत्ययान्त शब्द :– 'अनीय' शेष

धातु	+	अनीय	=	मूलशब्द	अर्थ	पुं०	स्त्री०	नपुंसक०

पठ्	+	अनीय	=	पठनीय	पढ़ना चाहिए	पठनीयः	पठनीया	पठनीयम्
दा	+	अनीय	=	दानीय	देना चाहिए	दानीयः	दानीया	दानीयम्
कृ	+	अनीय	=	करणीय	करना चाहिए	करणीयः	करणीया	करणीयम्
कथ्	+	अनीय	=	कथनीय	कहना चाहिए	कथनीयः	कथनीया	कथनीयम्
गम्	+	अनीय	=	गमनीय	जाना चाहिए	गमनीयः	गमनीया	गमनीयम्

तुमुन् प्रत्यय :– 'तुम्' शेष

तुमुन् प्रत्यय 'के लिए' अर्थ में धातु के साथ तुमुन् प्रत्यय लगता है। तुमुन् का 'तुम्' शेष रह जाता है। जैसे :– सः पठितुम विद्यालयं गच्छति = वह पढ़ने के लिए विद्यालय जाता हे।

तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द :– 'तुम्'

गम्	+	तुम्	=	गन्तुम्	=	जाने के लिए।
दा	+	तुम्	=	दातुम्	=	देने के लिए।
हस्	+	तुम्	=	हसितुम्	=	हंसने के लिए।
लिख्	+	तुम्	=	लिखितुम्	=	लिखने के लिए।
स्था	+	तुम्	=	स्थातुम्	,	भू + तुम = भवितुम्
दृश्	+	तुम्	=	द्रष्टुम्	,	कृ + तुम् = कर्तुम्
पच्	+	तुम्	=	पक्तुम्	,	श्रु + तुम् = श्रोतुम्।

ඉඉඉඉඉඉ

Sanjeev Upadhyay
Asstt. Professor in Sanskrit
GCW, Udhampur

अनुवाद – किसी भाषा के शब्दार्थ को दूसरी भाषा के शब्दों में बदलने को अनुवाद कहते हैं।

उद्देश्यः–

(क) छात्रों में संस्कृत से हिन्दी तथा हिन्दी से संस्कृत भाषा में अनुवाद करने की क्षमता को बढ़ाना है।

(ख) अनुवाद करने के लिए आवश्यक तत्त्वों यथा – कारक, वचन, प्रत्यय, कर्त्ता, क्रिया आदि का सूक्ष्मज्ञान प्रदान करना।

(ग) अपठित संस्कृत पद्यांशों अथवा किसी भी प्रकार के संस्कृत वाक्यों का अनुवाद करना तभी सम्भव है, जिस समय संस्कृत व्याकरण तथा शब्दों के अर्थ का समुचित ज्ञान हो। अतः छात्रों में अनुवाद करने की क्षमता को बढ़ाना है।

(घ) संस्कृत पद्यों के द्वारा छात्रों को नीति विषयक ज्ञान प्रदान करना।

किसी भी भाषा को सीखने के लिए उस भाषा का व्याकरण एक प्रमुख साधन होता है। भाषा को सीखने के लिए अनुवाद विधि उत्तम मानी गयी है। अनुवाद विधि के द्वारा धीरे–धीरे अभ्यास करने पर उस भाषा पर अधिकार बढ़ता है अतः भाषा के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए अनुवाद प्रारम्भिक सीढ़ी है।

कारक :– क्रिया के सम्पादन में जिन शब्दों का उपयोग होता है, उन्हें कारक कहते हैं।

1. **कर्त्ता कारक –** क्रिया को करने वाला कर्त्ता कहलाता है। जैसे – रामः पठति, सः गच्छति, अहं ग्रामं गच्छामि आदि।
2. **कर्म कारक –** जिस पदार्थ को कर्त्ता सबसे अधिक चाहता है, उसे कर्म कहते है। जैसे सः पुस्तकं पठति, रमा पत्रं लिखति, अहं फलं खादामि आदि।
3. **करण –** क्रिया की सिद्धि में जो अत्यन्त सहायक होता है, उसे करण कहते हैं। जैसे – त्वं हस्तेन स्पृशासि, अहं नासिकया जिघ्रामि, भीमः गदया ताडयति आदि।

4. **सम्प्रदान –** दान के कर्म के द्वारा कर्त्ता जिसे सन्तुष्ट करना चाहता है, वह पदार्थ सम्प्रदान कहलाता है। अर्थात् जिसमें दी हुई वस्तु सर्वथा दी जाती है। जैसे – सः ब्राह्मणाय गां ददाति आदि।

5. **अपादान –** जिस स्थिर वस्तु से कोई वस्तु पृथक् (अलग) हो उसे अपादान कहते हैं जैसे – सः ग्रामाद् आयाति, वृक्षात् पत्राणि पतन्ति आदि।

6. **सम्बन्ध –** स्वामी तथा भृत्य, कार्य तथा कारणादि सम्बन्ध दिखाने के लिए षष्ठी का प्रयोग होता है। संस्कृत में सम्बन्ध को कारक नहीं माना जाता है क्योंकि सम्बन्ध में संज्ञा का क्रिया के साथ सम्बन्ध नहीं होता है। जैसे – राज्ञः पुरुषः आदि

7. **अधिकरण –** कर्त्ता और कर्म द्वारा किसी भी क्रिया का आधार अधिकरण कहलाता है। जैसे – अहं कक्षायां पठामि, सः आसने उपविशति आदि।

8. **सम्बोधन –** सम्बोधन भी कारकों में परिगणित नहीं होता है। इसका कर्त्ता कारक में अन्तर्भाव हो जाता है।

इस प्रकार कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, और अधिकरण – ये छः कारक हैं। सम्बन्ध तथा सम्बोधन को कारक नहीं माना जाता है।

विभक्ति, कारक तथा प्रत्यय परिचय –

विभक्ति	कारक	अर्थ/चिह्न	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कर्त्ता	ने	छात्रः (सु्) (छात्र ने)	छात्रौ (औ) (दो छात्रों ने)	छात्राः (जस्) (सब छात्रों ने)
द्वितीया	कर्म	को	छात्रम् (अम्) (छात्र को)	छात्रौ (औट्) (दो छात्रों को)	छात्रान् (शस्) (सब छात्रों को)
तृतीया	करण	से, के द्वारा	छात्रेण (टा) (छात्र से)	छात्राभ्याम् (भ्याम्) (दो छात्रों से)	छात्रैः (भिस्) (सब छात्रों से)
चतुर्थी	सम्प्रदान	के लिए	छात्राय (ङे) (छात्र के लिए)	छात्राभ्याम् (भ्याम्) (दो छात्रों के लिए)	छात्रेभ्यः (भ्यस्) (सब छात्रों के लिए)
पंचमी	अपादान	से (अलग)	छात्रात् (ङसि) (छात्र से)	छात्राभ्याम् (भ्याम्) (दो छात्रों से)	छात्रेभ्यः (भ्यस्) (सब छात्रों से)
षष्ठी	सम्बन्ध	का, के, की	छात्रस्य (ङस्) (छात्र का)	छात्रयोः (ओस्) (दो छात्रों का)	छात्राणाम् (आम्) (सब छात्रों का)

सप्तमी	अधिकरण	में, पर	छात्रे (ङि) (छात्र में)	छात्रयोः (ओस्) (दो छात्रों में)	छात्रेषु (सुप्) (सब छात्रों में)
सम्बोधन		हे, भो	हे छात्र! (सु) (हे छात्र)	हे छात्रौ! (औ) (हे दो छात्रों)	हे छात्राः! (जस्) (हे सब छात्रों)

इस प्रकार कर्त्ता, कर्म, करण आदि बताने के लिए ने, को, से आदि संज्ञा या सर्वनाम के साथ जोड़ दिये जाते हैं। जैसे – बालक ने, बालक को, बालक से आदि। उसी प्रकार जिस समय संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करना हो तो संस्कृत शब्दरूपों का ज्ञान परमावश्यक है, जिससे उनका हिन्दी में अनुवाद किया जा सके। जैसे – रामाय–राम के लिए, कक्षायाम्–कक्षा में, वृक्षात्–वृक्ष से, फलानि–फलों को आदि।

कर्त्ता, (क्रिया, पुरुष व वचन)

संस्कृत में कर्त्ता व क्रिया का मिलान पुरुष व वचन के अनुसार किया जाता है। कर्त्ता जिस पुरुष तथा जिस वचन में होगा, क्रिया भी उसी पुरुष तथा वचन में होगी।

संस्कृत में पुरुष तीन प्रकार के होते हैं –

प्रथम पुरुष

मध्यम पुरुष

उत्तम पुरुष

संस्कृत के वचन भी तीन होते हैं –

एकवचन – एक का बोध

द्विवचन – दो का बोध

बहुवचन – बहुत का बोध

जैसे –

सर्वनाम	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष पुल्लिङ्ग	सः (वह)	तौ (वे दो)	ते (वे सब)
स्त्रीलिङ्ग	सा (वह)	ते (वे दो)	ताः (वे सब)
संज्ञा	रामः	रामौ	रामाः
मध्यम पुरुष	त्वम् (तुम)	युवाम् (तुम दो)	यूयम् (तुम सब)
उत्तम पुरुष	अहम् (मैं)	आवाम् (हम दो)	वयम् (हम सब)

क्रिया (लट् लकार) (चल् – चलना)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चलति	चलतः	चलन्ति
मध्यम पुरुष	चलसि	चलथः	चलथ
उत्तम पुरुष	चलामि	चलावः	चलामः

नियम – जिस पुरुष और जिस वचन में कर्त्ता है, उसी पुरुष और वचन की क्रिया का भी प्रयोग होता है। जैसे –

सः चलति	=	वह चलता है।
तौ चलतः	=	वे दो चलते हैं।
ते चलन्ति	=	वे सब चलते हैं।
सा चलति	=	वह चलती हैं।
ते चलतः	=	वे दो चलती हैं।
ताः चलन्ति	=	वे चलती हैं।
रामः चलति	=	राम चलता हैं।
रामौ चलतः	=	दो राम चलते हैं।
रामाः चलन्ति	=	सब राम चलते हैं।

इसी तरह सुगमता से संस्कृत से हिन्दी में तथा हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद करने के लिए शब्दरूपों तथा धात्वादि का ज्ञान भी परमावश्यक है। छात्रों को चाहिए कि वे पूर्व में दिए हुए शब्द की तरह पुल्लिङ्ग शब्दों (राम, देव, हरि आदि) रूपों, रमा, लता, नदी आदि स्त्रीलिङ्ग शब्दों तथा फल, वारि आदि नपुंसकलिङ्ग शब्द रूपों के साथ, तद्, अस्मद्, युष्मद् आदि सर्वनाम शब्दों के रूपों को कण्ठस्थ करें।

धातु – अर्थ की दृष्टि से धातुओं को दो भागों में बाँटा जाता है – आत्मनेपद तथा परस्मैपद। कुछ धातुएँ आत्मनेपदीय होती है तथा कुछ परस्मैपदीय तथा कुछ उभयपदीय होती हैं। परस्मै पद के नौ तथा आत्मनेपद के नौ प्रत्यय (अठारह) होते है यथा –

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तिप् (ति)	तस् (तः)	झि (अन्ति)
मध्यम पुरुष	सिप् (सि)	थस् (थः)	थ (थ)
उत्तम पुरुष	मिप् (मि)	वस् (वः)	मस् (मः)

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	त	आताम्	झ
मध्यम पुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरुष	इट्	वहिङ्	महिङ्

लकार – संस्कृत व्याकरण में लकार काल व अवस्थाओं को व्यक्त करने के लिए होते हैं। इस प्रकार संस्कृत में दस लकार होते हैं :–

1.	लट् लकार	=	वर्तमान काल
2.	लुङ् लकार	=	आसन्न् भूतकाल
3.	लिट् लकार	=	परोक्ष भूतकाल
4.	लङ् लकार	=	अनद्यतन भूत
5.	लृट् लकार	=	सामान्य भविष्य
6.	लुट् लकार	=	अनद्यतन भविष्य
7.	लोट् लकार	=	आज्ञार्थक
8.	लिङ् लकार	=	विधिलिङ् (विध्यर्थक)
9.	आशीर्लिङ् लकार	=	आशीर्वाद

10. लृङ् लकार = क्रियातिपत्ति

नोट – लेट् लकार का प्रयोग केवल वैदिक भाषा में होता है। इन 10 लकारों में से व्यावहारिक ज्ञान तथा अनुवाद के लिए लट्, लृट्, लङ्, लोट्, विधिलिङ्ग इन पाँच लकारों का ज्ञान सर्वप्रथम परमावश्यक है।

परस्मैपद (पठ् – पढ़ना) लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पठति	पठतः	पठन्ति
मध्यम पुरुष	पठसि	पठथः	पठथ
उत्तम पुरुष	पठामि	पठावः	पठामः

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
उत्तम पुरुष	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

लङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
मध्यम पुरुष	अपठः	अपठतम्	अपठत
उत्तम पुरुष	अपठम्	अपठाव	अपठाम

लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पठतु	पठताम्	पठन्तु

मध्यम पुरुष	पठ	पठतम्	पठत
उत्तम पुरुष	पठानि	पठाव	पठाम

विधि लिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
मध्यम पुरुष	पठेः	पठेतम्	पठेत
उत्तम पुरुष	पठेयम्	पठेव	पठेम

पठ् धातु की तरह ही दृश् (पश्य्) = देखना, गम् (गच्छ) जाना, खाद् = खाना, पत् = गिरना, हस् = हँसना, रक्ष् = रक्षा करना, वद् = बोलना, स्मृ (स्मर्) = याद करना, स्था (तिष्ठ्) = ठहरना, खड़े होना, चल् = चलना आदि धातुओं के रूप भी बनते हैं। अतः इन धातुओं के रूपों को भी कण्ठस्थ करना चाहिए।

आत्मने पद (लभ् – पाना)

लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लभते	लभेते	लभन्ते
मध्यम पुरुष	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उत्तम पुरुष	लभे	लभावहे	लभामहे

लृट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
मध्यम पुरुष	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उत्तम पुरुष	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
मध्यम पुरुष	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उत्तम पुरुष	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
मध्यम पुरुष	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उत्तम पुरुष	लभै	लभावहै	लभामहै

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लभेत्	लभेयाताम्	लभेरन्
मध्यम पुरुष	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उत्तम पुरुष	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

इसी प्रकार मुद् (मोद्) = प्रसन्न होना, वृध् (वर्ध) = बढ़ना, सह् = सहना, कम्प् = काँपना आदि आत्मनेपदीय धातुओं के रूप भी बनते हैं।

अभ्यास (संस्कृत से हिन्दी)

1.	बालकः पुस्तकं पठति।	=	बालक पुस्तक पढ़ता है।
2.	ते फलानि खादन्ति।	=	वे सब फल खाते हैं।
3.	अहं गृहं गच्छामि।	=	मैं घर जाता हूँ।

4.	तौ पत्रे लिखतः।	=	वे दो पत्र लिखते हैं।
5.	त्वं जलं पिबसि।	=	तुम जल पीते हो।
6.	ते कुत्र गच्छन्ति?	=	वे कहाँ जाते हैं?
7.	आवाम् पठिष्यावः	=	हम दो पढ़ेंगे।
8.	यूयं विद्यालयं गच्छथ।	=	तुम सब विद्यालय जाते हो।
9.	वृक्षात् फलानि पतन्ति।	=	वृक्ष से फल गिरते हैं।
10.	इदम् पुस्तकं अस्ति।	=	यह पुस्तक है।
11.	एतानि चित्राणि मम सन्ति।	=	ये चित्र मेरे हैं।
12.	सः छात्रेण सह गच्छति।	=	वह छात्र के साथ जाता है।
13.	सा पत्या सह गच्छति।	=	वह पति के साथ जाती है।
14.	शिशुः मातरं द्रक्ष्यति।	=	शिशु माता को देखेगा।
15.	त्वम् श्वः गमिष्यसि।	=	तुम कल जाओगे।
16.	अरुणः प्रातः षड्वादने उत्तिष्ठति।	=	अरुण प्रातः छः बजे उठता है।
17.	पिता सार्धसप्तवादने आगच्छति।	=	पिता जी साढ़े सात बजे आते हैं।
18.	प्रिया पादोनदशवादने स्वपिति	=	प्रिया पौने दस (9:45) बजे सोती है।
19.	चर्मकारः पादरक्षाम् अयच्छत्।	=	मोची ने चप्पल दी।
20.	सज्जनः जनान् असेवत्।	=	सज्जन ने लोगों की सेवा की।
21.	महिलाः श्लोकं अगायन्।	=	महिलाओं ने श्लोक गाया।
22.	यूयं पुस्तकं अपश्यत।	=	तुम सब ने पुस्तक देखी।
23.	अहं विषयं अस्मरम्।	=	मैंने विषय याद किया।
24.	सः गजं अपश्यत्।	=	उसने हाथी देखा।

25.	अहं संस्कृतपण्डितः भविष्यामि।	=	मैं संस्कृत विद्वान् बनूँगा।
26.	दिनद्वयस्य अनन्तरं पुस्तकं प्रतिदास्यामि।	=	दो दिन बाद पुस्तक लौटाऊगाँ।
27	भवान् यथा वदिष्यति तथा करिष्यामः।	=	आप जैसा कहेंगे वैसा हम करेंगे।
28.	सा अन्यायं न सहिष्यते।	=	वह अन्याय नही सहन करेगी।
29.	त्वम् वानरं पश्य।	=	तुम बन्दर को देखो।
30.	छात्रः पुस्तकं पठतु।	=	छात्र पुस्तक पढ़े।
31.	यूयं वनं गच्छत।	=	तुम सब वन जाओ।
32.	वयं गीतं गायाम।	=	हम गीत गायें।
33.	त्वं सत्यं वद।	=	तुम सच बोलो।
34.	छात्राः गुरुं नमेयुः।	=	छात्र गुरु को प्रणाम करे।
35.	शिशुः दुग्धं पिबेत्।	=	शिशु दूध पीये।
36.	गुरुः शिष्यं प्रश्नं पृच्छेत्।	=	गुरु शिष्य को प्रश्न पूछे।
37.	रमा भूषणानि धारयति।	=	रमा गहने पहनती है।
38.	जनाः कर्णाभ्याम् शृण्वन्ति।	=	लोग कानों से सुनते हैं।
39.	त्वं कलमेन लिखसि।	=	तुम कलम से लिखते हो।
40.	सः जटाभिः तापसः प्रतीयते।	=	वह जटाओं से तपस्वी लगता है।
41.	वयं जीवनाय खादामः।	=	हम जीने के लिए खाते हैं।
42.	कृषकः राष्ट्राय अन्नम् यच्छति ।	=	किसान देश को अनाज देता है।
43.	पर्वतात् नदी प्रभवति।	=	पर्वत से नदी निकलती है।
44.	कामात् क्रोधः जायते।	=	काम से क्रोध उत्पन्न होता है।

45.	यूयं अध्यापकात् पठथ।	=	तुम सब अध्यापक से पढ़ते हो।
46.	बालकाय मोदकं रोचते।	=	बालक को लड्डू अच्छा लगता है।
47.	मोक्षाय हरिं भजति।	=	मोक्षं के लिए हरि को भजता है।
48.	अग्नये स्वाहा।	=	अग्नि को स्वाहा
49.	आचार्याय नमः।	=	आचार्य को नमस्कार
50	रमा कूपात् जलं आनयति।	=	रमा कुएँ से जल लाती है।
51.	विद्यालयं उभयतः वृक्षाः सन्ति।	=	विद्यालय के दोनों ओर वृक्ष हैं।
52.	नगरं सर्वतः भवनानि सन्ति।	=	नगर के सब ओर भवन हैं।
53.	रामः अश्वात् पतति।	=	राम घोड़े से गिरता है।
54.	मानवः मृत्योः बिभेति।	=	मनुष्य मृत्यु से डरता है।
55.	रामः मित्रे विश्वसिति।	=	राम मित्र पर विश्वास करता है।
56.	शामः कृष्णस्य तुल्यः अस्ति।	=	शाम कृष्ण के समान है।
57.	ईश्वरः संसारस्य कर्त्ता अस्ति।	=	ईश्वर संसार का कर्त्ता है।
58.	शंखस्य नादः शुभः भवति।	=	शंख की आवाज़ शुभ होती है।
59.	वृक्षस्य उपरि खगाः सन्ति।	=	वृक्ष के ऊपर पक्षी हैं।
60.	त्वं गृहे कार्यं करोषि।	=	तुम घर में काम करते हो।

संस्कृत व्यावहारिक एवं उपयोगि शब्दों के अर्थ

अद्य	आज	सर्वतः	सब ओर
श्वः	कल (आने वाला)	अभितः	दोनों ओर
ह्यः	कल (बीता हुआ)	परितः	चारों ओर
परश्वः	परसों (आने वाला)	समया	पास
परह्यः	परसों (बीता हुआ)	प्रति	की ओर
इदानीम्	इस समय	अनु	पीछे
तदानीम्	उस समय	सह	साथ
कदानीम्	किस समय	जनकः	पिता
आगामी	आने वाला/वाले	माता	माता
गत	बीता हुआ	पितामहः	दादा
मासः	महीना	पितामही	दादी
अत्र	यहाँ	पुत्रः/सुतः	बेटा
कुत्र	कहाँ	पुत्री/सुता	बेटी
तत्र	वहाँ	भ्राता	भाई
यत्र	जहाँ	भगिनी	बहन
कदा	कब	अग्रजः	बड़ा भाई
तदा	तब	अनुजः	छोटा भाई
यदा	जब	अग्रजा	बड़ी बहन
उभयतः	दोनों ओर	पतिः	पति
भार्या	पत्नी	नटः	अभिनेता
पितृव्यः	चाचा	धीवरः	मछुआरा
मातुलः	मामा	सुवर्णकारः	सुनार
चित्रकारः	चित्रकार	आपणिकः	दुकानदार
भारवाहः	भार ढोने वाला	लेखकः	लेखक
चर्मकारः	मोची	शिक्षकः	अध्यापक
नर्तकः	नाचने वाला	विक्रयिकः	विक्रेता
सैनिकः	सैनिक	कृषकः	किसान
कर्मकारः	कर्मचारी	चालकः	चलाने वाला
लिपिकारः	लिपिक	अर्चकः	पूजा करने वाला

Sanjeev Upadhyay
Asstt. Professor in Sanskrit
GCW, Udhampur

अपठित संस्कृत पद्यांशों का हिन्दी अनुवाद :–

1. विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद् धर्मं ततः सुखम्।।

शब्दार्थ –

ददाति	देता है। देती है
विनयं	विनम्रता को
पात्रताम्	सुपात्रता को
आप्नोति	प्राप्त करता है

अर्थ – विद्या (मनुष्य को) विनम्रता देती है (अर्थात् मनुष्य विनयवान् बनता है), विनम्रता से वह सुपात्र कहलाता हैं, सुपात्र होने से वह धन को प्राप्त करता है, धन से धर्मकार्यादि करके पुण्यशाली बनता है, पुण्यशाली होने से सांसारिक सुख को प्राप्त करता है।

2. यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।।

शब्दार्थ –

यौवनं	युवावस्था
प्रभुत्वम्	अधिकार को
अविवेकिता	अज्ञानता
अनर्थाय	अनर्थ के लिए
चतुष्टयम्	चारों

अर्थ – युवावस्था (जवानी), धनदौलत, आधिपत्य (अधिकार) और अज्ञानता (विवेकशून्यता) इन चारों में से एक–एक भी बड़ा अनर्थ (अत्याचार) कराता है। परन्तु जहाँ ये चारों एकत्रित हो वहाँ कौन–सा अनर्थ नहीं होगा ? अर्थात् सभी अनर्थ होगा।

3. कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः।
काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीडैव केवलम्।।

शब्दार्थ –

अर्थः	प्रयोजन
जातेन	जन्म लेने से
चक्षुषा	आँख से
पीडैव	कष्ट/दुःख को ही
किम्	क्या

अर्थ – जिस पुत्र में विद्या और धर्म नहीं है, उसका जन्म लेना निष्फल है। जैसे – नेत्ररत्नहीन और रोगयुक्त आँख से देखना आदि कोई भी काम नहीं होता। अतः वह निरर्थक और दुखदायी है।

4. स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।

शब्दार्थ –

याति	प्राप्त करता है।
येन	जिस से
परिवर्तिनि	परिवर्तनशील, बदलने वाले
मृतः	मृत्यु/मरना
जायते	पैदा होता है।

अर्थ – जो मनुष्य पैदा होकर अपने कुल की अच्छी उन्नति करता है, उसी का जन्म सफल है, क्योंकि नित्य परिवर्तनशील संसार में लोग मरते भी रहते है और पैदा होते रहते हैं।

5. माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा।।

शब्दार्थ –

शत्रु	दुश्मन
पाठितः	पढ़ाता है

	न शोभते	शोभा को प्राप्त नहीं करता है।
	सभामध्ये	सभा के बीच में
	बकः	बगुला

अर्थ – वे माता–पिता शत्रु कहलाते हैं जो अपने बच्चों को नहीं पढ़ाते हैं, और जैसे हंसों के मध्य में बगुला शोभा तथा आदर नहीं पाता है, वैसे ही विद्याहीन सन्तति भी विद्वानों के मध्य में शोभा और आदर प्राप्त नहीं करती।

6. कीटोऽपि सुमनः संगादारोहति सतां शिरः।
अश्माऽपि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः।।

शब्दार्थ –	कीटोऽपि	कीड़ा भी
	सुमनः	पुष्प/फूल
	संगात्	साथ से/योग से
	शिरः	सिर
	अश्माऽपि	पत्थर भी
	महद्भिः	सज्जनों के द्वारा

अर्थ – क्षुद्रजन्तु कीड़ा भी पुष्प के योग से बड़े–बड़े पुरुषों के शिर पर जा बैठता है और पत्थर भी बड़े पुरुषों से मूर्तिरूप से स्थापित करने पर देवभाव को प्राप्त हो जाता है। वैसे ही मूर्ख पुरुष भी विद्वानों की संगति से बुद्धिमान बन जाते हैं।

7. काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।

शब्दार्थ –	विनोदेन	मनोरञ्जन से
	कालः	समय
	धीमताम्	बुद्धिमान लोगों का
	निद्रया	नींद से
	कलहेन	झगड़े के द्वारा

अर्थ – बुद्धिमान लोग अपने जीवन समय को नीतिशास्त्रादि के अध्ययन में बिता कर सार्थक करते हैं और मूर्ख लोग तो जुआ खेलना आदि व्यसनों में ही तथा कलह, निद्रादि में ही अपना जीवन समय बिता देते हैं। अतः नीतिशास्त्रादि के चिन्तन में जीवन व्यतीत करना चाहिए।

8. मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।।

शब्दार्थ –	मातृवत्	माता की तरह/माता के समान
	परदारेषु	परस्त्रियों में
	परद्रव्येषु	दूसरे के धन में (वस्तु में)
	आत्मवत्	अपने समान
	पश्यति	देखता है।

अर्थ – जिस पुरुष की परस्त्रियों में अपनी माता के समान भावना हो, तथा परधन (वस्तु) में ढेले के समान न लेने की भावना हो तथा सब जीवों में आत्म समान दृष्टि हो, वही पण्डित (महापुरुष) कहलाता है।

9. नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा।

विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च।।

शब्दार्थ –	शस्त्रपाणीनां	शस्त्रों को हाथों में धारण करने वाले
	नखिनां	नखों वाले का
	शृङ्गिणाम्	सीगं वालो का
	कर्तव्यः	करना चाहिए
	राजकुलेषु	राज पुरुष

अर्थ – जिसका नियमित स्वभाव न हो जैसे नदियाँ, शस्त्रवाले, सीगंवाले, नखवाले, स्त्रियाँ और राजपुरुष, इनका विश्वास नहीं करना चाहिए।

10. लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रजायते।

लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम्।।

शब्दार्थ –	लोभात्	लालच करने से

	प्रभवति	उत्पन्न होता है
	कामः	कामवासनाएँ, इच्छाएँ
	प्रजायते	पैदा होती है।

अर्थ – लोभ से (लोभनीय वस्तु का प्रतिरोध करने वाले पर) क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से ही कामवासना उत्पन्न होती है, लोभ से असत्य – सत्य का विचार नहीं सूझता, इससे प्राणहानि भी हो जाती है, अतः लोभ ही सब पापों का कारण हैं।

11. सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एषः धर्मः सनातन॥

शब्दार्थ –	ब्रूयात्	बोलना चाहिए
	प्रियं	प्यारा
	एषः	यह
	अनृतं	झूठ/असत्य

अर्थ – प्रिय सत्य बोलना चाहिए, कभी भी अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए, तथा प्रिय झूठ नहीं बोलना चाहिए, यह सनातन धर्म है।

12. न चौरहार्यं न च राजहार्यं, न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यम् विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम्॥

शब्दार्थ –	चौरहार्यं	चोरों द्वारा न चुराने योग्य
	राजहार्यं	राजाओं द्वारा न छीनने योग्य
	भारकारि	भार स्वरूप
	व्यये	खर्च करने पर
	वर्धत	बढ़ता है।
	प्रधान	सर्वश्रेष्ठ

अर्थ – इसे चोरों के द्वारा चुराया नहीं जा सकता और राजाओं के द्वारा छीना नहीं जा सकता। यह भाईयों के द्वारा बाँटा नहीं जा सकता और यह बोझ भी नहीं बढ़ाता। अपितु खर्च करने पर सदा बढ़ता ही है, अतः यह विद्या रूपी धन सभी धनों में श्रेष्ठ है।

13. गुणाः गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति, ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
सुस्वादुतोयाः प्रभवन्ति नद्यः समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः।।

शब्दार्थ –

निर्गुण	दोष
सुस्वादुतोयाः	स्वादिष्ट जल
भवन्ति	हो जाते है/होते है
अपेयाः	न पीने योग्य

अर्थ – गुण गुणीजनों में गुण ही बने रहते है। वे (गुण) निर्गुण (दुर्जन) व्यक्ति के पास जाकर दोष बन जाते है। नदियाँ स्वादिष्ट जल वाली होती है, वे ही समुद्र में मिलकर अपेय (न पीने योग्य) बन जाती हैं।

14. साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।

शब्दार्थ –

विहीनः	रहित
पुच्छ	पूँछ
विषाणहीनः	सींग से रहित
जीवमानः	जीवित रहता हुआ
भागधेयम्	परम सौभाग्य

अर्थ – साहित्य, संगीत और कला से रहित व्यक्ति, सींग और पूंछ से रहित साक्षात् पशु ही है। वह घास न खाते हुए जीवित है, यह तो उस पशु के लिए परम सौभाग्य की बात है।

15. उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।

शब्दार्थ –

उत्सवे	खुशी के समय में
व्यसने	दुःख/विपत्ति में
दुर्भिक्षे	अकाल में
तिष्ठति	खड़ा रहता है/साथ रहता है
यः	जो

बान्धवः मित्र

अर्थ – मांगलिक उत्सवों (कार्यों) में, विपत्ति में, अकाल में और शत्रुओं द्वारा उपद्रव काल में तथा श्मशान में जो साथ देता है, वही सच्चा मित्र होता है।

16. पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते।।

शब्दार्थ – पृथिव्यां पृथ्वी पर

त्रीणि तीन

मूढ़ैः मूर्खों के द्वारा

पाषाणखण्डेषु पत्थर के खण्डों में

अर्थ – पानी, अन्न और सुभाषित पृथ्वी पर ये तीन ही रत्न हैं, परन्तु मूर्खों के द्वारा पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न कहा जाता है।

17. सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

शब्दार्थ – सत्येन सत्य के द्वारा

धार्यते धारण की जाती है

वाति बहती है

प्रतिष्ठितम् स्थित है, समाहित है

तपते तप रहा है

अर्थ – सत्य के द्वारा पृथ्वी धारण की जा रही है, सत्य के द्वारा ही सूर्य तप रहा है। सत्य के द्वारा ही हवा वह रही है अतः ये सब कुछ सत्य में ही समाहित हैं (स्थित हैं) अर्थात् सत्य के बिना कुछ नहीं है।

18. दाने तपसि शौर्ये च विज्ञाने विनये नये।
विस्मयो न हि कर्त्तव्यो बहुरत्ना वसुन्धरा।।

शब्दार्थ – शौर्ये शूरवीरता में

नये नीति में

	विस्मयः	आश्चर्य
	कर्तव्यः	करना चाहिए
	वसुन्धरा	पृथ्वी

अर्थ – दान, तपस्या, वीरता, विज्ञान, विनम्रता और नीति, इन के विषय में कभी भी आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए क्योंकि पृथ्वी बहुत प्रकार के रत्नों से भरी है।

19 सद्भिरेव सहासीत सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत्।।

शब्दार्थ –	सद्भिरेव	सज्जनों के साथ ही
	सहासीत	बैठना चाहिए/रहना चाहिए
	सङ्गतिम्	साथ को
	विवादं	झगड़े को (विवाद)
	किञ्चिद्	कुछ (किसी प्रकार का)
	आचरेत्	व्यवहार करना चाहिए

अर्थ – (मनुष्य को) सज्जनों के साथ ही बैठना चाहिए, सज्जनों के साथ ही संगति करनी चाहिए, सज्जनों के साथ ही वाद–विवाद और मित्रता करनी चाहिए परन्तु असज्जनों (दुर्जनों) के साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

20. धन धान्यप्रयोगेषु विद्यायाः संग्रहेषु च।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्।।

शब्दार्थ –	धान्य	अनाज
	प्रयोगेषु	प्रयोग करने में/खर्च करने में
	संग्रहेषु	इक्ट्ठा करने में
	आहारे	भोजन करने में
	त्यक्त	त्यागना

अर्थ – धन और अनाज को खर्च करने में, विद्या की कमाई करने में, भोजन और आपसी व्यवहार में संकोच का त्याग करने वाला सुखी होता है।

21. न किञ्चित् सहसा कार्यं कार्यं कार्यविदा क्वचित्।
क्रियेत् चेत् विविच्यैव तस्य श्रेयः करस्थितम्।।

शब्दार्थ –

किञ्चिद्	कुछ (किस प्रकार के)
सहसा	अचानक
क्रियेत्	करना चाहिए
विविच्यैव	सोच–विचार करके ही
श्रेयः	सफलता/अच्छा/कल्याण

अर्थ – विद्वान् व्यक्ति को कोई भी कार्य सहसा नहीं करना चाहिए। यदि कोई भली प्रकार सोचकर कार्य करता है अर्थात् सोच–विचार करके कार्य करता है, तो सफलता उसके हाथ में रहती है। अर्थात् हर कार्य में सफलता उसी को प्राप्त होती है जो सोच विचार करके काम करता है।

22. उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः सः साधुरिति कीर्तितः।।

शब्दार्थ –

उपकारिषु	भला करने वाले पर
यः	जो
तस्य	उसका
अपकारिषु	बुरा करने वाले पर
साधुः	सज्जन

अर्थ – उपकार करने वाले के साथ जो सज्जनता से व्यवहार करता है उसकी सज्जनता का क्या अर्थ है ? जो अपकार करने वाले के साथ भी सज्जनता से व्यवहार करता है वही सज्जन (साधु) है।

23. छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे।
फलान्यपि परार्थाय वृक्षाः सत्पुरुषा इव।।

शब्दार्थ –

कुर्वन्ति	करते हैं

	तिष्ठन्ति	खड़े रहते हैं
	स्वयमातपे	स्वयं धूप में
	परार्थाय	दूसरे के लिए
	सत्पुरुषा इव	सज्जनों की तरह

अर्थ – वृक्ष स्वयं धूप में खड़े रहते हैं और दूसरों को छाया देते हैं। उनके फल भी दूसरों के लियें हैं। इसी प्रकार श्रेष्ठ मनुष्य दूसरों के हित के लिये स्वयं कष्ट सहन करते हैं, जो कुछ भी स्वयं अर्जित करते हैं वह सब दूसरों को दे देते हैं।

24. आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया।
पादं सब्रह्मचारिभ्यः पादं कालक्रमेण च।।

शब्दार्थ –	पादम्	एक चौथाई
	आदत्ते	प्राप्त करता है/सीखता है
	स्वमेधया	अपनी बुद्धि से
	कालक्रमेण	समय के क्रम से

अर्थ – विद्यार्थी चौथाई आचार्य से सीखता है, अपनी बुद्धि से चौथाई, अपने साथ पढ़ने वालो से चौथाई और बचा हुआ चौथाई कालक्रम से सीखता है।

25. सदयं हृदयं यस्य भाषितं सत्यभूषितम्।
कायः परहिते यस्य कलिस्तस्य करोति किम्।।

शब्दार्थ –	सदयं	दया से युक्त
	भाषितं	भाषा/वाणी
	कायः	शरीर
	परहिते	दूसरे के हित के लिए
	करोति	करता है
	तस्य	उसका

अर्थ – जिसके हृदय में दया है, जिसकी वाणी सत्य से सुशोभित है, जिसका शरीर परहित में लगा हुआ है, कलि (कलियुग मे) भी उसका क्या बिगाड़ सकता है।

26. यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति।।

शब्दार्थ –		
	न्यायप्रवृत्तस्य	न्याय मार्ग पर चलने वाले
	तिर्यञ्चोऽपि	पशु, पक्षी भी
	अपन्थानम्	गलत मार्ग पर चलने वाले को
	सोदरोऽपि	भाई भी
	विमुञ्चति	छोड़ देता है।

अर्थ – न्यायमार्ग से चलने वाले की पशु भी सहायता करते हैं। किन्तु गलत मार्ग पर चलने वाले के अपने भाई भी साथ नहीं देते। (उसका साथ छोड़ देते हैं)

27. न कश्चिदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति।
अतः श्वः करणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान्।।

शब्दार्थ –		
	कश्चिदपि	कोई भी
	कस्य	किस का
	श्वः	कल (आने वाला)
	भविष्यति	होगा
	कुर्याद्	करना चाहिए। करें
	अद्यैव	आज ही

अर्थ – कोई नहीं जानता कल किसका क्या होगा। अतः कल करने योग्य कार्यों को बुद्विमान् व्यक्ति आज ही करें।

28. उद्यमेनैव सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।

शब्दार्थ –		
	उद्यमेन	परिश्रम से
	एव	ही

सिध्यन्ति	सफल होते हैं
मनोरथैः	इच्छा करने से
सिंहस्य	शेर के
प्रविशन्ति	प्रवेश करते हैं

अर्थ – परिश्रम करने से ही सभी कार्य सिद्ध होते हैं, केवल इच्छा करने से नहीं। जैसे सोये हुए सिंह के मुख में पशु स्वयं प्रवेश नहीं करते, उसी प्रकार केवल इच्छा करने तथा सोचने मात्र से कार्यसिद्धि नहीं होती।

29. अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

शब्दार्थ –	अयं	यह
	निजः	अपना है/मेरा हैं
	परो	पराया
	लघुचेतसाम्	संकुचित हृदय वालों का
	कुटुम्बकम्	परिवार

अर्थ – ये मेरा है, यह पराया है, इस प्रकार की गणनायें तो छोटे मन वाले लोग करते हैं, उदार हृदय वाले व्यक्तियों के लिए तो सारी पृथ्वी ही परिवार होती है।

30. येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

शब्दार्थ –	तपो	तपस्या
	शीलं	स्वभाव को
	मर्त्यलोके	मरणशील संसार में
	मृगाश्चरन्ति	पशुओं के समान घूम रहे हैं।

अर्थ – जिन मनुष्यों के पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न अच्छा शील है, न गुण है, न धर्म है। वे इस मृत्युलोक में पृथ्वी के ऊपर भार–समान है तथा मनुष्य के रूप में पशुओं के समान घूम रहे हैं।

31. श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।

विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन।।

शब्दार्थ –

श्रोत्रं	कान
श्रुतेनैव	वेद, शास्त्रादि सुनने से
पाणि	हाथ
विभाति	सुन्दरता को प्राप्त करता है
करुणापराणां	दूसरों पर दया करने वाले का

अर्थ – कान शास्त्रों को सुनने से ही (सुशोभित होते है) कुण्डल से नहीं, हाथ दान से (सुशोभित होते है) कङ्गन से नहीं, दयालु लोगों का शरीर परोपकार से शोभा प्राप्त करता है, चन्दन से नहीं।

32. माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चाऽन्ये भवन्ति हितबुद्धयः।।

शब्दार्थ –

त्रितयं	तीनों
हितम्	अच्छा करने वाले/भला करने वाले
भवन्ति	होते हैं
हितबुद्धयः	हितकारी

अर्थ – माता, मित्र और पिता ये तीनों स्वभाव से ही हित करने वाले होते हैं और दूसरे तो कार्य–कारण रूपी स्वार्थ के लिए हितकारी बन जाते हैं।

33. यस्य मित्रेण सम्भाषो यस्य मित्रेण संस्थितिः।
यस्य मित्रेण संलापस्ततो नास्तीह पुण्यवान्।।

शब्दार्थ –

यस्य	जिसका
मित्रेण	मित्र के साथ
संलापः	विचार–विमर्श
इह	इस संसार में
नास्ति	नही है
संभाषो	बातचीत

अर्थ – जिसका मित्र के साथ सम्भाषण होता है, जिसका मित्र के साथ रहना होता है तथा जिसका मित्र के साथ रहस्य विचार होता है, उस पुरुष के समान पुण्यशाली दूसरा कोई नहीं है।

34. बालो वा यदि व वृद्धो युवा वा गृहमागतः।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः।।

शब्दार्थ –

बालो	बच्चा
गृहमागतः	घर में आया
विधातव्या	करना चाहिए
यदि	अगर

अर्थ – बालक, वृद्ध या जवान (युवा), जो कोई भी घर में आया हुआ अतिथि है, उसका सत्कार करना चाहिए क्योंकि अतिथि सबके लिये गुरुवत् पूज्य है।

35. स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशाः नखाः नराः।
इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्थानं न परित्यजेत्।।

शब्दार्थ –

स्थान भ्रष्टा	स्थान से च्युत/भ्रष्ट
न शोभन्ते	सुशोभित नहीं होते
केशाः	बाल
स्वस्थानं	अपने स्थान को
न परित्यजेत्	परित्याग नहीं करना चाहिए।

अर्थ – दान्त, केश, नख तथा मनुष्य ये चारों अपने स्थान से भ्रष्ट होने पर नहीं शोभा देते हैं। अतः बुद्धिमान् मनुष्य अपने स्थान को त्याग न करें।

36. यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवः।
न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्।।

शब्दार्थ –

यस्मिन् देशे	जिस राष्ट्र (देश) में
वृत्ति	आजीविका
विद्यागमः	विद्याप्राप्ति

	न	नहीं
	परिवर्जयेत्	चले जाना चाहिए/छोड़ देना चाहिए

अर्थ – जिस देश में सम्मान, जीविका, बन्धुजन तथा किसी प्रकार की विद्याप्राप्ति न हो, उस देश का त्याग करना चाहिए।

37. न गणस्याग्रतो गच्छेत् सिद्धे कार्ये समं फलम्।
यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते।।

शब्दार्थ –	गणस्याग्रतो	समूह के आगे
	गच्छेत्	जाना चाहिए
	सिद्धे कार्ये	कार्य के सफल होने पर
	विपत्ति	कठिनाई (मुश्किल)
	तत्र	वहाँ

अर्थ – किसी भी कार्य में समुदाय का नेता नहीं होना चाहिए, क्योंकि कार्यसिद्धि होने पर सब समान फल भागी बनते हैं और कार्यसिद्धि न होने से नेता को ही अपयश तथा तिरस्कार का पात्र बनाते है।

38. षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता।।

शब्दार्थ –	षड् दोषाः	छः दोष
	हातव्या	सदा के लिए त्यागना चाहिए
	निद्रा	नींद
	भय	डर
	दीर्घसूत्रता	(किसी कार्य को पूरा करने में अधिक समय लगाना)

अर्थ – इस संसार में अभ्युदय की इच्छावाले लोग – 'निद्रा, तन्द्रा, भय (डर), क्रोध, आलस्य, दीर्घसूत्रता (किसी ईप्सित कार्य को पूरा करने में बहुत समय लगाना) – इन छः दोषों का त्याग करें।

39. दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम्।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हालाहलं विषम्।।

शब्दार्थ –

दुर्जनः	बुरा व्यक्ति
प्रियवादी	प्रिय बोलने वाले
जिह्वाग्रे	जिह्वा (जीभ) के अगले भाग पर
हृदि	हृदय में
विष	ज़हर

अर्थ – दुर्जन पुरुष प्रिय बोलता है, लेकिन प्रिय वचन सुनकर उसका विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि केवल उसकी जिह्वा पर ही मधुरता रहती है, अन्तःकरण में तो कापट्यरूपी ज़हर भरा रहता है।

40. पयपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्द्धनम्।
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।।

शब्दार्थ –

पय पानं	दूध पिलाना
भुजङ्गानाम्	साँपो का
विषवर्द्धनम्	ज़हर बढ़ाना
प्रकोपाय	क्रोध के लिए
शान्तये	शान्ति के लिए

अर्थ – जिस प्रकार साँपो को दूध पिलाना केवल उनके विष को बढ़ाना ही है, उसी प्रकार मूर्खों को उपदेश देना उनके क्रोध को बढ़ाना ही है, न कि शान्त करना।

41. आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति।।

शब्दार्थ –

मनुष्याणां	मानवों का
शरीरस्थः	शरीर में रहने वाला
रिपुः	शत्रु
नास्ति	नही है।
उद्यमसमो	परिश्रम के समान

	नावसीदति	दुःखी नहीं होता
	न परित्यजेत्	परित्याग नहीं करना चाहिए।

अर्थ – आलस्य निश्चित रूप से मनुष्यों के शरीर में स्थित महान् शत्रु है। उद्यम के समान कोई बन्धु नहीं है, जिसे करके कोई (मनुष्य) दुःखी नहीं होता।

42. विद्या शस्त्रञ्च शास्त्रञ्च द्वे विद्ये प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाऽद्रियते सदा।।

शब्दार्थ –	द्वे विद्ये	दो विद्यायें
	प्रतिपत्तये	अपनी इष्ट की सिद्धि के लिए
	आद्या	पहली
	हास्याय	हँसी के लिए
	आद्रियते	प्रशंसा कराती है

अर्थ – संसार में दो विद्यायें प्रसिद्ध हैं, एक शस्त्रविद्या और दूसरी शास्त्रविद्या। उन दोनों को पढ़ने से मनुष्य को इष्टसिद्धि होती है, किन्तु वृद्धावस्था में शस्त्रविद्या हँसी कराती है। परन्तु शास्त्रविद्या तो सबल – निर्बल सभी अवस्थाओं में सुख देनेवाली है अतः द्वितीय विद्या (शास्त्र विद्या) ही प्रशंसित है।

43. रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।

शब्दार्थ –	विशालकुलसम्भवाः	श्रेष्ठ कुल में जन्म होना
	विद्याहीना	विद्या से रहित
	निर्गन्धा	सुगन्ध से रहित
	इव	की तरह (समान)
	किंशुकाः	पलाश के फूल

अर्थ – सौन्दर्य, यौवन, श्रेष्ठकुल में जन्म आदि होने पर भी गुणरहित पुरुष का आदर नहीं होता है, जैसे सुन्दर, लाल रूप युक्त और कोमल होने पर भी पलाश का पुष्प गन्धरहित होने से आदरणीय नहीं होता।

44. दुर्जनेन समं सख्यं वैरञ्चाऽपि न कारयेत्।

उष्णो दहति चाऽङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्।।

शब्दार्थ –	दुर्जनेन समं	दुर्जन (बुरे व्यक्ति) के साथ
	वैरम्	शत्रुता
	सख्यम्	मित्रता
	कारयेत्	करनी चाहिए
	उष्णः	गर्म (तप्त)
	दहति	जलाना
	अङ्गारः	अंगारा
	शीतः	ठण्डा
	करम्	हाथ को

अर्थ – दुर्जन से शत्रुता अथवा मित्रता कुछ भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह (दुर्जन) दोनों स्थिति में अनिष्ट करता है। जैसे तप्त (गर्म) अंगार छूने से हाथ को जलाता है और ठण्डा होने पर छूने से काला करता है।

45. परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।

धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित् तु महात्मनः।।

शब्दार्थ –	परोपदेशे	दूसरे को उपदेश करने में
	सर्वेषाम्	सभी का
	सुकरं	सहज (आसान)
	कस्यचित्	कोई
	स्वीयमनुष्ठानं	अपने अनुष्ठान का आचरण

अर्थ – परोपदेश करने में पाण्डित्य दिखाना सब मनुष्यों को सहज (आसान) है। परन्तु अपने धार्मिक अनुष्ठान का आचरण कोई एक महात्मा ही करता है।

Dr. Sandhya
Asstt. Professor in Sanskrit
GDC, Samba

पाठ शीर्षक :

उपपद विभक्तियाँ :–

कारक के साथ विभक्ति का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। कारक व विभक्ति का घनिष्ठ संबंध होता है। किसी भी कारक की पहचान विभक्ति के द्वारा ही होती है। कारक व विभक्ति संस्कृत भाषा के ज्ञान के आधार हैं। इनके बिना संस्कृत का ज्ञान असम्भव है। लेकिन कारक व विभक्ति पर्यायवाची शब्द नहीं है। दोनों का पृथक् अस्तित्व है।

कारक विभक्ति

संज्ञा शब्दों के क्रिया के साथ होने वाले संबंध को प्रकट करने के लिए जिन प्रत्ययों को लगाया जाता है। उन्हें कारक विभक्ति कहते हैं। अर्थात् कारकों का रूप प्रकट करने के लिए जिन शब्दाशों को उनके साथ जोड़ा जाता है उन्हें विभक्ति कहते हैं। जैसे :– अम्, एन्, आय, आत्, अस्य आदि बालक शब्द के साथ जोड़कर क्रमशः बालकम्, बालकेन, बालकाय, बालकात्, बालकस्य आदि कारक रूप बनते हैं।

कर्ता कारक का बोध कराने के लिए प्रथमा विभक्ति, कर्म का द्वितीया विभक्ति, करण का तृतीया, सम्प्रदान का चतुर्थी, अपादान का पंचमी, संबंध का षष्ठी, अधिकरण का सप्तमी विभक्ति होती है। सम्बोधन कारक का अन्तर्भाव प्रथमा विभक्ति में किया जाता है।

कारक विभक्ति एवं चिन्ह

	कारक	विभक्ति	चिन्ह
1.	कर्ता	प्रथमा	ने
2.	कर्म	द्वितीया	को
3.	करण	तृतीया	से, के द्वारा

4.	सम्प्रदान	चतुर्थी	के लिए
5.	अपादान	पचंमी	से पृथक होना
6.	संबंध	षष्ठी	का, की, के, रा, री, रे
7.	अधिकरण	सप्तमी	में, पर
8.	सम्बोधन	सम्बोधन	हे, भो आदि

उपपद विभक्ति :–

उपर्युक्त कारक विभक्ति के अतिरिक्त जो विभक्ति किसी पद विशेष (उप पद) के कारण योग में आती है उसे उपपद विभक्ति कहते हैं। अर्थात् किसी शब्द (पद) विशेष के कारण उसकी विभक्ति में परिवर्तन हो जाता है।

जैसे – **धनं बिना सुखं नास्ति**। (धन के बिना सुख नहीं है)

कारक विभक्ति के अनुसार 'धनस्य' शब्द होना चाहिए लेकिन 'बिना' पद के साथ द्वितीया का योग होने के कारण 'धन' उप पद विभक्ति का रूप हैं। यहां पर कारक विभक्तियों का उपपद विभक्ति के साथ अध्ययन किया जा रहा है।

प्रथमा विभक्ति :–

प्रथमा विभक्ति का उपयोग केवल शब्द का अर्थ, लिंग, परिणाम व वचन बतलाने के लिए किया जाता है।

जैसे :– सिंहः गर्जति। अजः चरति, अनलः ज्वलति, पवनः वहति।

एक वचन	**द्विवचन**	**बहु० वचन**
अश्वः धावति	अश्वौधावतः	अश्वाः धावन्ति।
बालः पठति	बालौ पठतः	बालाः पठन्ति।
गजः चलति	गजौ चलतः	गजाः चलन्ति।
महिला चलति	महिले चलतः	महिलाः चलन्ति।
फलम् पतति	फले पततः	फलानि पतन्ति।

द्वितीया विभक्ति :–

कर्म कहे जाने वाले शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है। ''कर्मणि द्वितीया''

जैसे :– रामः पुस्तकं पठति।

भक्तौ हरिं भजति।

छात्राः लेखान् लिखन्ति।

इन वाक्यों में रेखांकित शब्द द्वितीया विभक्ति के हैं। हिन्दी में द्वितीया विभक्ति की पहिचान 'को' चिन्ह से होती है। इसके अतिरिक्त कईं अन्य पदों के योग में भी द्वितीया होती है।

जैसे :– 1. उप, अनु, अधि तथा आ उपसर्गपूर्वक वस् धातु के योग में।

यथा :– 1 विश्वनाथः काशीम् उपवसति – (विश्वनाथ काशी में रहते हैं)

2. हरि बैकुण्ठम् उपवसति, अनुवसति, अधिवसति वा। (हरि वैकुण्ठ में निवास करते हैं)

2. अभितः, परितः, समया, निकषा, हा, प्रति के योग में द्वितीया होती है।

अभितः – (दोनो ओर) – ग्रामम् अभितः वृक्षाणि सन्ति।

3. उभयतः, सर्वतः धिक्, उपरि, अधः

उभयतः – (दोनो तरफ) – विद्यालयम् उभयतः वृक्षाः सन्ति।

सर्वतः – (सब ओर) – ग्रामम् सर्वतः वनानि सन्ति।

4. लक्षणादि अर्थों में प्रति, परि, अनु के योग में द्वितीया।

प्रति – वृक्षं वृक्षं प्रति। (प्रत्येक वृक्ष पर)

अनु – लक्ष्मीः हरिं अनु। (लक्ष्मी हरि का अंश है)

5. अन्तरा अन्तेरण के योग में द्वितीया।

अन्तरा – त्वां मां च अन्तरा हरिः। (तुम्हारे और मेरे बीच में हरि है।

अन्तरेण – हरिं अन्तरेण न सुखं। (हरि के बिना सुख नहीं है)

तृतीया विभक्ति :–

करण कारक में तृतीया विभक्ति होती है। हिन्दी में 'से' द्वारा चिन्हों द्वारा तृतीया विभक्ति की पहचान होती है।

जैसे :– विनोदः **कन्दुकेन** क्रीडति। वृद्धा **दण्डेन** चलति।

सः **कलमेन** सुलेखं लिखति। सा **हस्तेन** मोदकौ स्पृशति।

त्वम् **चरणाभ्याम्** चलसि।

तौ हस्ताभ्याम् भारं नयतः।

उपर्युक्त वाक्यों में रेखांकित शब्द तृतीया विभक्ति में हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय 'पद' विशेष में तृतीया का योग होता है।

1. निम्नलिखित शब्दों के योग में तृतीया विभक्ति सह – (साथ)

क. कृष्णः रामेण सह क्रीडति। (कृष्ण राम के साथ खेलता है।

ख. समम् (साथ) सः रामेण समं गमिष्यति। (वह राम के साथ जायेगा।

ग. साकम् (साथ) सः बालकेन साकम् पठति।

वह बालक के साथ पढ़ता है।

घ. सार्धम् – (साथ) बालकः बालकेन सार्धं भ्रमति।

बालक बालक के साथ घूमता है।

ङ. सदृशं – (तुल्य) मुखं चन्द्रेण सदृशं वर्तते। (मुख चन्द्रमा के समान है)

2. **अंग विकार के योग में तृतीया** :–

क. सः नेत्रेण काणः अस्ति। (वह एक आँख से काणा है)।

ख. श्यामः कायेन कृशः अस्ति। (श्याम शरीर से दुबला है)।

ग. उष्ट्रः चरणेन खंजः अस्ति। (ऊँट एक पैर से लंगडा है)।

3. हेतु (कारण) के अर्थ में तृतीया

क. पुण्येन हरिदर्शनं भवति। (पुण्य से हरि दर्शन होते हैं)

ख. छात्रः अध्ययनेन अत्रवसति। (छात्र अध्ययन के लिए यहाँ रहता है)

चतुर्थी विभक्ति :–

सम्प्रदान कारक की चतुर्थी विभक्ति होती है। ''चतुर्थी सम्प्रदाने'' हिन्दी में इसकी पहचान 'के लिए' या 'को' चिन्हों से होती है। देने के अर्थ में 'को' चिन्ह लगता है।

जैसे :– 1. धनिकः ब्राह्मणाय गां ददाति। (धनिक ब्राह्मण को गाय देता है)

2. मह्यं (मध्यं) पुस्तकं देहि। (मुझको पुस्तक दो)

3. दीपकः प्रकाशाय भवति। (दीपक प्रकाश के लिए होता है)

4. वीराः देशाय प्राणान् त्यजन्ति। (वीर देश के लिए प्राण त्यागते हैं)

इसके अतिरिक्त कतिपय पदों के योग में चतुर्थी लगती है।

1. निम्न शब्दों के योग में चतुर्थी :–

क. नमः – (नमस्कार) शिवाय नमः। (शिव को नमस्कार)

ख. स्वस्ति – (कल्याण) जीवेभ्यः स्वस्ति। (प्राणियों का कल्याण)

ग. स्वाहा – (आहुति देना) सूर्याय स्वाहा। (सूर्य को स्वाहा)

घ. अलम् ङ. वषट् च. बलि

छ. हितम् आदि।

2. निम्न धातुओं के योग में चतुर्थी विभक्ति :–

क. क्रुध – (क्रोध करना) पिता पुत्राय क्रुध्यति।

पिता पुत्र पर क्रोध करता है

ख. कुप् – (क्रोध करना) कृष्णः रामाय कुप्यति।

कृष्ण राम पर क्रोध करता है।

ग. (द्रोह करना) सः रामाय द्रुह्यति।

वह राम पर द्रोह करता है।

घ. रूच – (अच्छा लगना) बालाय मोदकं रोचते।

बालक को लड्डू अच्छा लगता है।

पंचमी विभक्ति :–

अपादान कारक में पंचमी विभक्ति होती है। पृथक् होने की स्थिति में स्थिर पदार्थ की पंचमी विभक्ति होती है। हिन्दी में इसकी पहचान 'से' (From) के द्वारा होती है। जैसे :–

1. फलं **वृक्षात्** पतति।

2. रामः **विद्यालयात्** आगच्छति।

3. तापसौ **आश्रमात्** आगच्छतः।

4. वीराः **रणात्** आगच्छन्ति।

5. सैनिकौ **अश्वाभ्याम्** अवतरतः।

6. सः **गृहात्** शुल्कम् आनयति।

1. निम्न शब्दों के योग में पंचमी विभक्ति होती है।

क. अन्यः – (अतिरिक्त) कृष्णात् अन्यः कः अस्ति ?

(कृष्ण) के अतिरिक्त कौन है?

ख. इतर – (अन्य) रामात् इतरः कोऽपि नास्ति।

(राम के अतिरिक्त अन्य, कोई भी नहीं है)

ग. अनन्तर – (बाद में) भोजनात् अनन्तरं जलं पिब।

(भोजन के बाद में जल पिओ)

2. निम्न धातुओं से पंचमी का योग होता है।

क. जुगुप्सा – (घृणा करना) सः पापात् जुगुप्सते।

(वह पाप से घृणा करता है)

ख. प्रमाद – (आलस्य) धर्मात् मा प्रमद।

(धर्म से आलस्य मत करो)

ग. वि + रम् – (रूकना) सः पठनात् विरमति।

(वह पढ़ने से रूकता है)

घ. परा + जि – (हार) रावणः रामात् पराजितः।

(रावण राम से हार गया)

षष्ठी विभक्ति :–

दो वस्तुओं, व्यक्तियों व प्राणियों में संबंध प्रदर्शित करने वाले शब्दों में षष्ठी विभक्ति होती है। हिन्दी में इसकी पहचान का, की, के, रा, री, रे चिन्हों से होती है। जैसे :–

1. **रामस्य** भ्राता। (राम का भाई)

2. **शंखस्य** नादः शुभः भवति। (शंख की आवाज़ शुभ होती है)

3. **सूर्यस्य** आतपः तीव्रः भवति। (सूर्य का प्रकाश तेज होता है)

4. **चन्द्रस्य** प्रकाशः शीतलः भवति। (चन्द्रमा का प्रकाश शीतल होता है)

1. निम्न शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति :–

क. निर्धारण व तुल्य अर्थ वाले शब्दों के योग में – कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः। (कवियों में कालिदास श्रेष्ठ है)

ख. समक्षम् – (सामने) रामस्य समक्षं सत्य वद। (राम के सामने सत्य बोलो।

2. निम्न धातुओं के योग में षष्ठी :–

क. स्मृ – (याद करना) मातुः स्मरति। (माता को याद करता है)

ख. दय् – (दया करना) रामस्य दयते। (राम पर दया करता है)

ग. ईश् – (समर्थ) रामः संसारस्य ईष्टे। (राम संसार का ईश्वर है)

सप्तमी विभक्ति :–

अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है। सप्तमी के चिन्ह में 'में' पर है। **"सप्तम्यधिकरणे"** जैसेः–

1. सिंहः पिंजरे गर्जति। (शेर पिंजरे में गर्जता है)

2. खगः नीडे वसन्ति। (पक्षी घोंसले में रहते हैं)

3. अशोकस्य हस्तयोः दर्पणं अस्ति। (अशोक के दोनों हाथों में दर्पण है)

4. मीनाः सरोवरेषु तरन्ति। (मछलियाँ तालाब में तैरती हैं)

1. साधु (अच्छा व्यवहार करने वाले) तथा असाधु (बुरा व्यवहार करने वाले) के योग में सप्तमीः

क. मोहनः छात्रेषु साधुः। (मोहन छात्रों से अच्छा व्यवहार करता है)

ख. मोहनः अध्यापकेषु असाधुः। (मोहन अध्यापकों से बुरा व्यवहार करता है)

ग. सुरेशः अध्यापने कुशलः। निपुणः। पटुः। प्रवीणः। दक्षः वा अस्ति।

2. निम्न धातुओं के योग में सप्तमी विभक्ति होती है।

क. स्निह् – (स्नेह करना) पिता पुत्रे स्निह्यति। (पिता पुत्र से स्नेह करता है)

ख. अनु + रञ्ज् – (अनुरक्त होना) छात्रः अध्यापके अनुरञ्जते। (छात्र अध्यापक से अनुराग रखता है)

ग. अभि + लष् – (अभिलाषा) पुत्रे पितुः अभिलाषा (पुत्र के प्रति पिता की अभिलाषा)

घ. रम् – (मन लगाना) अध्यापकः अध्यापने रतः। (अध्यापक अध्यापन में लगा है)

सम्बोधन :–

सम्बोधन कारक में सम्बोधन विभक्ति होती है। इसका प्रयोग दूसरे को सम्बोधित करने के लिए होता है। इसमें प्रथमा विभक्ति की तरह रूप लगते हैं। प्रथमा एकवचन में सम्बोधन के कारण प्रायः विसर्ग का लोप हो जाता है।

जैसे :– हे बालक! त्वम् किं पठसि?

सम्बोधन का प्रयोग अधिकांशत संवाद में होता है

जैसे :–

आचार्य :– हे विजय! चित्रे त्वम् किम् पश्यसि?

((गुरू) – हे विजय! चित्र में तुम क्या देखते हो)

विजयः श्री मन्! अहं चित्रे गणतंत्रदिवससमारोहं पश्यामि।

(विजय – श्री मान जी! मैं चित्र में गणतंत्र दिवस समारोह देखता हूँ)

ꟼ ꟼ ꟼ ꟼ ꟼ ꟼ

Dr. Kedar Nath Sharma
HOD Sanskrit
Jammu University, Jammu

पाठ शीर्षक

वाच्य परिवर्तन :–

उद्देश्य : इस पाठ को हृदयंगम करने के पश्चात् छात्र निम्नलिखित विषयों में क्षमता प्राप्त कर सकेंगे –

1. वाच्य क्या है ? यह समझेंगे।
2. वाच्य के प्रकारों से अवगत हो सकेंगे।
3. वाच्य परिवर्तन के नियमों को समझ पायेंगे।

पाठ परिचय :–

संस्कृत भाषा में वाच्य का अर्थ एवं उसके महत्त्व को दर्शाते हुए कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य और कर्तृवाच्य से भाववाच्य में परिवर्तन को संस्कृत उदाहरणों द्वारा समझाया गया है।

आधार पाठ वाच्य और इसके प्रकार संस्कृत में क्रिया के तीन वाच्य होते हैं।

1. कर्तृवाच्य
2. कर्मवाच्य
3. भाववाच्य

वाच्य का अर्थ है – जो क्रिया के द्वारा कहा जाये। वाक्य में कर्ता, कर्म और भाव इन तीनों में से कोई एक क्रिया के द्वारा कहा जाता है – क्रिया के द्वारा वाच्य होता है।

उदाहरणार्थ :–

छात्रः पुस्तकं पठति (विद्यार्थी पढ़ता है) यहां पठति का अर्थ है – 'पढ़ता' है कोई पढ़ने वाला (कर्ता) पढ़ता

है। इस प्रकार 'पठति' कर्तृवाच्य है। अर्थात् कर्ता उस (पठति) के द्वारा कहा जाता है।

दूसरा उदाहरण :– छात्रेण पुस्तकं पठ्यते (छात्र के द्वारा पुस्तक पढ़ी जाती है) – यहां पठ्यते का अर्थ है – 'पढ़ा जाता है' क्या पढ़ा जाता है ? पुस्तक पढ़ी जाती है। यह स्पष्ट है कि यहां क्रिया (पठ्यते) कर्म को कह रही है अर्थात् कर्म उसका वाच्य है। अतएव 'पठ्यते' कर्म वाच्य है। अंग्रेजी में दो दो वाच्य होते हैं। कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य। कर्तृवाच्य (Active Voice) तो सभी सकर्मक अर्कमक क्रियाओं का हो सकता है, क्योंकि कर्त्ता तो सभी क्रियाओं का अवश्य रहता है। परन्तु कर्मवाच्य (Passive Voice) सकर्मक क्रियाओं का ही हो सकता है। जैसे 'पठ्यते' कर्मवाच्य हे, यहाँ 'पठ्' धातु सकर्मक है। अकर्मक क्रियाओं से केवल कर्तृवाच्य ही हो सकता है, कर्मवाच्य कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि वहां कोई कर्म है ही नहीं, जो वाच्य हो। परन्तु संस्कृत में अकर्मक क्रियाओं से 'भाववाच्य' भी होता है। उदाहरण के लिए 'स्वप्' (सोना) धातु अकर्मक है। उसका भाववाच्य 'सुप्यते' होगा। 'भाव' का अर्थ है – 'क्रिया', अर्थात् 'सुप्यते' से न कर्ता कहा जाएगा, और न कर्म, उससे केवल क्रिया (सोना) ही कही जाती है, अतएव यह भाववाच्य है।

तात्पर्य यह है कि –

संस्कृत भाषा में वाच्य तीन हैं –

1. कर्तृवाच्य 2. कर्मवाच्य 3. भाववाच्य।

सकर्मक धातुओं के रूप दो वाच्यों में होते हैं –

कर्तृवाच्य में तथा कर्मवाच्य में और

अकर्मक धातुओं के रूप में भी दो वाच्यों में होते हैं – कर्तृवाच्य में और भाववाच्य में।

1. **कर्तृवाच्य** में कर्त्ता मुख्य होता है और क्रिया कर्त्ता के अनुसार चलती है – कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है और कर्म में द्वितीया, जैसे

प्राज्ञः ग्रन्थं पठति (बुद्धिमान् ग्रन्थ पढ़ता है)

यहां 'पठति' यह क्रिया कर्तृवाच्य है, इसका कर्ता (पढ़ने वाला) 'प्राज्ञः' है अतः उसमें प्रथमा विभक्ति है, साथ ही कर्त्ता एक वचन में होने से क्रिया भी तदनुसार एक वचन में है।

2. **कर्मवाच्य** में 'कर्म' मुख्य होता है और कर्म के अनुसार ही क्रिया का वचन होता है। कर्मवाच्य में कर्त्ता तृतीया विभक्ति और कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। क्रिया कर्म के अनुसार होती है जैसे

– छात्रेण ग्रन्थः पठ्यते (छात्र के द्वारा एक ग्रन्थ पढ़ा जाता है)

– छात्रेण ग्रन्थौ पठ्येते (छात्र के द्वार दो ग्रन्थ पढ़े जाते हैं)

यहां पठ्यते यह क्रिया कर्मवाच्य है, अतः प्रथम वाक्य में कर्म ग्रन्थ में प्रथमा विभक्ति है और 'पठ्यते' क्रिया एकवचन में इसलिए है कि इसका 'कर्म' (ग्रन्थः) एक है। द्वितीय वाक्य में कर्म ग्रन्थ दो हैं, अतः क्रिया में द्विवचन (पठ्येते) है। दोनो वाक्यों में 'छात्र' कर्ता है, अतः उसमें तृतीया विभक्ति आई है।

3. **भाववाच्य** में कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है (कर्म नहीं होता), और क्रिया सदा प्रथम पुरुष एक वचन ही होती है। जैसे

मया सुप्यते	=	मेरे द्वारा सोया जाता है।
अस्माभिः सुप्यते	=	हम सब के द्वारा सोया जाता है।
तैः सुप्यते	=	उन सब के द्वारा सोया जाता है।
युष्माभिः सुप्यते	=	तुम लोगों के द्वारा सोया जाता है।

उपर्युक्त चारों वाक्यों में कर्त्ता में तृतीया विभक्ति है, क्रिया 'सुप्यते' में प्रथमा एकवचन है। चाहे कर्त्ता एकवचन में हो या बहुवचन में। अर्थात् 'सुप्' आदि अकर्मक धातु से बनने वाले 'भाववाच्य' स्थल में क्रिया में केवल प्रथमपुरुष (Third Person) और एकवचन होता है जैसे – 'मया सुप्यते', 'मया हस्यते'। 'भाव' कहते हैं क्रिया को। भाववाच्य का अर्थ है – कि वहां क्रिया ही वाच्य होती है।

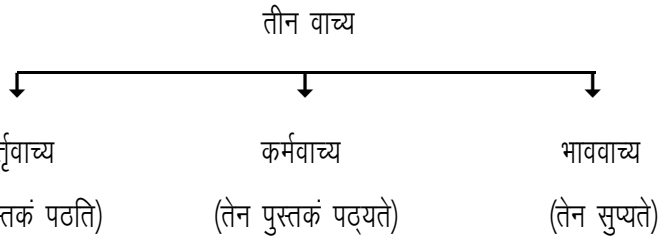

वाच्य परिवर्तन

निम्नलिखित उदाहरणों को ध्यान से पढ़ें :– (कर्तृवाच्य)

1.	छात्रः पाठान् पठति	=	(छात्र (बहुत से) पाठों को पढ़ता है)
2.	छात्रौ पाठं पठतः	=	(दो छात्र पाठ (एक) को पढ़ते हैं)
3.	छात्राः पाठौ पठन्ति	=	(बहुत से छात्र दो पाठों को पढ़ते हैं)
4.	अहं पाठान् पठामि	=	(मैं पाठों को पढ़ता हूँ)
5.	त्वं पाठान् पठसि	=	(तू पाठों को पढ़ता है)

6. वयं पाठं पठामः = हम पाठ को पढ़ते हैं।

इन सभी छः वाक्यों में क्रियायें कर्तृवाच्य हैं – पठति, पठतः, पठन्ति, पठामि, पठसि, पठामः ये क्रियाएं कर्त्ता क्रमशः छात्रः, छात्रौ, छात्राः, अहं त्वं, वयम्) को कर रही हैं।

अतः इन सभी वाक्यों में क्रिया के पुरुष और वचन कर्त्ता के पुरुष और वचन के अनुसार प्रयुक्त हुए हैं। जैसे प्रथम वाक्य में कर्ता–छात्रः प्रथम पुरुष एकवचन है तो क्रिया 'पठति' भी प्रथम पुरुष, एकवचन की है। छठे वाक्य कर्त्ता (वयं) उत्तम पुरुष बहुवचन में है, क्रिया (पठामः) भी तदनुसार उत्तमपुरुष बहुवचन में है। – इसी प्रकार चार वाक्यों में भी क्रिया और कर्म में सामंजस्य है।

अब नीचे लिखे उदाहरणों पर ध्यान दें –

कर्मवाच्य के उदाहरण

1.	छात्रेण	ग्रन्थः	पठ्यते	छात्र के द्वार ग्रन्थ पढ़ा जाता है।
2.	छात्रेण	ग्रन्थौ	पठ्येते	छात्र के द्वारा दो ग्रन्थ पढ़े जाते हैं।
3.	छात्रेण	ग्रन्थाः	पठ्यन्ते	छात्र के द्वारा बहुत से ग्रन्थ पढ़े जाते हैं।
4.	पित्रा	अहं	ताड्ये	पिता के द्वारा मैं पीटा जाता हूँ।
5.	गुरुणा	त्वं	ताड्यसे	गुरु के द्वारा तू पीटा जाता है।

उपर्युकत वाक्यों में पठ्यते, पठ्येते, पठ्यन्ते, ताड्ये ताड्यसे ये क्रियाएं कर्मवाच्य हैं – इन सब के वाच्य ग्रन्थ कर्म हैं। अहं, त्वम् इन सब वाक्यों में क्रिया और कर्म में सामञ्जस्य है। क्रिया और कर्म के पुरुष और वचन एक से हैं। प्रथम वाक्य में 'ग्रन्थ' (कर्म) में प्रथम पुरुष एकवचन है, तदनुसार क्रिया (पठ्यते) से भी प्रथम पुरुष एक वचन है। पाँचवे वाक्य (पित्रा अहं ताड्ये) में 'अहम्' कर्म है। यह उत्तम पुरुष एकवचन में है, अतः तदनुसार क्रिया (ताड्ये) में भी उत्तम पुरुष एकवचन है। कर्मवाच्य में कर्त्ता में सदा तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है, और कर्म में प्रथमा विभक्ति का।

छात्र अब निम्नलिखित उदाहरणों को ध्यान से पढ़ें :–

(भाववाच्य के उदाहरण)

1.	मया सुप्यते	=	मेरे द्वारा सोया जाता है।
2.	त्वया सुप्यते	=	तेरे द्वारा सोया जाता है।
3.	मया हस्यते	=	मेरे द्वारा हंसा जाता है।

4. अस्माभिः हस्यते = हम सब के द्वारा हंसा जाता है।

यहां प्रथम दो वाक्यों की क्रिया 'सुप्यते' है और अन्तिम दो वाक्यों की क्रिया 'हस्यते' है। 'सुप्यते' और 'हस्यते' भाववाच्य क्रियायें है। भाववाच्य में कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है – (जैसे मया, त्वया, अस्माभिः)। 'सुप्यते' और 'हस्यते' प्रथम पुरुष एकवचन के रूप हैं। अकर्मक धातु से बनने वाले भाववाच्य स्थल में क्रिया में केवल प्रथम पुरुष (Third Person) और एकवचन होता है। भाववाच्य का अर्थ है कि वहां भाव (क्रिया) ही वाच्य होती है। वह क्रिया केवल एक ही होती है, इसलिए केवल एकवचन ही उसमें हो सकता है; और क्रिया जड़ है, उसके मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष का प्रश्न हीं नहीं होता, इसलिए केवल प्रथम पुरुष ही होता है।

कर्तृवाच्य का कर्मवाच्य में परिवर्तन

इन उदाहरणों को पढ़ें :–

कर्तृवाच्य

अहं ग्रन्थं पठामि	मया ग्रन्थः पठ्यते
स ग्रामं गच्छति	तेन ग्रामः गम्यते
त्वं फलं खादसि	त्वया फलं खाद्यते
बालाः जलं पिबन्ति	बालैः जलं पीयते
नृपः धनं ददाति	नृपेण धनं दीयते
भृत्यः भारं नयति	भृत्येन भारः नीयते
भक्ताः विष्णुं ध्यायन्ति	भक्तैः विष्णुः ध्यायते

यहां बाईं ओर के वाक्य कर्तृवाच्य में हैं और उनकी दाईं ओर उन्हीं के कर्मवाच्य रूप हैं। इन वाक्यों को देखकर आप कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य बनाने के विषय में कुछ मूल नियमों से अवगत हो गये होंगे। कर्तृवाच्य वाक्य को कर्मवाच्य वाक्य में बदलने के लिए निम्नलिखित नियमों का सदा ध्यान रखना चाहिए :–

1. कर्तृवाच्य में कर्ता प्रथमा विभक्ति में होती है – जैसे अहं, सः, त्वं, बालाः, नृपः, भृत्यः भक्ताः ये सभी कर्त्ता हैं और प्रथमाविभक्ति में है। – परन्तु कर्मवाच्य बनाते समय उन्हें तृतीया विभक्ति में बदलेंगे, जैसे ऊपर वाक्यों में मया, तेन, त्वया, बालैः, नृपेण, भृत्येन, भक्तैः तृतीया विभक्ति में है।

2. कर्म में सदा प्रथमा विभक्ति होगी – ऊपर प्रथम वाक्य में कर्तृवाच्य के ग्रन्थं के स्थान पर 'ग्रन्थः' प्रथमा विभक्ति का रूप है।

3. क्रिया के पुरुष और वचन कर्म के अनुसार होंगे।

4. क्रिया रूपों में कुछ विशेष परिवर्तन होते हैं –

जैसे :–

क. कर्मवाच्य में सार्वधातुकलकारों (लट् लोट्, लङ् और विधिलिङ्) में धातु और प्रत्यय के बीच में 'य' लगाया जाता है, जैसे पठ से पठ्यते, गम् से गम्यते, खाद् से खाद्यते, पा से पीयते, दा से दीयते, नै से नीयते, 'ध्यै' ध्यायते।

ख. कर्मवाच्य में धातु का रुप सदा आत्मनेपद में ही चलता है। लट् लकार में 'य' लगाकर उसके रूप 'जायते' के समान चलेंगे।

ग. धातु में 'य' के पूर्व कोई परिवर्तन नहीं होता, यथा – भिद्+य+ते = भिद्यते।

घ. कर्मवाच्य में सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्) में धातुओं के स्थान में धात्वादेश जैसे पा का पिब्, गम् का गच्छ्) नहीं होता तथा गुण और वृद्धि नहीं होती।

ङ. कर्मवाच्य में दा, दे, दो, धा, धे, मा, पा, हा, गै, सो, इन धातुओं का अन्तिम स्वर 'ई' में बदल जाता है, यथा–दीयते, धीयते, मीयते, पीयते, हीयते, गीयते, सीयते। परन्तु इन से भिन्न धातुओं के अन्तिम स्वर कोई परिवर्तन नहीं होता, जैसे – भूयते, गायते, स्नायते, ध्यायते। अनेक धातुओं के बीच का अनुस्वर कर्मवाच्य निकाल दिया जाता है, यहा – बन्ध्–बध्यते, इन्ध्, शंस् शस्यते।

नोट : बी.ए. की परीक्षा में विद्यार्थियों को कर्तृवाच्य के छोटे सरल वाक्यों कर्मवाच्य में तथा कुछ कर्मवाच्यीय वाक्यों को कर्तृवाच्य में बदलने के लिए कहा जाता है। छात्र ऊपर के सामान्य नियमों को पढ़कर वाच्य परिवर्तन करने में सक्षम हो सकेंगे। नीचे मुख्य धातुओं के कर्मवाच्य एवं भाववाच्य के लट् लकार प्रथम पुरुष के रूप दिये जा रहे हैं। इन क्रिया रूपों को स्मरण कर छात्र वाच्य परिवर्तन कौशल प्राप्त कर सकेंगे।

मुख्य धातुओं के कर्मवाच्य के रूप :

'पठ्' (पढ़ना) कर्मवाच्य :

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
लट्	पठ्यते	पठ्येते	पठ्यन्ते
	पठ्यसे	पठ्येथे	पठ्यध्वे
	पठ्ये	पठ्यावहे	पठ्यामहे

मुच् – (छोड़ना)

	मुच्यते	मुच्येते	मुच्यन्ते

'पा' (पीना)

	पीयते	पीयेते	पीयन्ते
	पीयसे	पीयेथे	पीयध्वे
	पीये	पीयावहे	पीयामहे

दा (देना) कर्मवाच्य

लट्	दीयते	दीयेते	दीयन्ते

ध्यै (ध्या) ध्यान करना

	ध्यायते	ध्यायेते	ध्यायन्ते

नी (ले जाना) कर्मवाच्य

	नीयते	नीयेते	नीयन्ते

कृ (करना) कर्मवाच्य

	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे
	क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे

कर्तृवाच्य का भाववाच्य में परिवर्तन

कर्तृवाच्य को भाववाच्य में परिवर्तित करने के लिए इन सामान्य नियमों का पालन करें :–

क. कर्तृवाच्य में कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होती है, भाववाच्य में बदलने के लिए कर्त्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग करें।

ख. क्रिया में प्रथम पुरुष का एकवचन ही सदा होता है।

ग. भाववाच्य में सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ्) में धातु और प्रत्यय के बीच में 'या' (यक्) लगा दिया जाता है। धातु का रूप सदा आत्मनेपद में ही चलता है। लट् लकार में धातु में 'य' लगाकर

उसके रूप 'जायते' की भांति चलेंगे। लृट् में 'स्यते' या 'इष्यते' लगेगा।

जैसे :–

	कर्तृवाच्य	भाववाच्य
1.	अहं स्वपिमि	मया सुप्यते
2.	वयं हसामः	अस्माभिः हस्यते
3.	स स्नाति	तेन स्नायते
4.	त्वं भवसि	त्वया भूयते
5.	मनुष्याः म्रियन्ते	मनुष्यैः म्रियते

Sanjeev Upadhyay
Asstt. Professor in Sanskrit
GCW, Udhampur

उद्देश्य :–

- छात्रों का विषय में ज्ञान की पुष्टि हेतु वस्तुनिष्ठ प्रश्नों द्वारा ज्ञान परीक्षण करना है।
- छात्रों के ज्ञान के स्तर का मापन करना।
- विषय के प्रति छात्रों की जिज्ञासा को बढ़ाना तथा पाठ्यक्रम का सामान्य ज्ञान प्रदान करना।

1. ''आचार्यानुशासनम्'' नामक गद्यांश कहा से लिया गया है ?

   (क) केनोपनिषद् (ख) कठोपनिषद्

   (ग) प्रश्नोनिषद् (घ) तैत्तिरीयोपनिषद्

2. प्राचीन काल में विद्यार्थी कहाँ रहकर अध्ययन करते थे ?

   (क) महल में (ख) घर में

   (ग) गुरुकुल में (घ) वन में

3. आचार्य के विषय में सन्देह होने पर किससे परामर्श लेना चाहिए ?

   (क) मित्र से (ख) माता से

   (ग) ब्राह्मण से (घ) पिता से

4. अतिथि को किसका स्वरूप मानना चाहिए ?

   (क) पिता (ख) मित्र

   (ग) देव (घ) गुरु

5. ब्राह्मण संज्ञा किस व्यक्ति के लिए है ?

(क) ज्ञानयुक्त (ख) अज्ञानयुक्त

(ग) अभिमानयुक्त (घ) धनयुक्त

6. ''सुदर्शन तडाकम्'' नामक शिलालेख को किसने और कब खुदवाया था।

(क) सुविशाख ने शक् सम्वत् 72 में

(ख) सुविशाख ने शक् सम्वत् 70 में

(ग) सुद्रामन ने शक् सम्वत् 70 में

(घ) रुद्रामन् ने शक् सम्वत् 72 में

7. ''सुदर्शन तडाकम्'' नामक गद्यांश कौन से नगर की शिला पर खुदा हुआ है।

(क) जूनागढ़ (ख) रामगढ़

(ग) वाराणसी (घ) कृष्णगढ़

8. सर्वप्रथम किसकी आज्ञा से सुदर्शन झील का निर्माण किया गया ?

(क) पुष्य गुप्त (ख) मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त

(ग) कुलेप (घ) रुद्रदामन

9. रुद्रदामन ने किस प्रकार की काव्य रचना में कुशलता दिखाई ?

(क) गद्य (ख) पद्य

(ग) गद्य और पद्य (घ) गीतिकाव्य

10. सुदर्शन झील के बाँध की दीवार की उपमा किससे की गई ?

(क) पर्वत (ख) आकाश

(ग) मरूभूमि (घ) वृक्ष

11. सुदर्शन झील की नहरें किसने निकलवाई थी ?

(क) रुद्रदामन (ख) पुष्यगुप्त

(ग) यवन तुषास्क (घ) कुलेप

12. ''दशकुमारचरितम्'' के रचयिता कौन है ?

(क) माघ (ख) कालिदास

(ग) सुबन्धु (घ) दण्डी

13. ''आदर्श गृहिणी'' नामक गद्यांश में युवक का नाम क्या था।

(क) शक्ति कुमार (ख) शिव कमार

(ग) शशि कुमार (घ) राम कुमार

14. ''आदर्श गृहिणी'' नामक गद्यांश किस ग्रन्थ से लिया गया।

(क) मेघदूतम् (ख) दशकुमारचरितम्

(ग) कादम्बरी (घ) वासवदत्ता

15. शक्ति कुमार किस का वेष धारण करता है ?

(क) सैनिक का (ख) वैद्य का

(ग) ज्योतिषी का (घ) कुम्हार का

16. शक्ति कुमार अपने कपड़े के छोर में क्या बाँधकर निकलता है ?

(क) चार सेर धान (ख) तीन सेर धान

(ग) चार सेर गेहूँ (घ) तीन सेर गेहूँ

17. शक्ति कुमार किसकी खोज में निकलता है ?

(क) मनवांछित मित्र (ख) मनवांछित पत्नी

(ग) मनवांछित गुरु (घ) मनवांछित नौकरी

18. शक्ति कुमार किस उम्र में पत्नी की खोज में निकलता है।

(क) अठारह वर्ष (ख) बीस वर्ष

(ग) दस वर्ष (घ) बारह वर्ष

19. ''शुकनासोपदेश'' गद्यांश कहाँ से लिया गया है ?

(क) दशकुमारचरितम् (ख) रघुवंशम्

(ग) मेघदूतम् (घ) कादम्बरी

20. ''कादम्बरी'' के रचयिता कौन है ?

(क) बाणभट्ट (ख) दण्डी

(ग) माघ (घ) कालिदास

21. ''शुकनासोपदेश'' में किसने उपदेश दिया है।

(क) चन्द्रापीड़ (ख) चन्द्रगुप्त

(ग) शुकनास (घ) शुकदेव

22. शुकनास ने किस को उपदेश दिया ?

(क) चन्द्रगुप्त (ख) चन्द्रापीड़

(ग) चन्द्रदत्त (घ) चन्द्रकान्त

23. ''शुकनासोपदेश'' में शुकनास ने किसका वर्णन समुचित रूप से किया ?

(क) प्रकृति का (ख) राजलक्ष्मी का

(ग) आकाश का (घ) सौन्दर्य का

24. ''शिववीरस्य राष्ट्रचिन्तनम्'' किस ग्रन्थ से उद्धृत है ?

(क) कादम्बरी (ख) अभिज्ञानशाकुन्तलम्

(ग) शिवराजविजयम् (घ) मेघदूतम्

25. शिवराजविजय के रचयिता कौन है।

(क) अम्बिकादत्त व्यास (ख) माघ

(ग) बाण (घ) सुबन्धु

26. शिवाजी को किसने बन्धी बनाया था ?

(क) हिटलर (ख) अकबर

(ग) जयसिंह (घ) ओरंगज़ेब

27. ''वासन्ती'' नामक कहानी के लेखक कौन है ?

(क) दीनानाथ (ख) बटुकनाथ शास्त्री

(ग) दण्डी (घ) कालिदास

28. वासन्ती में किसका वर्णन किया गया है।

(क) पारिवारिक वातावरण का (ख) प्राकृतिक वातावरण का

(ग) नदियों का (घ) वृक्षों का

29. दीनानाथ शर्मा की कितनी सन्तानें थीं।

(क) पाँच (ख) चार

(ग) एक (घ) दो

30. दीनानाथ शर्मा किस विषय के अध्यापक थे ?

(क) हिन्दी के (ख) अंग्रेजी के

(ग) संस्कृत के (घ) गणित के

31. ''मातङ्गदारिका परिव्राजनम्'' के रचयिता कौन है ?

(क) दिव्यानन्द (ख) रामानन्द

(ग) शामानन्द (घ) शिवनन्द

32. ''मातङ्गदारिका परिव्राजनम्'' गद्यांश किस ग्रन्थ से लिया गया है।

(क) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (ख) शार्दूलकर्णावदान

(ग) कादम्बरी (घ) मेघदूतम्

33. चाण्डाल कन्या किसके प्रति आकर्षित हुई ?

(क) महात्मा बुद्ध (ख) विद्याधर

(ग) आयुष्मान् (घ) आनन्दी

34. ''वसन्तवर्णनम्'' किस काव्य से लिया गया है ?

(क) कादम्बरी (ख) रघुवंशम्

(ग) वासवदत्ता (घ) मेघदूतम्

35. ''वसन्तवर्णनम्'' गद्यांश के लेखक कौन है ?

(क) बाणभट्ट (ख) सुबन्धु

(ग) कालिदास (घ) भारवि

36. ''वसन्तवर्णनम्'' मे किसका वर्णन किया गया है ?

(क) वसन्त ऋतु (ख) प्रकृति

(ग) सौन्दर्य (घ) धन

37. दण्डी की रचनाओं में कौन सा गुण विद्यमान है ?

(क) उपमा (ख) अलंकार

(ग) रस (घ) पदलालित्यम्

38. ''दशकुमारचरितम्'' कितने भागों में विभाजित है ?

(क) तीन (ख) दस

(ग) दो (घ) चार

39. सुबन्धु की कितनी कृतियाँ उपलब्ध हैं ?

(क) तीन (ख) चार

(ग) पाँच (घ) एक

40. ''हर्षचरितम्'' के लेखक कौन है ?

(क) सुबन्धु (ख) भास

(ग) दण्डी (घ) बाणभट्ट

41. अम्बिकादत्त व्यास कहाँ के निवासी थे ?

(क) जयपुर (ख) जौनपुर

(ग) उदयपुर (घ) रामपुर

42. कर्मसंज्ञा विधायक सूत्र कौन–सा है ?

(क) कर्तुरिप्सित तमं कर्म (ख) कर्मणि द्वितीया

(ग) साधकतमं करण (घ) षष्ठी शेषे च

43. कारक कितने हैं ?

(क) 5 (पाँच) (ख) 6 (छः)

(ग) 7 (सात) (घ) 8 (आठ)

44. 'करण' संज्ञा किस सूत्र के द्वारा होती है ?

(क) आधारोऽधिकरणम् (ख) कर्तृकरणयोस्तृतीया

(ग) साधकतमं करणम् (घ) कर्मणि द्वितीया

45. 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' सूत्र कौन सी संज्ञा करता है ?

(क) कर्ता (ख) करण

(ग) अपादान (घ) सम्बन्ध

46. 'रामेण बाणेन हतो बालि' में बाण की कौन सी संज्ञा की गई है।

(क) सम्प्रदान (ख) सम्बन्ध

(ग) करण (घ) कर्म

47. 'सम्प्रदान' संज्ञा करने वाला सूत्र कौन–सा है ?

(क) चतुर्थी सम्प्रदाने (ख) कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्

(ग) स्वतन्त्रः कर्ता (घ) सम्बोधने च

48. 'नमः' के योग में कौन सी विभक्ति होती है ?

(क) तृतीया (ख) चतुर्थी

(ग) पञ्चमी (घ) षष्ठी

49. 'स्वाहा' के योग में कौन–सी विभक्ति होती है ?

(क) द्वितीया (ख) चतुर्थी

(ग) षष्ठी (घ) प्रथमा

50. 'अपादान' संज्ञा किस सूत्र द्वारा होती है ?

(क) अपदाने पञ्चमी (ख) आधारोऽधिकरणम्

(ग) ध्रुवमपायेऽपादानम् (घ) चतुर्थी सम्प्रदाने

51. 'आधारोऽधिकरणम्' सूत्र कौन–सी संज्ञा करता है ?

(क) अधिकरण संज्ञा (ख) करण संज्ञा

(ग) आधार संज्ञा (घ) कर्म संज्ञा

52. 'वृक्षात्' में कौन सी विभक्ति का प्रयोग हुआ है ?

(क) चतुर्थी (ख) षष्ठी

(ग) पञ्चमी (घ) तृतीया

53. 'राज्ञः पुरुषः' इसमें 'राज्ञः' में कौन–सी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

(क) षष्ठी (ख) सप्तमी

(ग) प्रथमा (घ) द्वितीया

54. 'पठित्वा' में कौन से प्रत्यय का प्रयोग हुआ है ?

(क) तुमुन् (ख) क्त्वा

(ग) ल्यप् (घ) क्त

55. त्यज् + शतृ = ...।

(क) त्यक्त (ख) त्यजत्

(ग) त्यजित (घ) तयक्त

56. दृश् + तुमुन् = ...।

(क) द्रष्टुम् (ख) दृशतुम्

(ग) दर्शितुम् (घ) दृशेतुम्

57. प्रच्छ् + तुमुन् = ...।

(क) प्रच्छितुम् (ख) पृच्छतुम्

(ग) प्रष्टुम् (घ) पृच्छितुम्

58. वच् + क्त्वा = ...।

(क) उक्त्वा (ख) वचित्वा

(ग) वचत्वा (घ) वदित्वा

59. पा + क्त्वा = ...।

(क) पिबित्वा (ख) पात्वा

(ग) पीत्वा (घ) पिबत्वा

60. वस् + क्त्वा = ...।

(क) वसित्वा (ख) उषित्वा

(ग) वस्त्वा (घ) उषत्वा

61. गम् + क्त्वा = ...।

(क) गत्वा (ख) गमित्वा

(ग) गच्छित्वा (घ) गन्त्वा

62. नम् + तुमुन् = ...।

(क) नमतुम् (ख) नमितुम्

(ग) नन्तुम् (घ) नेतुम्

63. 'पठितवान्' में कौन सा प्रत्यय है ?

(क) क्त (ख) क्तवतु

(ग) ल्यप् (घ) क्त्वा

64. 'गणित' में कौन–सा प्रत्यय है ?

(क) क्त (ख) शतृ

(ग) तुमुन् (घ) क्तवतु

65. वस् + क्त = ...।

(क) वसित (ख) वसत्

(ग) उषित (घ) वस्त्

66. 'श्रुत' तथा 'श्रुतवत्' में कौन से प्रत्यय है।

(क) शतृ तथा शानच् (ख) क्त तथा क्तवतु

(ग) तुमुन् तथा क्त्वा (घ) अनीयर् + शतृ

67. नी + अनीयर् = ...।

(क) नीनीय (ख) नेनीय

(ग) नयनीय (घ) नियनीय

68. 'अभितः' के योग में कौन–सी विभक्ति होती है ?

(क) द्वितीया (ख) तृतीया

(ग) चतुर्थी (घ) पञ्चमी

69. 'सह' के योग में कौन–सी विभक्ति होती है ?

(क) सप्तमी (ख) पञ्चमी

(ग) तृतीया (घ) प्रथमा

70. 'उभयतः' के योग में कौन सी विभक्ति का प्रयोग होता है ?

(क) चतुर्थी (ख) द्वितीया

(ग) षष्ठी (घ) सप्तमी

71. 'नमः' तथा 'स्वस्ति' के योग में कौन सी विभक्ति का प्रयोग होता है ?

(क) तृतीया (ख) चतुर्थी

(ग) पञ्चमी (घ) षष्ठी

72. 'स्पृह्' धातु के योग में कौन–सी विभक्ति लगती है ?

(क) पञ्चमी (ख) षष्ठी

(ग) चतुर्थी (घ) सप्तमी

73. 'क्रुध्', 'द्रुह', 'ईर्ष्य' – इन धातुओं के योग में कौन–सी विभक्ति का प्रयोग होता है ?

(क) तृतीया (ख) चतुर्थी

(ग) पञ्चमी (घ) षष्ठी

74. सः पुस्तकं .....।

(क) पठसि (ख) पठति

(ग) पठामि (घ) पठन्ति

75. ..... पत्राणि पतन्ति।

(क) वृक्षस्य (ख) वृक्षम्

(ग) वृक्षात् (घ) वृक्षेण

76. बालिका ..... पश्यति।

(क) नेत्रात् (ख) नेत्राभ्याम्

(ग) नेत्रस्य (घ) नेत्रः

77. वयं गृह .....।

(क) गच्छामः (ख) गच्छथ

(ग) गच्छन्ति (घ) गच्छावः

78. युवाम् भोजनं .....।

(क) खादिष्यति (ख) खादिष्यसि

(ग) खदिष्यथः (घ) खादिष्यथ

79. नार्यः सभायां .....।

(क) गायन्ति (ख) गायति

(ग) गायामि (घ) गायसि

80. आवां ..... पठावः।

(क) कक्षात् (ख) कक्षां

(ग) कक्षायां (घ) कक्षा

81. भू + क्त्वा = ...।

(क) भूत्वा (ख) भवित्वा

(ग) भुत्वा (घ) भवत्वा

82. हन् + क्त्वा = ...।

(क) हनित्वा (ख) हनत्वा

(ग) हन्त्वा (घ) हत्वा

83. विद् + शानच् = ...।

(क) विदमान (ख) विधवान्

(ग) विद्यमान (घ) विद्वान्

84. मुच् + शानच् = ...।

(क) मोचमान (ख) मुचमान

(ग) मोचवान् (घ) मुचवान्

85. हन् + क्त = ...।

(क) हनित (ख) हत्

(ग) हनत (घ) हत

86. दा + अनीयर् = ...।

(क) दयनीय (ख) ददनीय

(ग) दनीय (घ) दानीय

87. भू + अनीयर् = ...।

(क) भवनीय (ख) भवनीया

(ग) भूनीय (घ) भोनीय

88. नृत् + अनीयर् = ...।

(क) नृतीय (ख) नृतनीया

(ग) नर्तनीय् (घ) नर्तनीय

89. लिख् + तुमुन् = ...।

(क) लिखितुम् (ख) लिखतुम्

(ग) लेखतुम् (घ) लेखितुम्

90. 'श्रुत' में कौन–सा प्रत्यय है ?

(क) क्तवतु (ख) क्त

(ग) शतृ (घ) शानच्

91. 'सः पुस्तकं पठति' वाच्य परिवर्तन करे ?

(क) तेन पुस्तकं पठ्यते (ख) तया पुस्तकः पठ्यते

(ग) तेन पुस्तकं पठयति (घ) तस्य पुस्तकं पठ्यते

92. 'रामः युष्मान् पश्यति' कर्मवाच्य में क्या बनेगा ?

(क) रामेण यूयम् पश्यन्ति (ख) रामाभ्याम् यूयम् दृश्यसे

(ग) रामेण यूयम् दृश्यध्वे (घ) रामात् यूयम् दृश्यसे

93. 'अहं पाठं पठामि' वाच्य परिवर्तन करें ?

(क) मह्यम् पाठं पठ्यते (ख) मया पाठः पठ्यते

(ग) मया पाठं पठ्यते (घ) मह्यम् पाठः पठ्यते

94. 'यूयम् हसथ' वाच्य परिवर्तन करें ?

(क) युष्माभिः हस्यध्वे (ख) युष्माभिः हस्यते

(ग) युष्माभिः हस्यसे (घ) युष्माभिः हस्येते

95. 'सः माम् त्यजति' वाच्य परिवर्तन करें।

(क) तेन अहम् त्यज्ये (ख) तेन सः त्यज्यति

(ग) तेन अहं त्यज्येते (घ) तेन अहं त्यज्यावहे

96. रमया फले खाद्येते –

(क) रमा फलं खादति (ख) रमया फले खादति

(ग) रमा फले खादति (घ) रमा फलानि खादति

97. मित्रैः वयम् मिल्यामहे – वाच्य परिवर्तन करें ?

(क) मित्राणि अस्मान् मिलन्ति (ख) मित्रम् अहं मिलति

(ग) मित्राणि अस्मान् मिलति (घ) मित्रम् वयं मिलति

98. तैः गीतानि गीयन्ते – वाच्य परिवर्तन करें ?

(क) ते गीतानि गायति (ख) ते गीतानि गायन्ति

(ग) ते गीतं गायन्ति (घ) ते गीतानि गायसि

99. मया शिशुः अदृश्यत् – वाच्य परिवर्तन करें ?

(क) अहं शिशुम् अपश्यम् (ख) सः शिशुम् अपश्यत्

(ग) अहं शिशुः अपश्यम् (घ) सः शिशुः पश्यति

100. सः कार्यं कृतवान् – वाच्य परिवर्तन करें ?

(क) तेन कार्यः कृतः (ख) तेन कार्यं कृतम्

(ग) तेन कार्यः कृतम् (घ) तेन कार्याणि कृतः

नोट : पाठ्यक्रमानुसार वस्तुनिष्ठ प्रश्न दिये गये है, जो परीक्षा हेतु उपयोगी हैं। इनके अतिरिक्त भी प्रश्न परीक्षा में पूछे जा सकते हैं।

ANSWER KEY

Q. No.	Answer	Q. No.	Answer	Q. No.	Answer
1	ख	41	क	81	क
2	ग	42	क	82	ख
3	ग	43	ख	83	ग
4	ग	44	ग	84	ख
5	क	45	क	85	ख
6	ख	46	ग	86	ख
7	क	47	ख	87	क
8	ख	48	ख	88	ख
9	ग	49	ख	89	ख
10	क	50	ग	90	ख
11	ग	51	क	91	क
12	ख	52	ग	92	ग
13	क	53	क	93	ख
14	ख	54	ख	94	ख
15	ग	55	ख	95	क
16	क	56	क	96	ग
17	ख	57	ग	97	क
18	क	58	क	98	ख
19	ख	59	ग	99	क
20	क	60	ख	100	ख
21	ग	61	क		
22	ख	62	ग		
23	ख	63	ख		
24	ग	64	क		
25	क	65	ग		
26	ख	66	ख		
27	ख	67	ग		
28	क	68	क		
29	ख	69	ग		
30	ग	70	ख		
31	क	71	ख		
32	ख	72	ग		
33	ग	73	ख		
34	ग	74	ख		
35	ख	75	ग		
36	क	76	ख		
37	घ	77	क		
38	क	78	ग		
39	घ	79	क		
40	घ	80	ग		